॥ सम्भल-माहात्म्य ॥

सम्भल-माहात्म्य

(हिन्दी अनुवाद सहित)

भूमिकालेखक
स्वामी सुखबोधाश्रम

अनुवादकर्ता
वाणीशरण शर्मा

सम्पादक
डा० रमाकान्त शुक्ल

१९८५ ई०

देववाणी–प्रकाशनम्
६, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००५९

सम्भल-माहात्म्य
(पौराणिक पाठ्य)

सम्पादक : डा० रमाकान्त शुक्ल

प्रकाशक : देववाणी-प्रकाशनम्
© ६, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००५९

मुद्रक : प्रवीण प्रिंटिंग सर्विस
३५, टी एक्स्टैंशन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली, ११००५९

संस्करण : द्वितीय १९८५ ई०

मूल्य : ६०.०० (साठ रुपये मात्र) **पेपर बैक**
१००.०० (एक सौ रुपये मात्र) **डी लक्स पुस्तकालय संस्करण**

SAMBHALA-MĀHĀTMYA (Pauranic Text)

Editor : Shukla, Dr. Rama Kant
Publishers : Davavani Prakashanam
© R-6 Vani Vihar, New Delhi-110059

Printers : Parveen Printing Service,
35, T Ext., Uttam Nagar
New Delhi-110059

Edition : Second 1985

Price : Rs. 60.00 (Rupees Sixty only) **Paper Back**
Rs. 100.00 (Rupees One Hundred only) **De Luxe Library Edition**

विषय-सूची

विषय	पृष्ठांक
सम्पादकीय - डा० रमाकान्त शुक्ल, महासचिव, देववाणी-परिषद्, दिल्ली	
भूमिका - दण्डी स्वामी सुखबोधाश्रम जी महाराज	सात-चौबीस
प्रथम अध्याय	१
द्वितीय अध्याय	५
तृतीय अध्याय	८
चतुर्थ अध्याय	१४
पञ्चम अध्याय	१६
षष्ठ अध्याय	१९
सप्तम अध्याय	२३
अष्टम अध्याय	२८
नवम अध्याय	३२
दशम अध्याय	३९
एकादश अध्याय	४३
द्वादश अध्याय	४६
त्रयोदश अध्याय	५०
चतुर्दश अध्याय	५७
पंचदश अध्याय	६२

विषय	पृष्ठांक
षोडश अध्याय	६५
सप्तदश अध्याय	६९
अष्टादश अध्याय	७३
उन्नीसवाँ अध्याय	७६
बीसवाँ अध्याय	८०
इक्कीसवाँ अध्याय	८७
बाईसवाँ अध्याय	८९
तेईसवाँ अध्याय	९२
चौबीसवाँ अध्याय	९४
पच्चीसवाँ अध्याय	९७
छब्बीसवाँ अध्याय	१००
सत्ताईसवाँ अध्याय	१०२
तीर्थ-स्नान-समय-सूची	१०३
कूप स्नान समय सूची	१०४
चित्र	१०५-११२
सम्भल-माहात्म्य के श्लोकों की अकारादि सूची	११३-१२३

सम्पादकीय

एक दिन दण्डी स्वामी सुखबोधाश्रम जी महाराज ने मुझे आदेश दिया कि मैं 'सम्भल-माहात्म्य' के सानुवाद संस्करण के सम्पादन-प्रकाशन की योजना अपने हाथ लूँ। स्वामी जी (पूर्वाश्रम में श्री सुदर्शनाचार्य जी) और हमारे स्व० पूज्य पिताजी आचार्य श्री ब्रह्मानन्द जी शुक्ल कनखल की भागीरथी संस्कृत पाठशाला में समकालीन रहकर कुछ दिन पढ़े हैं; अतः स्वामी जी आज्ञा को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही नहीं था।

स्वामी जी ने 'सम्भल-माहात्म्य' के पहले संस्करण को शुद्ध करके दूसरी प्रेस-कापी तैयार कराई थी जिसमें श्री वाणी शरण शर्मा कृत हिन्दी-अनुवाद सम्मिलित था। स्वामी जी ने 'सम्भल-माहात्म्य' की भूमिका लिखी। यह भूमिका जहाँ सम्भल के माहात्म्य का संकेत करती है, वहीं साम्प्रदायिक सौमनस्य की आवश्यकता रेखांकित करती है।

मैंने यह उचित समझा कि इस ग्रन्थ के अन्त में अकारादि क्रम से श्लोक-सूची और दे दी जाय जिससे इस ग्रन्थ का श्रद्धालुओं के अतिरिक्त आधुनिक शोधार्थियों के लिए भी महत्त्व बढ़ सके।

'सम्भल-माहात्म्य' का पाठ स्वामी जी को किसी 'स्कन्द-पुराण' की प्रति में मिला है, ऐसा उनकी भूमिका से ज्ञात होता है। किन्हीं प्रतियों में यह अप्राप्त भी है। यह पाठ कुछ अर्वाचीन है—ऐसा प्रतीत होता है, पर इतिहास और संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से इसका पर्याप्त महत्त्व है। मनोरंजक कथाओं के माध्यम से सम्भल का महत्त्व इसमें बताया गया है। पुराण तात्पर्य-प्रधान होते हैं; अतः विद्वानों को इसके अनुशीलन के समय इस दृष्टि को अवश्य ध्यान में रखना होगा।

२७ अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ की भाषा-शैली सरल-सुबोध है। तत्त्वदर्शन, स्तुति-विधान तथा सूक्तियोजना से ग्रन्थ का गौरव और भी बढ़ा है। कुछ सूक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

१. सत्वरं क्षीयते चायुर्लोकः शोकसमाकुलः। तस्माद्धर्मे मतिः कार्या धर्मो रक्षति रक्षितः (१/९)
२. सत्कर्मणां विपाकोऽयं यत्कथासु रतिः सदा। (१/१०)
३. अन्धं तमः प्रवशन्ति ये सम्भूतिमुपासते (१/१४)
४. उपलभ्य च गायत्रीं नोपतिष्ठेत यो द्विजः। काले त्रिकाले सप्ताहात् स पतेन्नात्र संशयः ।। (१/१५)
५. काललोपो न कर्तव्यः, तस्मात् कालः प्रतीक्ष्यते। (१/१७)
६. काले फलन्त्योषधयः, काले पुष्यन्ति पादपाः। वर्षन्ति तोयदाः काले, तस्मात्कालं न लंघयेत् (१/१८)
७. गायत्रीमन्त्रतोयार्घ्यं, दत्तं येनाञ्जलित्रयम्। काले सवित्रे किं न स्तात्, तेन दत्तं जगत्त्रयम् (१/१९)
८. किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपसितः। आयुरारोग्यमैश्वर्यं वस्तूनि सुबहून्यपि (१/२०)
९. दुर्लभा सर्वमंत्रेषु गायत्री प्रणवान्विता। लोकत्रयेऽपि गायत्र्या उपमानं न विद्यते ।। (१/२१)
१०. न गायत्र्याः परो मंत्रो न शम्भलसमं पुरम्। न कृष्णेन समो देवो नासत्यात् पातकं परम् ।। (१/२२)
११. गायत्री वेदजननी, गायत्री ब्राह्मणप्रसूः। गातारं त्रायते यस्माद्, गायत्री तेन गीयते ।। (१/२३)
१२. न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि। देव्यास्त्रिकालमभ्यासात्; सिद्धो भवति नान्यथा ।। (१/२४)
१३. गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परःशिवः। गायत्र्येव परो ब्रह्मा, ह्यादिदेवीति सा स्मृता ।। (१/२५)
१४. पुनन्ति सर्वतीर्थानि स्नानदानैर्न संशयः। (२/२)

१५. विश्वं कुशलि तेनैव विश्वनाथेन रक्षितम् । न चिन्तयेदरिष्टानि कस्यचित् कर्हिचित् क्वचित् ॥ (२/२४)

१६. विधिदृष्टं यतो भावि कलुषं भावि केवलम् । तस्मादात्मसुखप्रेप्सुः परानिष्टं न चिन्तयेत् ॥ (२/२५)

१७. या मतिस्त्वन्तकाले स्याद् गतिस्तदनुरूपतः । (२/३२)

१८. साधुभिः सह संवादो महच्छ्रेयोऽभिवृद्धये (३/२)

१९. ब्राह्मणानां धनं पुत्र ! सद्विद्यासाधुसङ्गमः ! त्यज दुर्जनसंसर्गं साधुसङ्गपरो भव (३/१८)

२०. मातुश्चरित्रं तनयो धत्तेऽपि च पितुस्तथा । (३/२५)

२१ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी । (३/४८)

२२. अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात् कुलदूषणात् । (३/४९)

२३. देशान्तरेषु धनवान् विद्यावान् वा सुखी भवेत् । भयमस्ति धने चौरात् सद्विद्यस्त्वकुतोभयः ॥ (३/५३)

२४. स्थूलाक्षैस्ते कथं लक्ष्या ये लक्ष्याः सूक्ष्मदृष्टिभिः । (३/६३)

२५. सर्वं परित्यज्य रवेर्यो मूर्ति शरणं गतः । न तं पापानि बाधन्ते महापापैरपि श्रितम् । (५/२१)

२६. रणे वा मरणे श्रेयस्तीर्थे वेति बुधोदितम् । (८/४२)

२७. चर्मास्थिसञ्चयेनैतद्वपुषा किं प्रयोजनम् (८/४३)

२८. साक्षान्मोक्षो भवेज्ज्ञानान्न कदाचन कर्मभिः । आन्वीक्षिकीं विना राजन्निर्वाणं नाधिगच्छति ॥ (९/३)

२९. भृशं भ्राम्यति भूतानि ब्रह्माण्डेष्वखिलेष्वपि । न शाम्यति विना ज्ञानं गतागतपरिश्रमः ॥ (९/४)

३०. श्रोतुरिच्छैव वक्तृणां भवत्युत्साहवर्धिनी । (९/७)

ग्रन्थ के मुद्रण में यद्यपि सावधानी बरती गयी तथापि कुछ अशुद्धियां रह ही गयीं । कुछ त्रुटियाँ तो ऐसी हैं जिन्हें पाठक स्वतः ही शुद्ध कर लेंगे । 'संस्कृत मूलपाठ' में जो मोटी-मोटी अशुद्धियां हैं उनका शुद्धि-पत्र ग्रन्थ के मूल पाठ के अन्त में दिया गया है । पाठकों से विनम्र निवेदन है कि कृपया वे इसके अनुसार ग्रन्थ में शुद्धि करलें ।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्वामी जी 'देववाणी-परिषद्, दिल्ली' से कराना चाहते थे । चूँकि 'देववाणी-परिषद्' की आर्थिक स्थिति इसे छापने की नहीं थी, अतः इसके प्रकाशन के लिए 'देववाणी-प्रकाशनम्' से प्रार्थना की गयी जिन्होंने इसका मुद्रण-व्यय वहन करना स्वीकार कर लिया । कागज की व्यवस्था महामण्डलेश्वर श्रीमहेशानन्द जी महाराज (आबू पहाड़), श्री रिसालसिंह जी शर्मा 'ऋषिजी' (शाहदरा, दिल्ली), श्री हरिकृष्णजी शास्त्री (शाहदरा, दिल्ली) तथा श्री सूर्यप्रकाश जी आचार्य (शाहदरा, दिल्ली) ने की । एतदर्थ ये सभी महानुभाव धन्यवादार्ह हैं ।

पूज्य दण्डी स्वामी श्री सुखबोधाश्रम जी महाराज के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे एक दुर्लभ ग्रन्थ को पढ़ने का अवसर दिया तथा उसके सम्पादन का सुअवसर प्रदान किया । सम्पादन-कर्म में जो त्रुटियाँ रह गयी हैं, उनके लिए विद्वान्. विवेकी तथा उदारमना पाठकों से क्षमा चाहता हूँ ।

महाशिवरात्रि, १७ फरवरी १९८५ ई०
आर-६, वाणी विहार,
नयी दिल्ली-११००५९

(डा० रमाकान्त शुक्ल)
महासचिव
देववाणी-परिषद्, दिल्ली

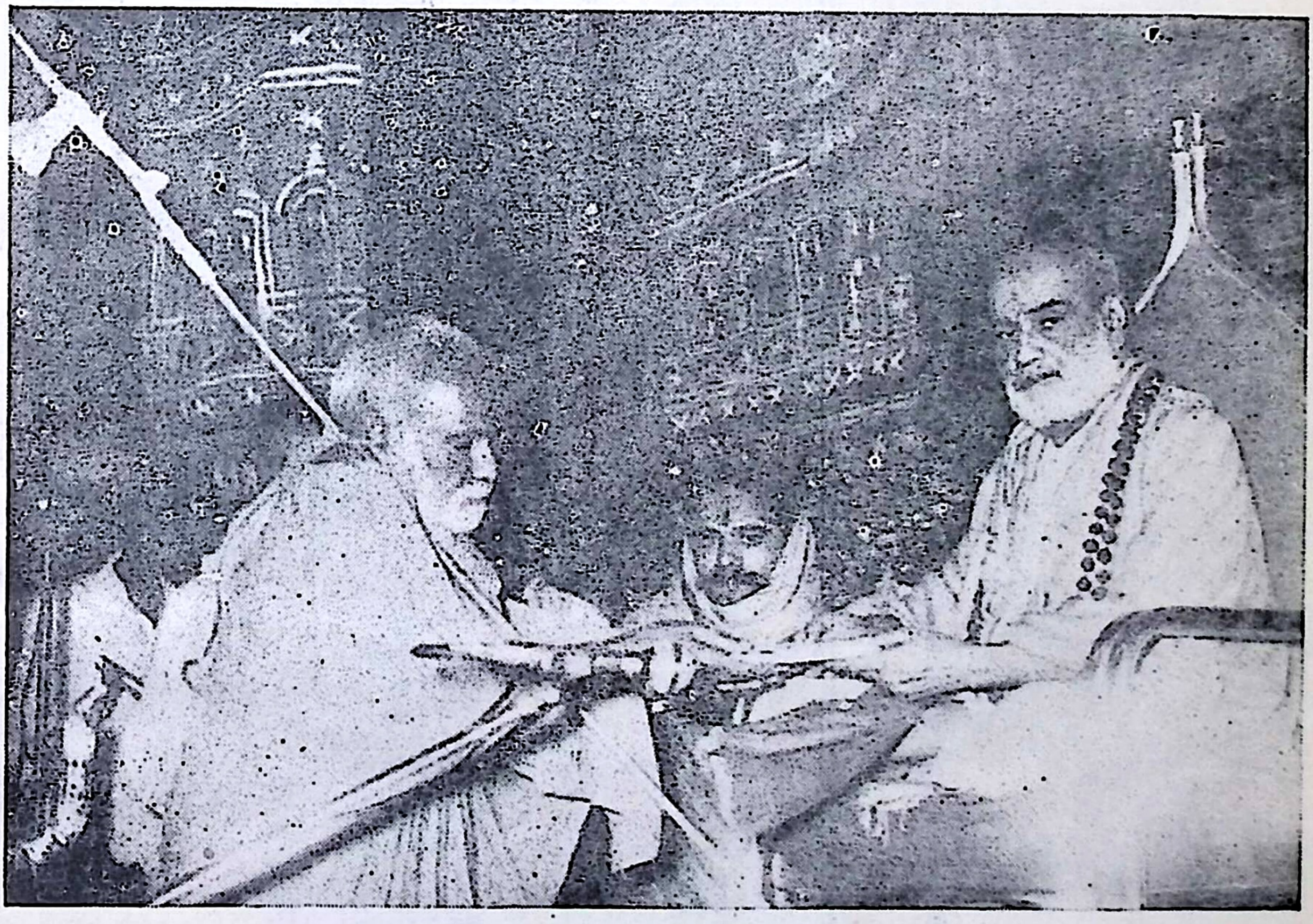

आश्विन शुक्ल ६, रविवार वि० सं० २०३६ तदनुसार २६ सितम्बर १९८२ को सम्भल में सूर्यकुण्ड के निकट आयोजित एक समारोह में 'सम्भल माहात्म्य' के प्रथम संस्करण का उन्मोचन करते हुए (दायें) पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री १००८ निरञ्जनदेव तीर्थ जी (बायें) दण्डी स्वामी श्री सुखबोधाश्रम जी ग्रन्थ की उन्मोचित प्रति प्राप्त कर रहे हैं।

तीर्थराज सम्भल का प्राचीनतम मानचित्र शक सम्वत् ९८७

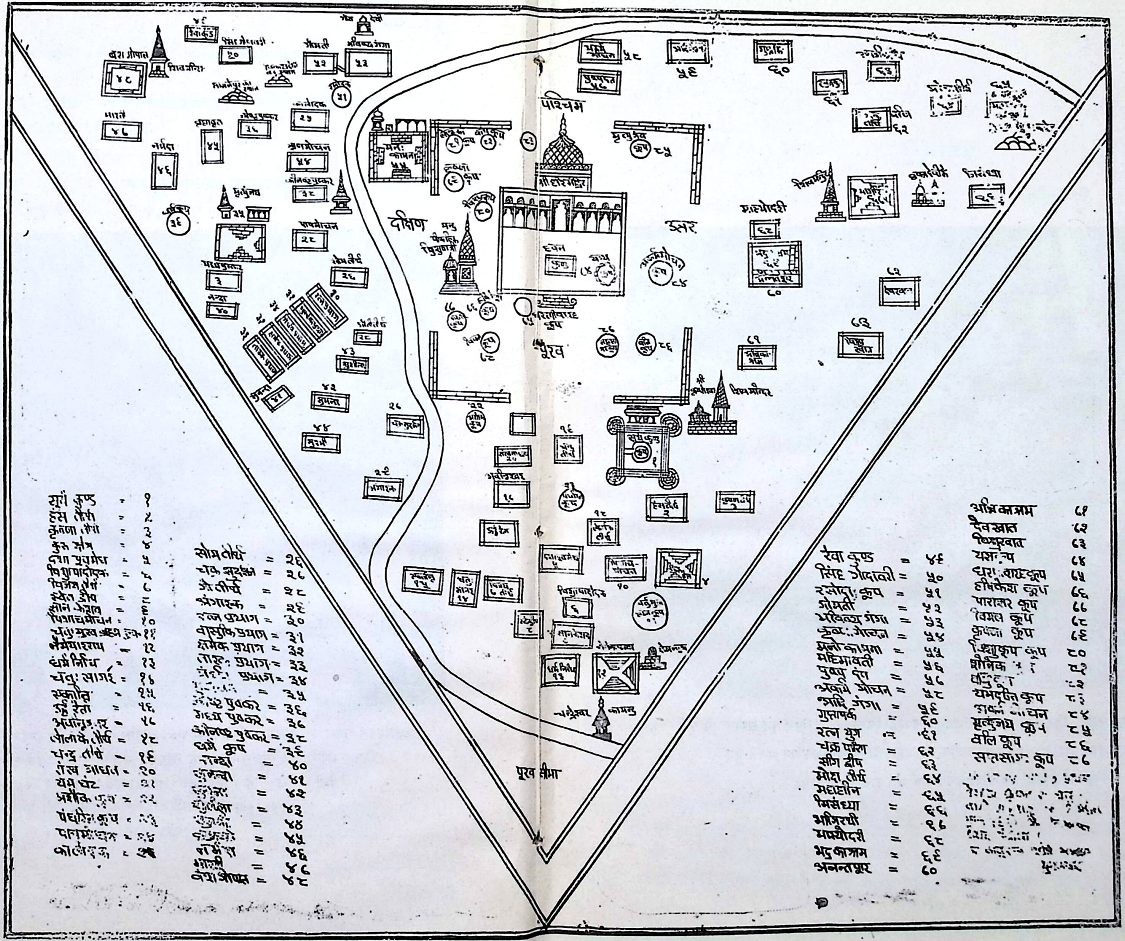
पश्चिम
दक्षिण
उत्तर
पूरब
पूरब सीमा
सूर्य कुण्ड = १
हंस तीर्थ = २
कृतणा तीर्थ = ३
कुरु क्षेत्र = ४
दशा पुष्पमेध = ५
विष्णुपादोदक = ६
विजय तीर्थ = ७
श्वेत द्वीप = ८
[illegible] = ९
पिशाचमोचन = १०
चतुर्मुख ब्रह्म कूप = ११
नैमिषारण्य = १२
धर्म निधि = १३
चतुः सागर = १४
स्कन्द = १५
[illegible] रेता = १६
[illegible] = १७
लोलार्क तीर्थ = १८
चन्द्र तीर्थ = १९
शंख माधव = २०
यम घंट = २१
अशोक कूप = २२
[illegible] कूप = २३
[illegible] = २४
कालोदक = २५
सोम तीर्थ = २६
चक्र सुदर्शन = २७
[illegible] तीर्थ = २८
अंगारक = २९
राज प्रयाग = ३०
वासुकि प्रयाग = ३१
क्षेमक प्रयाग = ३२
तक्षक प्रयाग = ३३
[illegible] प्रयाग = ३४
[illegible] = ३५
ज्येष्ठ पुष्कर = ३६
मध्य पुष्कर = ३७
कनिष्ठ पुष्कर = ३८
धर्म कूप = ३९
[illegible] = ४०
सुमन्ता = ४१
[illegible] = ४२
[illegible] = ४३
[illegible] = ४४
[illegible] = ४५
[illegible] = ४६
भारती = ४७
वंश गोपाल = ४८
रेवा कुण्ड = ४९
सिंह गोदावरी = ५०
रसोदक कूप = ५१
गोमती = ५२
भविष्य गंगा = ५३
[illegible] = ५४
मनोकामना = ५५
महिमावती = ५६
पुष्प दंत = ५७
अकर्म मोचन = ५८
आदि गंगा = ५९
गुप्तार्क = ६०
रत्न युग = ६१
चक्र पाणि = ६२
सीग द्वीप = ६३
मोक्ष तीर्थ = ६४
मद्यालीन = ६५
त्रिसंध्या = ६६
भागीरथी = ६७
मन्दोदरी = ६८
भद्रकाश्रम = ६९
अनन्तपुर = ७०
अग्निकाश्रम ७१
देवखात ७२
विष्णुखात ७३
यज्ञकूप ७४
धरा वराह कूप ७५
हृषिकेश कूप ७६
पाराशर कूप ७७
विमल कूप ७८
कृष्ण कूप ७९
[illegible] कूप ८०
भौमिक ८१
[illegible] ८२
यमदूत कूप ८३
[illegible] मोचन ८४
मृत्युंजय कूप ८५
बलि कूप ८६
सप्तसागर कूप ८७

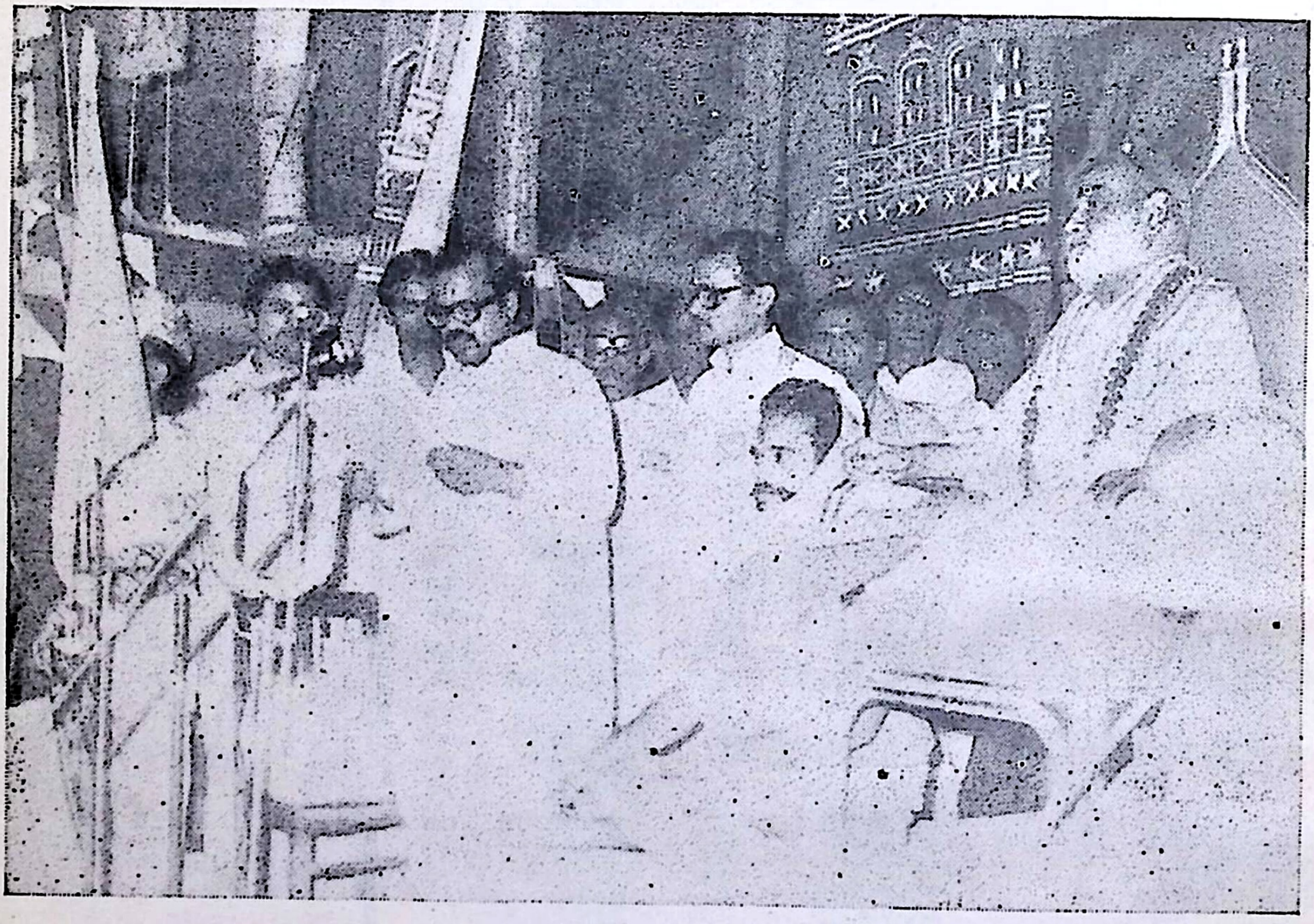

आश्विन शुक्ल नवमी, रविवार, वि० सं० २०३९ तदनुसार २६ सितम्बर, १९८२ को सम्भल में पुरी के
जगद्गुरु शंकराचार्य श्री १००८ निरञ्जनदेव जी महाराज का अभिनन्दन करते हुए
'सम्भल-माहात्म्य' के हिन्दी-अनुवादक श्री वाणीशरण शर्मा

॥ श्रीः ॥

भूमिका

(दण्डीस्वामी सुखबोधाश्रम जी महाराज)

श्री कल्कि विष्णु भगवान् की अवतारभूमि "सम्भल"

हिन्दू संस्कृति में अब तक भी वेदों के समान ही पुराणों की भी मान्यता चली आ रही है। ४ लाख श्लोकों वाले १८ पुराणों में स्कन्दपुराण भी अन्यतम है। इसमें ८१००० श्लोक हैं। इस के भूखण्ड में सम्भल का माहात्म्य लिखा है। २७ अध्याय वाले इस माहात्म्य में सम्भल के ६८ तीर्थों और १९ कूपों का वर्णन है। ये कूप भी तीर्थ ही हैं। वैसे तो सभी पुराणों में सम्भल का उल्लेख है। क्योंकि—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। अवतारानुचरितं पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराणों के इस लक्षण के अनुसार प्रत्येक पुराण में सृष्टि-प्रलय-धर्म की मर्यादाओं के व्यवस्थापक राजवंश-मन्वन्तर और अवतारों के चरित्रों का वर्णन अत्यावश्यक है।

इन अवतारों के आविर्भाव की लीलास्थलियों के वर्णन के प्रसङ्ग में श्री कल्कि विष्णु भगवान् की लीलास्थली सम्भल का वर्णन भी उपलब्ध होता है। किन्तु विशद रूप से 'सम्भल माहात्म्य' का वर्णन स्कन्दपुराण के भूखण्ड में ही है। इसका दूसरा नाम भूमिवाराह खण्ड भी है। गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' के संक्षिप्त स्कन्दपुराण-माहेश्वरखण्ड-कुमारिकाखण्ड में भी इस वर्तमान २८वें कलियुग के अन्तिम चतुर्थ चरण में सम्पूर्ण जगत् के स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु की अवतार भूमि 'सम्भल' का निर्देश है। उसमें लिखा है कि कलियुग के तीन हज़ार दो सौ नब्बे वर्ष व्यतीत होने पर इस भूमण्डल में वीरों का अधिपति शूद्रक नाम वाला राजा होगा। यह धर्म की स्थापना करेगा और पृथ्वी का भार उतरेगा। कलियुग के तीन हज़ार तीन सौ दसवें वर्ष में नन्दवंश का राज्य होगा। चाणक्य नाम वाले ब्राह्मण के द्वारा नन्दवंश का संहार होगा। कलियुग के तीन हज़ार छः सौ वर्ष बीतने पर मगध देश में हेमसदन की धर्मपत्नी अञ्जनी के गर्भ से बुद्ध के रूप में भगवान् विष्णु का अवतार होगा। कलियुग की पूर्णायु ४३२००० वर्ष है। इन में से अब तक पाँच हज़ार चौरासी वर्ष बीत चुके हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में लिखा है कि—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती। एकराशौ समेष्यन्ति तदा भवति तत् कृतम् ॥

चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति-ये तीनों ग्रह जब पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण में एक साथ प्रवेश करेंगे, तभी सत्ययुग का आरम्भ होगा। श्री कल्कि विष्णु भगवान् का अवतार भी तभी सत्ययुग और कलियुग की सन्धि में होगा।

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः। धर्मत्राणाय साधूनां जन्मकर्मापनुत्तये ॥
शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः। भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥

चर-अचर जगत् के गुरु सर्वान्तरात्मा परमात्मा धर्म और धर्मात्माओं की रक्षा के लिये अवतार ग्रहण करते हैं। सम्भल में विष्णुयशा ब्राह्मण के घर श्री कल्कि विष्णु भगवान् का अवतार होगा।

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः। असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ।।
विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः । नृपलिङ्गच्छदो दस्यून् कोटिशो निहनिष्यति ।।

देवताओं के द्वारा समर्पित शीघ्रगामी अश्व पर आरूढ़ होकर जगत् के पति भगवान् कल्कि राजाओं के वेष में छिपे हुए करोड़ों डाकुओं का संहार करेंगे ।

यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरिः । कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ।।

श्री कल्कि विष्णु भगवान् के प्रकट होते ही सत्ययुग में चारों पैरों से धर्म की स्थिति होगी और परम शान्ति के वातावरण में सभी प्रजा सुख का अनुभव करेगी ।

इसी बारहवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय में भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के राजाओं का वर्णन करते हुए श्री शुकदेव जी महाराज ने यह भी कहा है कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर के 'राजसूय' यज्ञ के आरम्भ में भीमसेन के द्वारा जिस जरासन्ध राजा का वध हुआ था, उसके पिता का नाम बृहद्रथ था । इसके वंश का अन्तिम राजा पुरञ्जय था । इसके मंत्री शुनक ने इसको मार कर भारतवर्ष में अपने वंशजों का राज्य चलाया था। इस वंश का भी अन्तिम राजा पृथ्वीराज था । प्रथम अध्याय के २८ वें श्लोक तक यह वर्णन है । इसके बाद २९ से ३२ श्लोकों तक यह कहा है कि पृथ्वीराज के बाद आठ यवनों की और चौदह तुर्कों की पीढ़ियाँ भारत पर शासन करेंगी । तुर्क, पठान, सैयद ये सब मुसल्मानों की ही विभिन्न जातियाँ हैं । इन के बाद अंग्रेज़ों की दस पीढ़ियाँ और फिर मौनों की ११ पीढ़ियां राज्य करेंगी । इनका राज्यकाल ३०० वर्ष है । 'मौन' शब्द का अर्थ बौद्ध है "मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः" संस्कृत के प्रसिद्ध कोश 'अमरकोश' के स्वर्गवर्ग में विष्णु भगवान् के अवतारों की नामावलि के प्रसङ्ग में बुद्ध भगवान् का पर्यायवाची मुनि शब्द है । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि १५ अगस्त सन् १९४७ को शासनसूत्र हाथ में आते ही अशोक सम्राट् के चक्र का चिह्न हमारी मुद्राओं में मुद्रित हुआ है । इनके बाद कलियुग की समाप्ति तक ४२६९.०० वर्षों में घटने वाली घटनाओं का संक्षेप में वर्णन करके अन्त में इसी स्कन्ध के दूसरे अध्याय में श्री कल्कि विष्णु भगवान् के अवतार की चर्चा है; जिसका वर्णन पूर्वोक्त है । श्री विष्णुपुराण (चतुर्थ अंश २४वां अध्याय ९८वें श्लोक) में कहा है कि सम्भल में विष्णुयशा ब्राह्मण के घर कलियुग की समाप्ति पर श्री कल्कि विष्णु भगवान् का अवतार होगा । अगले श्लोकों में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी कल्कि अवतार की तिथि लिखी है । इसमें कल्कि द्वादशी व्रत का विधान भी हैं, जिसमें कल्कि, हृषीकेश, म्लेच्छविध्वंसन, शितिकण्ठ, खड्गपाणि, चतुर्भुज एवं वि वमूर्ति इन सात नामों में चतुर्थी विभक्ति के साथ नमः लगाकर कल्कि विष्णु भगवान् के क्रमशः चरण, कमर, उदर, कण्ठ, भुजा, हथेली और सिर के पूजन का एवं ध्यान का विधान है । ब्राह्मण वंश में विष्णु भगवान् के वामनावतार की भी यही तिथि है । इस प्रकार १८ महापुराण, १८ अतिपुराण, १८ पुराण और इनके इतने ही उपपुराणों में कहीं न कहीं किसी न किसी प्रसङ्ग से सम्भल में होने वाले श्री कल्कि विष्णु भगवान् के अवतार की चर्चा प्राप्त होती है ।

कल्कि पुराण में तो कल्कि विष्णु भगवान् का ही सम्पूर्ण चरित्र बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है । सम्भल माहात्म्य के पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ उसका संक्षेप इस प्रकार प्रस्तुत है ।

यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः,
यत्तत्सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत्सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हारः,
पायात सत्ययुगादिकृत स भगवान् धर्मप्रवृत्तिप्रियः ।।

कल्किपुराण के इस मङ्गलाचरण में श्री कल्कि विष्णु भगवान् से यह प्रार्थना की गई है कि आप सत्ययुग के आरम्भ में धर्म प्रचार के प्रेम से ब्राह्मणवंश में अवतार लेते हैं, भूमण्डल पर अशान्ति उत्पन्न करने वाले राजाओं को आप अपने भुजदण्डरूप कालसर्प की विषाक्त ज्वालाओं से जलाकर अश्व पर आरूढ़ होकर अपनी चमकीली तलवार से मौत के घाट उतारते हैं। इस समय भी आप हमारी रक्षा करें।

नैमिषारण्य में शौनकादि महर्षियों ने बारह वर्ष में समाप्त होने वाले यज्ञ का आरम्भ किया था। वहाँ श्री सूतजी महाराज के पधारने पर महर्षियों ने उनसे यह पूछा था कि राजा परीक्षित् का निर्वाण हो जाने पर कलियुग का आदि मध्यान्त किस प्रकार हुआ ?

श्री सूत जी ने उत्तर दिया कि श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित् को कथा सुनाकर उसकी पूजा स्वीकार कर भिक्षुओं के साथ महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम में आकर ऋषियों के इसी प्रश्न का समाधान किया था। श्रीशुकदेव जी महाराज से अनुमति लेकर मैंने भी कलि की आदिमध्यान्त कथाओं को जैसे सुना था, आपको भी सुनाता हूं।

प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः। ससर्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात् स्वपातकम् ॥ (१/१३)
स चाधर्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्तनात्। श्रवणात् स्मरणाल्लोकः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ (१/१५)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पृष्ठभाग से 'अधर्म' का जन्म हुआ। इसके वंश को सुनने सुनाने से और स्मरण से भी पाप मुक्त होते हैं। अधर्म की कथा सुनना सुनाना अधर्म से निवृत्त होने के लिए है, इसलिए पुण्य का हेतु है।

अधर्म की स्त्री का नाम 'मिथ्या' है, यह भी ब्रह्मा के पृष्ठ से उत्पन्न है। इसकी बिल्ली जैसी आँखें हैं। इनका पुत्र 'दम्भ' बहुत क्रोधी है, इसने अपनी बहिन 'माया' से 'लोभ' नामक पुत्र और 'निकृति' नामक कन्या को जन्म दिया। इन दोनों का पुत्र क्रोध है, क्रोध ने अपनी बहिन 'हिंसा' की कोख से 'कलि' को जन्म दिया। चिकने काजल के समान इसका रंग है, काक जैसा उदर है, लम्बा चौड़ा मुख है, लपलपाती जीभ है, शरीर में दुर्गन्ध है, इसके वाम हस्त में लिङ्ग है, द्यूत, मद्य, स्त्री और सुवर्ण-ये इसके रहने के स्थान हैं। देखने वालों को भयभीत करने वाली इसकी भयङ्कर आकृति है। इस कलि ने अपनी बहिन 'दुरुक्ति' की कोख से 'भय' नामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्या को जन्म दिया। भय और मृत्यु के संयोग से 'निरय' का जन्म हुआ, निरय ने अपनी बहिन 'यातना' की कोख से अपने वंश का बहुत विस्तार किया, जो असंख्य है।

कलि कुल के इन धर्मविरोधियों का प्रचार आरम्भ होने पर यज्ञ-दान-तप-स्वाध्याय आदि सत्कर्मों का लोप होने लगता है। चारों वर्ण, चारों आश्रम अपना-२ कर्तव्य छोड़ बैठते हैं। कलियुग के प्रथम चरण में ही स्वार्थी राजाओं से पीड़ित प्रजा गृहविहीन हो कर मारी २ फिरने लगती है। कलियुग के दूसरे चरण में भगवन्नाम कीर्तन की ध्वनि भी कहीं सुनने को नहीं मिलती। तीसरे चरण में वर्णसङ्करता घर-२ में फैली हुई होती है और चौथे चरण में वर्णाश्रम धर्म का नाम तक मिट जाता है। तब सब देवता यज्ञ यागादि का आहार न मिलने से दुःखी होकर ब्रह्मा जी की शरण में जाते हैं। ब्रह्माजी भी इन सब देवताओं को साथ लेकर गोलोक में पहुँच कर श्री नारायण को भूमण्डल की दुर्दशा सुनाते हैं। विष्णु भगवान् भी यह बात सुनकर सम्भल में विष्णुयशा ब्राह्मण के यहाँ अपने अपने अवतार का वचन देते हैं और अपनी सहायता के लिये देवताओं को भी आर्यावर्त में अवतीर्ण होने की आज्ञा देते हैं। लक्ष्मी जी को भी आज्ञा मिली कि वह भी सिंहल द्वीप में बृहद्रथ राजर्षि की धर्मपत्नी कौमुदी की कोख से जन्म लेंगी। पद्मा इनका नाम होगा। सूर्यवंश के राजा मरु और चन्द्रवंश के राजा देवापि कल्कि विष्णु भगवान् की आज्ञा के अनुसार वर्णाश्रम की मर्यादाओं को व्यवस्थित करेंगे। वैशाख मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी के

दिन कन्या लग्न में यह अवतार होगा। चतुर्भुज रूप से माता पिता को दर्शन देकर ब्रह्मा जी की प्रार्थना से द्विभुज रूप धारण करेंगे। इनके जन्म के समय नद नदी समुद्र पर्वत आदि सभी स्थानों में शुभ शकुन होंगे और चराचर में प्रसन्नता छाएगी। धात्री, अम्बिका गङ्गा, सावित्री आदि देवियाँ उनका शारीरिक संस्कार करेंगी। उनके पिता विष्णुयशा उनके नामकरण संस्कार में उनको 'कल्कि' नाम देंगे। श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री वंशीधर जी ने 'कलिं कृणाति' इस विग्रह में कलि शव्द से औणादिक 'डि' प्रत्यय, पाणिनीय अष्टाध्यायी के 'सुट्तिथोः' सूत्र में तकारोत्तरवर्ती इकार के समान 'डि' प्रत्यय का इकार भी उच्चारणार्थ है, डित् हो जाने से कलि शव्द के इकार का लोप, क्रयादिगण की हिंसार्थक 'कॄ' धातु से क्विप् प्रत्यय, 'ॠत इद्धातोः' सूत्र से 'ॠ' के स्थान में रपर इकारादेश होकर 'कल्कि' शव्द सिद्ध किया है। इसका अर्थ है कलि का हिंसक। कल्कि-पुराण के दूसरे अध्याय के २८वें श्लोक के अनुसार कल्क (पापपुञ्ज) के विनाश के लिये अवतीर्ण होने के कारण ऋषियों ने इन्हें कल्कि कहा। कल्कि के ज्येष्ठ भ्राता कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र होंगे। गार्ग्य, भर्ग्य, विशाल आदि और भी इनके वान्धव रहेंगे। विशाखयूप नाम का राजा इन ब्राह्मणों का सेवक होगा। यज्ञोपवीत संस्कार के वाद श्री परशुराम जी महाराज कल्कि भगवान् को अपने आश्रम महेन्द्र पर्वत पर ले जाकर सम्पूर्ण विद्याएँ पढ़ाकर शिव से अस्त्र और वेदमय शुक दिलवा कर धर्म की स्थापना के लिये दिग्विजय का आशीर्वाद देंगे। कामगामी अश्व और रत्नजटित कृपाण भी इन्हें शंकर भगवान् से ही प्राप्त होगी। कल्कि विष्णु भगवान् विशाखयूप राजा के साथ और अपने ज्येष्ठ भ्राताओं तथा वन्धु वान्धवों के साथ धर्म की रक्षा के लिये विचार विमर्श करेंगे।

शिव के द्वारा भेजे गए वेदमय शुक के माध्यम से सिंहल द्वीप में पद्मावती के स्वयंवर का समाचार प्राप्त कर श्री कल्कि विष्णु भगवान् उस स्वयंवर में पधारेंगे। लक्ष्मी रूपिणी पद्मावती के प्रभाव से उस स्वयंवर में आए हुए राजाओं को स्त्रीभाव की प्राप्ति होगी। पद्मावती के साथ श्री कल्कि भगवान् का विवाह संस्कार सम्पन्न होने पर पुनः पुरुषभाव को प्राप्त हुए राजा भगवान् की इस माया का चमत्कार जानने की प्रार्थना करेंगे। तभी अनन्त नाम के मुनि प्रकट होकर अपने जन्म की कथा सुनाकर समझावेंगे कि अघटितघटनापटीयसी भगवान् की माया में सब कुछ सम्भव है। स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देश काल, वस्तु ये सव कल्पित पदार्थ हैं। भगवान् की शरणागति ही एकमात्र जीवों के कल्याण का साधन है। यह सव सुनकर भगवद्भक्ति में विभोर होकर राजाओं के चले जाने पर पद्मावती को साथ लेकर भगवान् कल्कि सम्भल में प्रवेश करेंगे। विश्वकर्मा के द्वारा उस समय इन्द्र की अमरावती के समान सम्भल की शोभा वढ़ाई जावेगी। कुछ समय के अनन्तर कल्कि भगवान् के यहाँ पद्मावती जय-विजय नाम के दो पुत्रों को जन्म देंगी। कल्कि भगवान् के अन्य भ्राताओं के यहां भी दो-दो पुत्रों का जन्म होगा। फिर कुछ समय वाद कल्कि भगवान् के पिता विष्णुयशा के द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ होने पर कल्कि भगवान् दिग्विजय के लिये प्रस्थान करेंगे। दिग्विजय के प्रसङ्ग में ही वौद्धों, जैनों और म्लेच्छों का पराभव, कलियुग की सेना का संहार, कुथोदरी राक्षसी और उसके पुत्र विकञ्ज का संहार। शशिध्वज राजा की धर्मपत्नी सुशान्ता की भक्तिभावना के प्रभाव से शशिध्वज के साथ युद्ध में मूर्च्छित होकर कल्कि भगवान् का उसके अन्तःपुर में पहुँचना, वहाँ दोनों की सम्मति से उनकी पुत्री रमा के साथ कल्कि भगवान् का विवाह, सूर्यवंश के राजा मरु और चन्द्रवंश के राजा देवापि भी इसी समय उपस्थित होकर कल्कि भगवान् की आज्ञा से अन्यान्य धर्म विरोधियों का भी संहार करके धर्म की और सत्ययुग की स्थापना करेंगे। परशुराम जी द्वारा निर्दिष्ट रुक्मिणी-व्रत की महिमा से रमा को पुत्र की प्राप्ति, ब्रह्मा आदि देवताओं का कल्कि विष्णु भगवान् के दर्शन के लिये सम्भल में उपस्थित होना, श्रीगंगा जी की स्तुति करके ऋषियों का भी वहाँ आना, मरु और देवापि के हाथों पृथ्वी की रक्षा का भार सौंप कर कल्कि विष्णु भगवान् का अपने वैकुण्ठधाम के लिये प्रस्थान आदि विषयों के साथ कल्किपुराण के पाठ और श्रवण के माहात्म्य का भी वर्णन है :—

अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम्। पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम्॥

कल्कि विष्णु भगवान् के अवतार की कथा को भक्तिपूर्वक पढ़ने वाले-सुनने वाले लोगों के सभी अशुभ नष्ट होते हैं।

सम्भल के नाम, उसकी प्राचीनता और विशेषता :

सृष्टि के आरम्भ में ही ६८ तीर्थों और १९ पुण्य कूपों के सहित सम्भल का निर्माण विश्वकर्मा जी ने ही किया था। वेदों में इन्हें 'त्वष्टा' कहा है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'तक्ष' और 'त्वक्षू' ये दो धातु शिल्प-क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होती हैं। इन्हीं से तक्षा और त्वष्टा ये दोनों शब्द सिद्ध हुए हैं। वढ़ई (खाती) के अर्थ में तक्षा विश्वकर्मा जी के लिये त्वष्टा कहा जाता है। ये शिल्पकला के प्रवर्तक हैं। खाती इन्हें अब तक भी अपना इष्टदेव मानते चले आ रहे हैं। विश्वकर्मा के मन्दिर भी इन खातियों के द्वारा बनवाए गए अनेक स्थानों में मिलते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय के 'इंजीनियरिंग' विभाग में आज भी विश्वकर्मा जी की प्रथम पूजा होती है। जरासन्ध और कालयवन के आक्रमण के समय श्री कृष्ण भगवान् की आज्ञा से विश्वकर्मा ने एक ही रात में द्वारिका पुरी को बनाकर वहाँ मथुरावासियों को बसा दिया था। सुदामा जी के एक मुट्ठी चावल खाकर श्रीकृष्ण ने विश्वकर्मा से एक ही रात में सुदामापुरी बनवाई थी। विष्णु भगवान् के कल्कि अवतार की भूमि होने के कारण सृष्टि के आरम्भ में ही विश्वकर्मा ने सम्भल को बसाकर इसमें तीर्थों और कूपों का निर्माण किया था।

सत्ययुग में इसका नाम सत्यव्रत था। त्रेता में महद्गिरि, द्वापर में पिङ्गल, कलियुग में सम्भल नाम से इसकी प्रसिद्धि है। इस प्रस्तुत माहात्म्य में और अन्यान्य पुराणों में भी तालव्य शकार से 'शम्भल' नाम निर्देश है। वर्तमान में दन्त्य सकार वाला सम्भल नाम प्रचलित हैं। भाषाविज्ञान के अनुसार उच्चारण की सरलता इस परिवर्तन का कारण है। बहुत लोग तालव्य शकार का उच्चारण कर ही नहीं सकते। जैसे - दर्शन, स्पर्शन को दरस-परस कह देते हैं। वस्तुतः शम्भल और सम्भल यह दोनों 'शम्भ्वालय'-शब्द का अपभ्रंश हैं। मूलग्रन्थों में यद्यपि शम्भ्वालय इस शुद्ध शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए था, किन्तु भारत की प्राचीन शिष्टाचार पद्धति में अत्यन्त आदरणीय व्यक्तियों का प्रत्यक्ष नामोल्लेख अनुचित माना गया है। आज भी गुरुजनों के नाम का स्पष्ट निर्देश नहीं किया जाता है। किसी अन्य प्रकार से ही उन्हें सम्बोधित करने का शिष्टाचार है। वेदों में भी इस शिष्टाचार का संकेत मिलता है। अनेक वेदमंत्रों में इन्द्र शब्द का प्रयोग है। किन्तु-यह 'इदंद्र' शब्द का संक्षिप्त रूप है। 'इदं पश्यति' यह इसकी व्युत्पत्ति है, 'सब कुछ देखने वाला' यह इसका अर्थ है। इस अर्थ को गुप्त रखने के लिये 'इदंद्र' के स्थान में इन्द्र का प्रयोग होता है। 'शम्भ्वालय' इस शब्द से भी शम्भु का आलय यह अर्थ स्पष्ट है। इस को गुप्त रखने के लिये 'शम्भल' कहा जाता है। 'परोक्षप्रिया हि देवाः—प्रत्यक्षद्विषः' इस मंत्र में देवताओं के स्वभाव का वर्णन है, कि वे अपने स्वरूप को और अपने कार्यों को गुप्त रखते हैं। इन्हें प्रकट करने वालों से उन्हें प्रसन्नता नहीं होती। इसलिए मूलग्रन्थों में शम्भ्वालय के संक्षिप्त रूप शम्भल का प्रयोग है, उच्चारण की सरलता को लेकर सम्भल कहा जाता है। प्रस्तुत 'सम्भलमाहात्म्य' में भी प्रचलित सम्भल शब्द का प्रयोग किया गया है। चारों युगों में सम्भल के पूर्वोक्त चारों नामों का उल्लेख डा० ब्रजेन्द्र मोहन सांख्यधर की Sambhal, A historical survey, पुस्तक में भी है। इन्होंने National Archives of India में पदाधिकारी रहकर सम्भल सम्बन्धी शोध कार्य किया है। युगानुसार सम्भल के पूर्वोक्त नाम इनकी इस पुस्तक में, १८८१ ई० में प्रकाशित F. Alexandar final report on the settlement of the Moradabad district पुस्तक से उद्धृत किये गये हैं।

विद्वान् लेखक ने बारहवीं शताब्दी से १८५८ तक के विशेष रूप से लिखे हुए सम्भल के अर्वाचीन इतिहास के साथ सम्भल के प्राचीन इतिहास की लड़ी जोड़ कर सोने में सुहागे का काम किया है। सम्भल की प्राचीनता की छानबीन में अथक परिश्रम करके चारों युगों में अलग-२ नामों से सम्भल की प्रसिद्धि दिखाकर पुराणों से और महाभारत से इसकी अत्यन्त प्राचीनता की जानकारी का संकेत देकर सम्भल को Eternal Town लिखकर सम्भल माहात्म्य के सिद्धान्त को पुष्ट किया है।

सम्भल की विशेषताओं को जानने के लिये उनके लिखे सम्भल के अर्वाचीन इतिहास को भी यहाँ लिखना अनुचित न होगा। उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है।

ईसा की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पृथ्वीराज चौहान का सम्भल में आधिपत्य था। उनकी सुपुत्री वेला यहाँ सती हुई थी। वेला सती के नाम से अब तक प्रसिद्ध इस स्थान को अभी २० साल के आस-पास में मुसलमानों ने मस्जिद बना लिया है। शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिये और उनके आक्रमणों से बचने के लिये सम्भल के वातावरण को अपने अनुकूल देखकर पृथ्वीराज ने सम्भल को भी अपनी राजधानी बनाया था। सुरंगों के माध्यम से भी उन्होंने अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया था। प्रसिद्धि भी है कि दिल्ली अजमेर, कन्नौज को जानेवाली सुरंगें यहाँ थीं। खुदाई होने पर उनके निशान अब भी कहीं-कहीं मिलते हैं।

कन्नौज के राजा जयचन्द ने रतिभानु के पुत्र लाखन को अपना दत्तक पुत्र मान लिया था। महोबा के राजा परमाल के प्रधान योद्धा आल्हा-ऊदल-मलखान से लाखन की मित्रता थी। पृथ्वीराज ने भानजे विजय सिंह के द्वारा ऊदल की स्त्री का अपहरण किये जाने पर आल्हा-ऊदल के साथ लाखन भी उस युद्ध में सम्मिलित हुआ था और मारा गया था। श्रावण मास के शु० पक्ष की तृतीया (हरियाली तीजों) के दिन उसकी मृत्यु हुई थी। कन्नौज से आए हुए उनके साथी योद्धा लज्जावश फिर कन्नौज न जाकर सम्भल में ही बस गए। वे अब भी तीजों का त्यौहार नहीं मनाते।

उस समय मलखान के द्वारा गाढ़ा हुआ चक्की का पाट आज भी उनके स्मारक के रूप से स्थित है। आल्हा-ऊदल का मैदान भी हल्लूसराय में प्रसिद्ध है। हल्लूसराय में रहने वाले कन्नौजिये इन्हीं बनाफल राजपूत आल्हा-ऊदल के वंशज हैं। कन्नौज से आए हुए होने के कारण कन्नौजिये कहलाते हैं।

दिल्ली की कुतुबमीनार पर लिखा हुआ है कि ११९३ से ११९६ तक कुतुबुद्दीन ने बनवाई। किन्तु श्री गणेश भगवान् की मूर्ति अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई स्पष्ट है। प्रसिद्धि भी है कि पृथ्वीराज की पुत्री वेला, यमुना जी का दर्शन करके भोजन किया करती थी, वहाँ से यमुना जी का दर्शन करने के लिये पृथ्वीराज ने ही यह मीनार बनवाई थी।

कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में सम्भल। १२५३ ई० में राजविद्रोह का केन्द्र सम्भल। १२५४ में बलवन द्वारा क्रूरतापूर्ण नरसंहार। १३०५ में अलीवेग खिलजी द्वारा सम्भल पर आक्रमण। १३८० में खड्गसिंह द्वारा सैयद भाइयों का क़त्लेआम। तभी फ़िरोज़शाह तुग़लक द्वारा खड्गसिंह पर चढ़ाई और अंधाधुन्ध नरसंहार। १३९४ में सम्भल के गवर्नर पद पर मलिकशाह की नियुक्ति। १३९६ में तैमूर की सम्भल पर चढ़ाई। १४९७ में सुल्तान मुहम्मदशाह का सम्भल पर अधिकार। १४९६ से १५२६ तक सिकन्दरशाह लोदी के आधिपत्य में सम्भल। छठी शताब्दी में हर्ष के शासनकाल में भी सम्भल में ब्राह्मणों की प्रधानता थी और उनके माध्यम से ज्ञान का सूर्य सम्भल में उदयाचल के शिखर पर चमक रहा था। १५ ० में सम्भल पर बाबर की विजय। अफ़गानों की सम्भल पर चढ़ाई। मुहम्मद क़ासिम द्वारा अफ़गान सरदारों की सम्भल में पराजय। हुमायूं के शासनकाल में मिर्ज़ा अस्करी

द्वारा सम्भल का प्रशासन। १५४० से १५४५ तक शेरशाह के अधीन सम्भल। १५४५ से १५५३ तक इस्लामशाह के आधीन सम्भल। १५५३ में मित्रसेन सम्भल का गवर्नर। १५५६ से १६०५ तक अकबर के युग का सम्भल। उन दिनों मुगल साम्राज्य की महत्त्वपूर्ण राजधानी सम्भल। इसमें ४७ परगने सम्मिलित थे। जो वर्तमान जनपद मुरादाबाद, विजनौर, रामपुर, वदायूं, वरेली तक फैले हुए थे। सन् १६२० ई० इसी सम्भल क्षेत्र से ३५ लाख ४१ हजार ८ सौ ४३ रु० राजस्व सरकार को दिया जाता था। दिल्ली और सरहिन्द को छोड़कर यह राजस्व मुगल साम्राज्य के प्रत्येक राजस्व से अधिक था। १५६४ ई० में इसका क्षेत्रफल ४० लाख ४७ हजार १६३ वीघा था। १७२० ई० में ४७ लाख ५३ हजार ३२१ वीघा हो गया था। इस प्रकार सम्भल का यह क्षेत्रफल दिल्ली सरकार से भी १ लाख २१ हजार ४५६ बीघा अधिक था। अकवर के वाद १७०५ से १६५८ तक शाहजहाँ के अधीन सम्भल। १६२४ में रुस्तमखां द्वारा मुरादाबाद की स्थापना। १६५८ से १७०७ तक औरंजेव के आधीन सम्भल। १७०७ से १७४८ तक रुहेलों के अधिकार में सम्भल। तभी अहमदशाह अव्दाली द्वारा सम्भल पर चढ़ाई। १७७३ में मराठों द्वारा सम्भल में लूटमार। १७७४ में नवाव शुजाउद्दौला का सम्भल पर अधिकार। १७८३ में सिवखों द्वारा सम्भल को लूटने का प्रयास। १८०१ में ई० ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन में सम्भल। १८०५ में अमीरखां की चहल-पहल। १८४० में सम्भल में सामुदायिक दंगे। १८५७ के विद्रोह में सम्भल में अनेक अद्भुत घटनाएँ। इन सब वातों का विस्तृत विवरण व्रजेन्द्रमोहन सांख्यधर की अंग्रेज़ी में लिखी Sambhal : A historical survey पुस्तक में है। इस अर्वाचीन इतिहास के पढ़ने से यह प्रमाणित हुआ कि सम्भल के बसाने वाले के बारे में इतिहास चुप है। इसलिये सम्भल का Eternal town होना निःसंदेह है। पूर्व सृष्टि के प्रलयकाल की समाप्ति पर जब दूसरी सृष्टि का आरम्भ होता है, तब आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल, जल से पृथिवी प्रकट होती है। तभी सम्भल भी पूर्व कल्प के अनुसार ही अपने सीमाबद्ध क्षेत्र वाले रूप में प्रकट होता है। अपने अन्तर्गत तीर्थों के सहित सम्भल भी पृथ्वी के समान अनादि सिद्ध है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारिका ये मोक्षदायक पुरियाँ भी सम्भल के समान अनादिसिद्ध हैं। सांख्यदर्शन के 'सत्कार्यवाद' सिद्धान्त के अनुसार सभी कार्य अपने कारणों में छिपे हुए रहते हैं। साधन सामग्री के जुट जाने पर प्रकट होते हैं। वेदमंत्र भी इस बात को जगह-जगह बता रहे हैं कि इस कल्प में पूर्व कल्पों के अनुसार ही सूर्य, चन्द्रमा आदि की सृष्टि हुंई। सम्भल का हरिमन्दिर भी किसी का बनाया हुआ नहीं हैं। इसको भी विश्वकर्मा ने ही सृष्टि के आरम्भ में प्रकट किया था। पृथ्वीराज के पूर्वज और पृथ्वीराज भी इसकी सम्हाल सुधार करते रहे हैं। पृथ्वीराज के मरने के बाद मुसलमान बादशाहों के हाथ में आते ही यह हरिमन्दिर मस्जिद के रूप में बदल गया। इस पर जो पत्थर चिपकाया गया है कि 'यह बाबर की बनवाई हुई मस्जिद है' कोरी धोखाधड़ी है - मस्जिद का आकार देने के लिये जो इसके चारों ओर मीनारें हैं, उन्हें हमने अभी ३०-४० साल के दरम्यान में अपनी आँखों से बनते हुए देखा है। मन्दिर की और मीनारों की निर्माण कला ही ही इस बात को सिद्ध कर सकती है कि इनके निर्माणकाल में कितना अन्तर है। ७०-७५ साल पूर्व लिये हुए नक्शे में मीनारें नहीं हैं। हरिमन्दिर का वह नक्शा इस पुस्तक में छाप दिया गया है। अब भी इसमें मन्दिरपने के बहुत चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कनिंघम ने स्पष्ट कहा है —

Archaeoiagical survey of India, Report of Tour in the Central Doab and Gorakhpur in 1874-75 and 1875-76 by A.C.L., Carlleyle with the superintendence of Major General A. Cunningbam Vol. XII. 1879 has clearly shattered the myth of Babur's Sambhal Mosque.

सम्भल माहात्म्य के पढ़ने से पता चलता है कि पूरा सम्भल भी हरिमन्दिर ही है। इसके तीनों कोनों पर तीन शिवलिङ्ग स्थापित हैं। दक्षिण में शम्भलेश्वर, पूर्व में चन्द्रेश्वर, उत्तर में भुवनेश्वर हैं। १२ कोस के इसके अन्दर वाले क्षेत्र में ६८ तीर्थ और १९ कूप हैं। इतने बड़े इसके आकार में ब्रह्मा जी का निवास है। इसके ठीक मध्य में तलवार हाथ में लिये हुए घोड़े पर सवार श्री कल्कि विष्णु भगवान् की दिव्य मूर्ति से सुशोभित हरिमन्दिर है। इस प्रकार सम्भल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं का निवास यह सूचित करता है कि ये तीनों एक ही तत्त्व हैं। इनमें भेदभाव नहीं हैं। यह सिद्धांत वेदशास्त्रों से प्रमाणित है।

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी के समय शैवों और वैष्णवों में पर्याप्त मतभेद हो गया था। इसका कारण अज्ञान था। इसलिए रामचरितमानस में उन्होंने यह निर्णय दिया कि—

शिवद्रोही मम दास कहावै। सो नर सुपनेहुँ मोहि न भावै॥
शिवद्रोही मम दास मम द्रोही शिवदास। ते नर करहिं कल्पभर घोर नरक में वास॥

सम्भल की तो रूप रेखा ही इस भेदभाव का खण्डन कर रही हैं। इसमें तीनों देवताओं का समन्वय और सामञ्जस्य है। प्राणिमात्र को भवबन्धन से मुक्त करना ही इन तीनों देवताओं का एकमात्र लक्ष्य है। काशी से और सम्भल से सम्बन्ध रखने वालों की मुक्ति का इन्हें विशेष ध्यान है। क्योंकि काशी और सम्भल दोनों शंकर भगवान् द्वारा बसाए गए हैं। ब्रह्मा जी द्वारा बनाए गए और विष्णु द्वारा सुरक्षित संसार का संहार करना शंकर भगवान् का काम है। प्रलय का काम अपने हाथ में लेने से भगवान् शंकर ने यह व्यक्त किया कि उन्हें संसार की सृष्टि रुचिकर नहीं है। ज्ञान से इस संसार का आत्यन्तिक प्रलय होता है। इसलिये यह ज्ञान शंकर भगवान् का ही स्वरूप है। तीनों कालों में संसार के रहने का नाम ही ज्ञान है और मोक्ष भी यही है। ब्रह्मा और विष्णु के द्वारा बनाए गए बचाए गए इस संसार को बिगाड़ देने वाले शंकर भगवान् से ब्रह्मा और विष्णु अप्रसन्न नहीं होते, क्योंकि जीवमात्र को मोक्ष दिलाने में तीनों एकमत हैं। एक ही हैं। उपाधियों के भेद से एक ही तत्त्व तीनों रूपों में अभिव्यक्त हुआ है।

सम्भल के तीनों कोनों पर शंकर भगवान् स्थित है। इन तीन कोनों वाले सम्भल की बाह्य परिक्रमा २४ कोस है। कार्तिक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी पञ्चमी को इस परिक्रमा में हर साल हज़ारों नर-नारी सम्मिलित होते हैं। अन्दर के परकोटे का क्षेत्रफल १२ कोस है, यहाँ ब्रह्मा जी का निवास है। इसके ठीक मध्य में हरिमन्दिर है, जो आज जुमामस्जिद है। ग्रामीण जनता आज भी इसको हरजी मंडल कहकर पुकारती है। काशी में विश्वनाथ का मन्दिर भी आज मस्जिद है। अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थ स्थानों में भी ऐसा ही है। सम्भल में ऐसा होना क्या आश्चर्य है जबकि पृथ्वीराज के बाद सम्भल में मुसलमानों का आधिपत्य रहा है।

ख़ुदा को पाने के लिये ख़ुदी को मिटाकर क़ैदेहस्ती को तोड़कर सच्चे दिल से ख़ुदा की इबादत में लगे रहने वाले मुसलमान कभी भी किसी के दिल को ठेस पहुँचाने वाले काम नहीं करते। जिन मुसलमानों ने मन्दिरों को तबाह करके हिन्दुओं का जी दुखाया है, उन्हें मुसलमान नहीं कहा जा सकता। मुस्लिम ईमान=मुसलमान। ईमानदार इसका अर्थ है। पाक इरादे वाले ही ईमानदार हो सकते हैं। दूसरों का जी दुखाने को पाक इरादा नहीं कह सकते।

यद्यपि हिन्दू राजा दिग्विजय करके ही राज्य का शासनसूत्र अपने हाथ में लेते थे; किन्तु उन देशों को जीत कर उनकी संस्कृति नहीं मिटाते थे। राम ने रावण को जीत कर उसके भाई विभीषण को ही लंका का राज्य दिया, बाली को मारकर उसके भाई सुग्रीव को ही किष्किन्धा दी। मुसलमान बादशाहों की भी ऐसी बहुत मिसालें हैं, जिनमें

अपने पराए का भेदभाव न रखकर सही इंसाफ़ किया गया है। अकबर की शाहजहां की ऐसी कई नज़ीरें हैं। हिन्दू राजाओं ने भी बहुत गुनाह किये हैं; किंतु उन्होंने मस्जिदें ढहाई हों ऐसी कोई मिसाल नहीं।

सच्चे हिन्दू और सच्चे मुसलमान मन्दिर और मस्जिद में कोई भेदभाव नहीं रखते। दोनों ही राम के या खुदा के घर हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अपने-अपने रास्ते से चलकर राम को या रहीम को पा सकते हैं। मुसलमानों के सम्बन्ध में तो यह निष्पक्षपात कहा जा सकता है कि इनके बुजुर्ग अवश्य ही दीनदार और ईमानदार थे। अभी एक ऐसे मुसलमान का इन्तक़ाल हुआ जिन्होंने अपने जीवन में कई गोदान किये थे। अभी एक मुसलमान ने बिलारी स्टेशन के पास देवी का मन्दिर बनवाया है; इसमें हिन्दू पुजारी पूजा करता है और यह मन्दिर की मर्यादा के अनुसार बाहर से ही दर्शन करते और प्रसाद लेते हैं। अच्छे शरीफ़ मुसलमानों की तो यहाँ इतनी संख्या है कि अगर अलग-अलग सबके नाम लेकर उनकी शराफ़त की घटनाएँ लिखी जावें तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जाएगा। अभी बीते हुए सम्भल के दंगे में मुसलमानों ने उन दंगाई मुसलमानों से लड़ाई ठान ली, जो हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद फैलाने में मुखिया थे।

अच्छे बुरे हिन्दुओं में भी हैं, मुसलमानों में भी हैं। लेकिन पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ने वाले, रोज़ा रखने वाले, सच बोलने वाले, ईश्वर पर विश्वास रखने वाले, मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दूधर्म के अनुसार सन्ध्या करने वाले, हवन करने वाले, धर्म कार्यों में अग्रसर होने वाले हिन्दुओं की संख्या बहुत कम है। ऐसी स्थिति में इन हिन्दुओं को यह हरिमन्दिर दे भी दिया जाये तो भी ये इसकी इतनी देखभाल नहीं कर सकते, जितना जुमा मस्जिद के रूप में मुसलमान इसकी हिफ़ाजत कर रहे हैं। इस बात की मिसाल वेला सती का थान है। साल छह महीनों में कभी कोई हिन्दू इसमें आकर दिया जला जाता होगा, इसके चारों तरफ घास फूँस और मिट्टी के ढेर थे, अब जब से मस्जिद बन गई है, तब से दिया भी रोज़ जलता है, नमाज़ भी पढ़ी जाती है। इसलिये हम यह नहीं कहते कि यह मन्दिर हमको दे ही दिया जाए, यह तो हिन्दुओं के हाथ में तब आ ही जाएगा, जब वे इसके अधिकारी बनेंगे। हिन्दुओं ने अपने हिन्दूधर्म के चिह्न चोटी-जनेऊ उतारकर फैंक दिये हैं, मद्य-मांस का सेवन खुले आम करते हैं, वेदशास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना अब इन हिन्दुओं में बन्द सा ही है।

यहाँ तो सिर्फ हमको इतना ही कहना है कि सच्चे मुसलमानों को इस सचाई पर कि यह हरिमन्दिर है, बाबर की बनाई मस्जिद नहीं है पर्दा नहीं डालना चाहिए।

सन् १९८२ में छपे 'सम्भल माहात्म्य' के प्रथम संस्करण की भूमिका में जब हमने सम्भल के मुसलमानों की प्रशंसा छापी तो कुछ हिन्दुओं ने यह ऐतराज़ उठाया कि ऐसे पवित्र ग्रन्थ में मुसलमानों की प्रशंसा ठीक नहीं। उन हिन्दुओं का यह आक्षेप सुनकर दुःख हुआ कि इन्हें अपने हिन्दूधर्म की महिमा का ज्ञान ही नहीं है। श्रीमद्भागवत के अनेक श्लोकों में कहा है कि हरिभक्त मुसलमान की अपेक्षा हरिविमुख ब्राह्मण भी नीच है। इस ग्रन्थ में भी लिखा है कि सम्भल मे मरने वाले म्लेच्छों और कीट-पतंगों का भी उद्धार होता है। हिन्दुओं के ये धर्मशास्त्र हिन्दुओं के लिये ही नहीं, जीवमात्र के कल्याण के लिये है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।
(श्रीमद्भगवद्गीता)

विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गो, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी एक ही आत्मा को देखने का नाम पाण्डित्य है। सनातन धर्म के इस उदार सिद्धान्त को न समझकर वृथा कटाक्ष करने वाले इन हिन्दुओं को देखकर किसी शायर की शायरी याद आ गई—

हिन्दू चला गया न मसल्मां चला गया। सच पूछिये तो मुल्क से इसां चला गया।।

लोक में और शास्त्र में यह प्रसिद्धि है कि शंकर भगवान् ने काशी को अपने त्रिशूल पर बसाया है। यहाँ मरने मात्र से जीवमात्र को मोक्ष मिलता है। सम्भल भी त्रिकोण बसा हुआ है। इसके भी द्वारपाल शंकर भगवान् हैं। जीवमात्र को भवबन्धन से मुक्त कराना इनका काम है। इसलिये सम्भल भी मोक्षधाम है। इतना भेद है कि कामनाओं को लेकर यहाँ मरने वालों की सद्गति होती है और कामना रहित होकर मरने वालों को मोक्ष मिलता है। सम्भल माहात्म्य के पढ़ने से यह पता चलता है कि सृष्टि के आरम्भ से बसे हुए सम्भल में मोक्षमार्ग पर चलने वाले ब्राह्मणों की ही प्रधानता थी। मन पर इन्द्रियों पर निग्रह रखने वाले, माया-मोह के वश में न होने वाले, क्रोध को जीतने वाले, दान के पचाने की सामर्थ्य होने पर भी दान लेने में संकुचित होने वाले, वेदविद्या के पारगामी तपस्वी ब्राह्मण यहाँ रहते थे। इन ब्राह्मणों को शुक्ल कहा जाता था। पद्मपुराण में लिखा है कि—

वंशशुक्ला वृत्तशुक्ला विद्याशुक्लास्तथैव च। त्रिशुक्लनाम विप्रेन्द्रा पूज्यन्ते सवनादिषु॥

जिन ब्राह्मणों के मातृवंश और पितृवंश में कोई धब्बा न लगा हो, जिनकी आजीविका भी शुद्ध हो, षडङ्ग वेद के ज्ञान में जिन्हें कहीं कोई संशय न हो, उन ब्राह्मणों को शुक्ल कहते हैं। यज्ञों में इन शुक्ल ब्राह्मणों का पाद्यार्घ्य से प्रथम पूजन होता था। वर्तमान में भी यहाँ सम्भल में शुक्ल ब्राह्मणों की ही प्रधानता है। कलियुग का प्रभाव बढ़ जाने से इनमें विद्या की कमी होने पर भी एक बात अब तक भी ऐसी चली आ रही है कि जिससे इनके पूर्वजों का मोक्षमार्गानुगामी होना सिद्ध होता है। ऐसे घोर धर्म संकट के समय भी शुक्लों का यह सुनहरी नियम चला आ रहा है कि ये ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी क्षत्रिय-वैश्य आदि से दान नहीं लेते। आजीविका के लिये और-२ साधनों के अपना लेने पर भी दान किसी अन्य जाति से नहीं लेते। धर्मशास्त्रों में लिखा है—

"अमृतं ब्राह्मणस्यान्नम्"

अर्थात् ब्राह्मण का अन्न मोक्ष का साधन है। अब तक इस नियम के चले आते रहने से इनके पूर्वजों का मोक्षमार्गानुगामी होना सिद्ध होता हैं। ब्राह्मणों के यहाँ अब भी विवाहादि उत्सवों सर इनका पाद्यार्घ्य होता है; किन्तु पाद्यार्घ्य न कह कर अब इसको पदारक कहते हैं। दक्षिणा मात्र ही इसका अर्थ रह गया है।

सम्भल में मिश्रब्राह्मणों का भी बाहुल्य है। वेदों की मिश्र संहिताओं पर इनका अधिकार था। मिश्र संहिताओं में चारों वेदों की इतिकर्तव्यताओं का समावेश है। इन संहिताओं के जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण मिश्र कहलाते थे और यज्ञों में ब्रह्मा के पद पर आसीन होते थे। इनके वंशजों में भी आज कोई वेदविद्यानुरागी देखने में नहीं आता।

सांख्यधर ब्राह्मणों का तो मोक्ष ही मुख्य विषय था। **"सयम्क् ख्यायते-अधिगम्यते ब्रह्मतत्त्वं येन तत् सांख्यम्, धरतीति धरः, सांख्यस्य धरः सांख्यधरः"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार मोक्षतत्त्व का उपदेश देने वाले ब्राह्मण सांख्यधर थे। सांख्यधर ब्राह्मण भी सम्भल में बहुत हैं। किन्तु दैवगति से आज इनके वंशजों में भी वेदों का पढ़ना पढ़ाना बन्द है।

श्रोत्रिय ब्राह्मण भी सम्भल में बहुत हैं। छन्द-कल्प-ज्योतिष-व्याकरेण-निरुक्त-शिक्षा—इन छः अंगों सहित वेद की किसी भी एक शाखा को पूर्ण रूप से जानने वाले ब्राह्मण श्रोत्रिय कहे जाते थे। आज अब इन ब्राह्मणों को सोती जी कहा जाता हैं। वेदविद्या की तरफ़ से ये सोए हुए हैं; इसलिये इन्हें सोती कहना ठीक है। यह श्रोत्रिय शब्द का ही अपभ्रंश है।

सारस्वत ब्राह्मण भी यहाँ बहुत अधिक हैं। ये तो हैं ही सरस्वती के पुत्र। वेद-वेदाङ्गों की विद्या के साथ चौंसठ कला, काव्यरचना, राजनीति, अर्थशास्त्र में भी ये सारस्वत ब्राह्मण निपुण थे।

इन से अतिरिक्त द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी ब्राह्मणों के भी यहाँ बहुत घर हैं। दो वेदों के ज्ञाता द्विवेदी, तीन वेदों के ज्ञाता त्रिवेदी, चारों वेदों के ज्ञाता चतुर्वेदी कहे जाते थे। अब इन्हें दुबे, तिवाड़ी, चौबे कहते हैं। इन सभी ब्राह्मणों के घरों में आज कहीं भी वेदध्वनि सुनने को नहीं मिल रही।

यद्यपि इस वर्तमान काल में उन ब्राह्मणों के वंशज आज अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति के अनुसार उच्च शिक्षाएँ प्राप्त किये हुए ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदों पर स्थित हैं, लोक में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है, प्रभावशाली हैं, यशस्वी हैं, शूरता, वीरता, पराक्रम में भी किसी से कम नहीं हैं; किन्तु जिस वेदविद्या के आधार पर शुक्ल, मिश्र, श्रोत्रिय आदि इनकी उपाधियाँ हैं, उन नामों को नहीं उछाल रहे। इन नामों से पता चल रहा है कि इनके पूर्वज मोक्षमार्गानुगामी थे। उन ब्राह्मणों के निवास के कारण भी सम्भल मोक्षधाम था। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, अन्त्यज आदि भी उन ब्राह्मणों का आदर करते थे और उनके उपदेशों पर चलते थे। इसलिये वे सब भी मोक्षमार्गानुगामी थे, इसमें सन्देह नहीं।

पृथ्वीराज के बाद मुसलमानों के हाथ में सम्भल के आ जाने पर सभी चौहान ठाकुर इधर-उधर चले गए थे। ज़ि० मैनपुरी के चौहान प्रातः सम्भल से ही अपना निकास बताते हैं। मिलावली (२४ गांव की रिसायत थी) ज़ि० मैनपुरी के ठाकुर कायमसिंह के द्वारा जब वहाँ के अनेक चौहान ठाकुरों से बातचीत हुई तब वे सम्भल का नाम सुनकर गद्‌गद हो गए कि यह हमारे पूर्वजों की निवासस्थली है। उनके सद्व्यवहार से पता चला कि वे अवश्य उन पूर्वजो की सन्तानें हैं; जो मोक्षपथ पर चलने वाले थे। सम्भल में अब चौहान ठाकुरों का कोई वंशज नहीं है। आस-पास तो चौहानों के घर हैं।

कन्नौज से आए हुए हल्लूसराय के कन्नौजिये तो आल्हा-ऊदल के वंशज बनाफल राजपूत यहाँ बसे ही हुए हैं। इनके पूर्वजों की यह सूक्ति प्रसिद्ध है कि—

पल्ला भिड़ जाय परनारी सौं, क्षत्रिय धर्म मेरो घटि जाय।

इनके घरानों का सदाचार भी यह बताता है कि इनके पूर्वज सदाचारी थे और ब्राह्मण भक्त थे। अब भी इन के घरों में पूजा पाठ दान पुण्य सब सनातन धर्म की पद्धति के अनुसार होता है।

सम्भल निवासी वैश्यों के घरों में तो इस समय भी सनातनधर्म के अनुयायी, वैदिक धर्म पर श्रद्धा रखने वाले, गो सेवा, अतिथि सत्कार आदि सदाचार का पालन करने वाले अनेक सत्पुरुष हैं। अग्रवाल, रस्तौगी, गोहोई, बारह-सैनी, चौसैनी, क्वारतने आदि अनेक उपजातियाँ इन वैश्यों की यहाँ सम्भल में हैं। यहाँ के वृद्धों के मुख से सुनी जाने वाली यहाँ के वैश्यों के पूर्वजों की धर्मपरायणता, उदारता आदि सद्‌गुणों के चमत्कारों से पूर्ण ऐसी कथाएँ प्रचलित हैं कि जिनसे उनका मोक्षपथावलम्बी होना निश्चित है।

शूद्रों में भी अब तक ऐसे व्यवहार देखने में आ रहे हैं कि वे तीनों वर्णों की सेवा करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने में तत्पर हैं।

धर्म के ह्रास का समय होने के कारण सभी जातियों में थोड़ी उलट फेर देखने में आ रही हैं; किन्तु फिर भी प्राचीन मर्यादाएँ अभी तक वैसी ही चली आ रही हैं, जिनसे इनके पूर्वजों का धार्मिक प्रेम और परमेश्वर की भक्ति प्रकट होती है।

कल्कि विष्णु भगवान् की अवतार भूमि होने के कारण शंकर भगवान् ने सम्भल को भी काशी के समान ही महत्त्व दिया है। इसलिये जन्ममरण के अनादि प्रवाह में पड़े हुए प्राणियों का सम्बन्ध जब काशी से या सम्भल से जुड़ता है तब समझना चाहिए कि वे प्राणी मोक्षधाम के द्वार पर आ बैठे हैं।

सम्भल में कल्कि अवतार हो चुका या होगा ? सम्भल कहाँ है ?

इस प्रश्न के उठाने की इसलिये आवश्यकता हुई कि —

वि० सं १९९८ जुलाई १९४१ ई० को गुड़गावाँ से प्रकाशित चेतावनी पुस्तक का छठा संस्करण पढ़ने को मिला। इसमें लिखा है कि वि० सं० १९८१ वैशाख शुक्ल द्वितीय सोमवार कृत्तिका नक्षत्र में विष्णुयशा जी के घर सुमति की कोख से सम्भल में कल्कि जन्म हो चुका है। ब्रह्मा जी की आज्ञा से परशुराम जी उन्हें महेन्द्रपर्वत पर ले गए हैं। वि० सं० १९९९ में ऋषियों महर्षियों सहित सबसे पहले बंगाल में भगवान् प्रकट होंगे। फिर मगध, बिहार, हरिद्वार, दिल्ली व मथुरा में आवेंगे। मथुरा में कुछ दिन ठहर कर फिर सारे संसार में घूमेंगे। पंजाब और ईरान होकर पश्चिम में जावेंगे।

यह भी लिखा है कि वि० सं० २०००, १ अगस्त सन् १९४३ ई० १७ घड़ी ५३ पल से कुछ पहले ही कलियुग समाप्त होगा। चार पैरों वाला धर्म सत्ययुग में स्थापित होगा। संकल्पों में जो अब तक कलियुग का प्रथम चरण ही गाया जा रहा है, यह पण्डितों का घोर अज्ञान है।

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर जी महाराज को भी चेतावनी में ज्योतिष के ज्ञान से शून्य लिखा है। मेधातिथि जैसे प्राचीन धुरन्धर विद्वान् को भी भ्रान्त बताया है। चेतावनी लेखक ने अपने बारे में लिखा है कि इन सब बातों का मुझे समाधि में साक्षात्कार हुआ है।

'कुराली' पञ्जाब में मार्तण्डपञ्चाङ्ग के प्रणेता श्री पं० मुकुन्द वल्लभ जी ने चेतावनी का खण्डन लिखा तो चेतावनी लेखक ने उन्हें भी बुरा-भला कहा।

शम्भल कहाँ है ?—यह शीर्षक देकर चेतावनी में यह लिखा है कि सम्भल के सम्बन्ध में पंडितों में बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि जिला मुरादाबाद की तहसील सम्भल कल्कि अवतार की भूमि है। इसका क्षेत्रफल तो १ कोस भी नहीं है। मैंने इसका पता भी बड़ी खोज के पश्चात् निकाला है।

'गोबी' का प्रसिद्ध रेगिस्तान चीन से उत्तर में है। उसके नीचे खाड़ी 'लिया उटंग' है। पूर्व में कोरिया है। पूरब और उत्तर में 'मनचोरिया' है। वहाँ शम्भल है। आजकल वहाँ रेत है। इस रेत के पहाड़ हवा से उड़कर दूसरी जगह आते जाते रहते हैं। बाहर का कोई मनुष्य वहाँ नहीं जा सकता। इस शम्भल को वैवस्वत मनु ने वर्तमान सातवें मन्वन्तर के प्रथम सत्ययुग में बसाया था। सन् १८९९ ई० में स्वेडन के रहने वाले Sir Suen Heidlen वहाँ गए गए थे। इन्होंने आकर यह ऊपर का वृत्तांत लिखा था। उनकी छपी हुई पुस्तक मिलती है। इत्यादि......।

हम को तो अब अपनी इस भूमिका में चेतावनी के खण्डन करने की आवश्यकता ही नहीं रही। अब तो वि० सं० २०४१ है। इसे कोई सत्ययुग नहीं कह सकता। वि० सं० १९९९ में कल्कि भगवान् का प्रकट होना, बंगाल, बिहार, मगध, हरिद्वार, दिल्ली, मथुरा में उनका घूमना, मथुरा में कुछ दिन ठहरना, यह सब बातें कपोल कल्पित सिद्ध हो गई। श्रीधर, मेधातिथि आदि प्राचीन आचार्यों को और नवीन पं० मुकुन्दवल्लभ जी को ज्योतिष के ज्ञान से शून्य बताना भी मिथ्या सिद्ध हुआ। ज्योतिष के प्राचीन और नवीन आचार्यों के अनुसार कलियुग का अभी प्रथम चरण ही है। कल्कि विष्णु भगवान् के अवतार का समय भूमिका के आरम्भ में निर्दिष्ट है। श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के द्वितीय अध्याय में कहा है—

"त्रिंशत् विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम्।"

जब २० या ३० साल की आयु बड़ी आयु मानी जाएगी, धर्म का नाम भी कहीं सुनने को न मिलेगा, सभी रक्षक, भक्षक वन जावेंगे, जातपाँत के मिट जाने से जव कोई अपने पूर्वजों का इतिहास न सुना सकेगा, भूख-प्यास और बीमारियों से सताई हुई प्रजा दुःखों की मूर्ति वनकर कराहने लगेगी, तव कलियुग के चतुर्थ चरण के अन्त में अवतार होगा। चार लाख ३२ हजार वर्ष कलियुग की पूर्णायु है। जिसमें अव तक ५०८४ वर्ष बीत चुके हैं। ४, २६, ९१६ वर्ष बीतने पर अवतार का समय उपस्थित होगा।

यदावतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरिः। कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी।

कल्कि भगवान् का अवतार होते ही सत्ययुग का प्रारम्भ होने पर सात्त्विक सम्पत्ति सम्पन्न प्रजा उत्पन्न होगी।

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुस्त्विक्ष्वाकुवंशजः। कलापग्राम आसाते देवमायाबलान्वितौ।
ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुमोदितौ। वर्णाश्रमयुतान् धर्मान् पूर्ववत् प्रथयिष्यतः॥

तभी कल्कि विष्णु भगवान् की आज्ञा से चन्द्रवंश के राजा मरु पूर्व के समान ही वर्णाश्रम की मर्यादाओं को सुदृढ़ करेंगे।

कलियुग के चारों चरणों में प्रजा की क्या स्थिति होगी? इसका वर्णन पूर्व प्रकरण में हो चुका है। तदनुसार भी अभी कलियुग के प्रथम चरण का ही समय है।

यद्यपि अभी अवतार का समय नहीं है; तथापि भक्तों की पुकार उन्हें हर समय अवतीर्ण होने के लिये विवश कर देती है। पद्मपुराण का श्लोक है—

यत्र यत्र तव सेवकार्दनम् तत्र तत्र बत देहधारिणा।
पाल्यते च भवता निजः प्रभो पापहारिचरितैर्मनोहरैः॥

जब-जब भक्तों पर पर भीड़ पड़ती है तभी तब उनकी रक्षा के लिये भगवान् अवतार लेते हैं। किस भक्त की किस कामना को किस रूप में किस प्रकार भगवान् पूर्ण करते हैं— यह तो वही जानते हैं, इसलिये अधीर नहीं होना चाहिये कि अभी से जब इतने अत्याचार हो रहे हैं तब ४२६९१६ साल तक क्या होगा और कैसे सहन होगा? इस कलियुग में जहाँ इतनी बुरायाँ हैं, वहाँ इसमें एक अच्छाई भी है। (स्कन्दपुराण वैशाख मा० २०-२१)।

कृते यद्वत्सरात् साध्यं पुण्यं माधवतोषणम्। त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप!
तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत्॥

सत्ययुग में जितना पुण्य एक साल में मिलता है, त्रेता में एक मास में, द्वापर में एक पक्ष में, कलियुग में उतना पुण्य श्री हरि के स्मरण मात्र से प्राप्त होता है। भक्तवत्सल भगवान् का स्मरण करते रहना चाहिए।

"हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्" (भागवते)

श्रीहरि की स्मृति सभी विपत्तियों से छुटकारा दिलाती है। इसलिये अधीर होने का कोई काम नहीं।

सम्भल के सम्बन्ध में भी जो चेतावनी में उल्टी सीधी हाँकी गई हैं कि चीन के उत्तरी रेगिस्तान में वह शम्भल हैं, रेत में दब जाने के डर से वहाँ कोई आ ही नहीं सकता, स्वेडन का कोई आदमी वहाँ से किसी प्रकार बचकर आया, उसने यह सव कुछ बताया।

वे सिर पैर की ऐसी मनगढ़न्त बातें बनाने वाले ५२ सराय ३६ पुरों की बस्तियों से भरे हुए २४ कोस में फैले हुए सम्भल को एक कोस से भी कम विस्तार का लिखने वाले चेतावनी लेखक के दुःसाहस को धन्यवाद! पाठकों

की समझ में सरलता पूर्वक यह बात बैठ सकती है कि चेतावनी लेखक ने झूठ बोलने में थोड़ा भी संकोच नहीं किया है।

सम्भल के बारे में और भी कुछ लोग कहते सुनते हैं कि बिहार में, उड़ीसा में, पञ्जाब में भी सम्भल है या सम्बलपुर है। उनका सी उत्तर देने की हमको जरूरत नहीं। क्योंकि जिन युक्तियों और प्रमाणों से जिला मुरादाबाद की तहसील सम्भल को अपने इस ग्रन्थ में हमने कल्कि विष्णु भगवान् की अवतार भूमि सिद्ध किया है; उनका खण्डन करते हुए उतने ही प्रवल प्रमाणों से यदि कोई किसी और सम्भल को अबतार भूमि सिद्ध करने का साहस रखता हो तो उस पर विचार किया जा सकता हैं। ज़ि० मुरादाबाद की तहसील सम्भल ही कल्कि विष्णु भगवान् की अवतार भूमि है; इसका सबसे बड़ा प्रवल प्रमाण है कल्किपुराण तृतीय अंश १८ अध्याय श्लोक ४—

यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत्। मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्कस्य पदाश्रयात्।

६८ तीर्थों का जहां सम्भव है वही सम्भल कल्कि विष्णु भगवान् के चरणों के प्रताप से मोक्ष का धाम है। सम्भल में ये सब तीर्थ अब भी हैं। उत्तरोत्तर दयनीय दशा को प्राप्त होते चले जा रहे हैं। भगवान् के समय अपना पूर्वोत्कर्ष फिर प्राप्त करेंगे।

श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र' ने भी 'श्री कल्कि विष्णु भगवान्' नामक पुस्तक में ज़ि० मुरादाबाद की तहसील सम्भल को ही श्री कल्कि विष्णु भगवान् की अवतारस्थली माना है।

सम्भल की वर्तमान दुर्दशा के समय अपना कर्तव्य :

कुछ अच्छे लोग भी यह कहते हुए सुनने में आए हैं कि सम्भल की इस वर्तमान दुर्दशा को देखकर इसकी इतनी महिमा पर कैसे विश्वास किया जाय? उन लोगों की इस शंका का समाधान यह है कि तब तो काशी, अयोध्या, मथुरा आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों की महिमा पर भी विश्वास कैसे किया जा सकेगा। काशी विश्वनाथ की ज्योतिर्लिङ्गों में गणना है। आज वहाँ उस स्थान पर मस्जिद खड़ी हुई है। मस्जिद के आगे अब भी श्री नन्दीश्वर की विशाल मूर्ति खड़ी हुई प्राचीन विश्वनाथ मन्दिर की याद दिला रही है। अयोध्या-मथुरा आदि तीर्थ स्थानों की दुर्दशा में भी कोई कमी नहीं है। कलियुग की परिस्थिति का वर्णन करने वाले शास्त्रों में तीर्थ स्थानों की दुर्दशा का होना लिखा ही हुआ हैं। क्या इस समय गौओं की दुर्दशा देख कर उनके रोम-रोम में देवताओं के निवास का उपदेश करने वाले शास्त्रों पर विश्वास न किया जाय?

ब्राह्मणों की भी दुर्दशा देख कर उनके प्रति आदर का उपदेश करने वाले शास्त्रों पर भी क्या विश्वास नहीं रखना चाहिये? जून १९८२ के Tribune में छपा है कि भारत की नदियों में सर्वमान्य गंगा को आज की सरकार अधिक से अधिक दूषित करने पर तुली हुई है। स्नान की तो बात क्या, कहीं-कहीं गंगाजल सिचाई के योग्य भी नहीं रहा है। गन्दे नाले और सड़ी गली चीज़ें बहाई जाती हैं। अन्धविश्वासी महामूर्ख हिन्दू उसमें अधजली लाशें बहा देते हैं। प्रथम श्रेणी के ४८ छोटे-छोटे द्वितीय श्रेणी के ४६ बड़े-बड़े और भी सैकड़ों कल कारखानों का कचरा गंगा में प्रतिदिन बहाया जा रहा है। गंगा की इस दुर्दशा को देख कर क्या गंगा में से भी विश्वास हटा लेना चाहिये? जून १९८२ के अमर उजाला में लिखा है कि आगरा में चमड़े का व्यापार होता है; धोए हुए चमड़े का लाल-लाल पानी यमुना के जल को दूर तक लाल बनाता हुआ बह रहा है। दिल्ली में यमुना के प्रवाह से दुगुना नाला मिलकर दूर तक यमुना को अपना रूप दे रहा है। दिल्ली के निगम बोध घाट पर जहाँ स्नान करने वालों की भीड़ लगी रहती थी, वहाँ आज आचमन भी नहीं किया जा सकता।

ये नदियां हमारे पूर्वजों की श्रद्धाभक्ति का केन्द्र विन्दु थीं। इनकी इस दुर्दशा के समय क्या हमको भी इनसे अपना मन हटा लेना चाहिये। जहाँ स्नान आचमन के योग्य जल न हो, वहाँ की मिट्टी को ही अपने मस्तक पर चढ़ा कर अपनी भक्ति भावना को सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

पूर्व प्रसंग में अभी यह कहा गया था कि देवताओं को अपने स्वरूप का और अपने कार्यों का प्रकट किया जाना प्रिय नहीं। गौओं, ब्राह्मणों, मन्दिरों तथा तीर्थों में वे छिपकर रहते हैं। इनकी इस दुर्दशा में भी इनमें देवताओं का अव्यक्त रूप से रहना निश्चित है। व्यक्त पर विश्वास रखने वाले तो ईश्वर पर भी विश्वास नहीं करते। ईश्वर भी अव्यक्त है।

अपना लौकिक और पारलौकिक कल्याण चाहने वालों को तो इनकी इस दुर्दशा की स्थिति में इन पर और भी अधिक विश्वास बढ़ाए रखना चाहिये।

स्वच्छ जल से भरे हुए किसी अगाध सरोवर के तट पर किलोलें करने वाले सारस-भ्रमर-चक्रवाक आदि पक्षी उसके सूख जाने पर उसको छोड़कर कहीं इधर उधर अपना सहारा देख लेते हैं तो क्या मछलियाँ भी उसको छोड़कर कहीं चली जाती हैं। वे तो उस सरोवर के सूखने के साथ ही अपने प्राण दे देती हैं। विपत्ति में साथ छोड़ने वाले को प्रेमी नहीं कहा जा सकता। सज्जन उन धानों के समान होते हैं, जो मूसलों की चोट पर चोट खाकर भी अपनी उज्ज्वलता को उत्तरोत्तर प्रकट करते रहते हैं; दुष्ट मनुष्य उन तिलों के समान माने गए हैं; जो थोड़ी सी पीड़ा पाते ही स्नेह को त्याग कर खलता पर उतर आते हैं, तिल भी तेल छोड़ कर खल—पशुखाद्य वन जाते हैं। विपत्ति के समय तो सज्जनों की सज्जनता अधिक से अधिक प्रकट होती है। अष्टगन्ध धूप की सुगन्ध आग में डालने पर ही प्रकट होती है। सोना तपाए जाने पर ही निखरता है। परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करने वालों के लिये तो अविचल विश्वास के साथ सम्भल के जीर्णोद्धार का प्रयत्न करना चाहिये। सम्भल निवासी सभी हिन्दू, मुसलमान सम्भल की इस महिमा पर विश्वास करते हुए आपस के सहयोग से सम्भल की इस पवित्र भूमि को और भी अधिक पवित्र वनाए रखने की चेष्टा करें। यहाँ के हिन्दू, मुसलमानों के भाईचारे का व्यवहार और-और जगहों के हिन्दू-मुसलमानों के लिये नमूना वने। एक-दूसरे के धर्मकार्यों में सहायक होकर पारस्परिक मैत्री की भावना का आदर्श स्थापित करें। किसी के धर्म परिवर्तन कराने का तो स्वप्न देखना ही ग़लत हैं। हिन्दू धर्म शास्त्रों में इस बात को बहुत बुरा कहा है। अपने-अपने धर्म का पालन करने में ही सबका कल्याण है। मनुष्यता के नाते से तो हिन्दू-मुसलमान सब एक हैं ही। मनु की सन्तान होने से सभी के हाथ-पैर नाक-कान, मन-बुद्धि एक से ही हैं। रहन-सहन का फ़र्क़ ही अलगाव का कारण है। समझदार हिन्दू और मुसलमान इन बातों पर ध्यान न देकर यहाँ सम्भल में हमेशा से एक परिवार की तरह रहते चले आ रहे हैं। आशा है, आगे भी वैसे ही रहेंगे।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी द्वारा श्री कल्कि विष्णु भगवान् की प्रार्थना :

सिक्खों के दशम गुरु पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय श्रीगुरुगोविन्द सिंह जी ने अपने दशमग्रन्थ में सम्भल में होने वाले कल्कि विष्णु भगवान् की प्रार्थना में १६ सवैया छन्द लिखे हैं। इनकी विद्वत्ता और हिन्दू धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा के विषय में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। १२-१४ साल की छोटी अवस्था वाले इनके सुपुत्रों ने वलात् धर्मान्तिरण के आगे न झुककर दीवार में चुना जाना स्वीकार करके हिन्दू जाति का मस्तक ऊँचा उठाथा था। जब तक सूर्य-चन्द्रमा रहेंगे, तब तक इन वीर वालकों की कीर्तिगाथा गाई जाती रहेगी। दशम ग्रन्थ के नवीन संस्करण में ये १६ सवैया नहीं है। इसमें पिछले संस्करण में हैं, जो कि हमारे पास है।

सिक्खों के दशम गुरु गोविन्दसिह जी की श्रीमुख वाक्पातशाही दा सवैया छन्द कल्कि अवतार उन्हीं के 'दशम ग्रन्थ' से उद्धृत

पाप समूह विनाशन कूं कल्कि अवतार कहावेंगे,
तुर कच्छि तुरंग सपच्छ बड़ो कर नाल कृपाण कंपावेंगे॥

निकसे जिमि केहरि पर्वत सौ तस शोभि देवालय पावेंगे ।
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।।१।।

रूप अनूप सरूप महा लखि देव अदेव लजावेंगे,
अरि मार सुधार कटार घने बहुरो कलि धर्म चलावेंगे ।।
सब साधु उबार लहै कर दै दुख आंचि न लागन पावेंगे ।
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।।२।।

दानव मार अपार बड़े रणजीत निशान बजावेंगे,
खल तार हजार करोड़क ते कल्कि कलि कृत्त बढ़ावेंगे ।।
प्रगटै नित ही तित धर्म दिशा लखि पापन पुंज परावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।३।।

छीन महा निज दीन दशा लखि दीनदयाल रिसावेंगे,
असि काढ़ि अभंग निषंग हठी रण रंग तुरंग नचावेंगे ।।
रिपु जीत अजीत अभीत बड़े अवनी पै सबै जस गावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।४।।

शेष-सुरेश महेश-गणेश निशेश भले जस गावेंगे,
रण भूत परेत पिशाच परी गगनाङ्गण नाद सुनावेंगे ।।
नर-नारद-तुम्बुरु-किन्नर-यक्ष सुवीण प्रवीण बजावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।५।।

ताल मृदंग मचंग उमंग तुरंग से नाद सुनावेंगे,
डप ढोल तुरंग रबाब तुरी रण शंख असंख बजावेंगे ।।
गण दुन्दुभि ढोलन घोर घनी सुनि शत्रु सभी मुर्च्छावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।६।

तीर तुफंग कमान सुरंग दुरंग निषंग सुहावेंगे,
बरछी अरु बैरख बाण ध्वजा पट बात लगे फहरावेंगे ।।
गण-यक्ष-भुजंग सुकिन्नर-सिद्ध प्रसिद्ध सबै जस गावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।७।।

कवच कृपाण कटार कमान सुरंग निषंग छकावेंगे,
बरछी अरु ढाल गदा फरसा कर शूल त्रिशूल भ्रमावेंगे ।।
अति क्रोधित ह्वै रणमूर्धन माँ शर ओघ पै ओघ चलावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।८।।

तेज प्रचंड अखण्ड महाछवि देख उदंड परावेंगे,
जिमि पौन प्रचण्ड बहे पतुआ सब आपन ही उड़ जावेंगे ।।
बढ़िहै जित ही तित धर्म दिशा कहुं पाप न ढूंढत पावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।९।।

छूटत बाण कमानन ते रण चांटि भटा भहरावेंगे,
रणवीर विहाल कराल प्रभा रणमूर्धन मध्य सुहावेंगे ।।
गण सिद्ध प्रसिद्ध समृद्ध सबै कर जोड़ के कीर्ति सुनावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।१०।।

रूप अनूप सरूप महा अँग देखि अनंग लजावेंगे,
भव भूत भविष्य भवान सदा सब ठौर सबै ठहरावेंगे ।।
भय भार अपार निवारन कूँ कल्कि अवतार कहावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।११।।

भूमि को भार उतार बड़े बर आछि तड़ी छवि पावेंगे,
खल तार जुझार हियार हठी घन घोखन ज्यूं घहरावेंगे ।।
कल नारद भूत पिशाच परि जयपत्र धरित्र सुनावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरि जू हरिमन्दिर आवेंगे ।१२।।

झार कृपाण जुझार बड़े रणमध्य महाछवि पावेंगे,
धर लुत्थ पै लुत्थ विधार घनी घन की ज्यूं घटा घहरावेंगे ।
चतुरानन रुद्र चराचर जे जयकार के नाद सुनावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरिजू हरिमन्दिर आवेंगे ।।१३।।

लाल प्रमान उचान ध्वजा लखि देव अदेव त्रसावेंगे,
कलगी गज गाह गदा बरछी गहि पान कृपान भ्रमावेंगे ।
जग पाप समूह विनाशन कूं कल्कि कलि धर्म चलावेंगे,
भले भाग भए एहि सम्भल के हरिजू हरिमन्दिर आवेंगे ।।१४।।

पान कृपान अजान भुजा रण रूप महान दिखावेंगे
प्रतिमान सुजान प्रमान प्रभा लखि व्योमविमान लजावेंगे ।
गणभूत पिशाच परेत परी मिलि जीत के गीत गवावेंगे
भले भाग भए एहि सम्भल के हरिजू हरिमन्दिर आवेंगे ।।१५।।

बाजत डंक अशंक सबै रण रंग तुरंग नचावेंगे,
कसि बान कमान गदा फरसा कर शूल त्रिशूल भ्रमावेंगे ।
गणदेव अदेव पिशाच परी रण देखि सबै हरसावेंगे
भले भाग भए एहि सम्भल के हरिजू हरिमन्दिर आवेंगे ।।१६।।

महाशिवरात्रि, फा० कृ० १३, वि० २०४१
गणेश-मन्दिर, अनूपशहर (उ० प्र०) —सुखबोधाश्रम

सम्भल-माहात्म्य

प्रथमोऽध्यायः

श्रीः

स्वच्छं चन्द्रावदातं कलिमलशमनं पावनं मानवानामोङ्कारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणाा ब्रह्मणा गीयमानम् ।।
वेदाभ्यासप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेव्यमानं मुनीन्द्रैः पुण्यानां राशिरूपं जलमशुभहरं शाम्भलं वः पुनातु ।।

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं, ततो जयमुदीरयेत् ।।१।।

अगस्त्य उवाच—

पार्वतीहृदयानन्द ! शर्वस्याङ्गभव ! प्रभो ! किञ्चित् प्रष्टुमनाः स्वामिन् ! तद् भवान् वक्तुमर्हति ।।२।।

स्कन्द उवाच—

नन्दिग्रामस्य माहात्म्यं, श्रुतं सर्वं विशेषतः । शम्भलस्य च माहात्म्यं, श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।।३।।
साधु साधु महाबुद्धे ! कुम्भयोने ! द्विजोत्तम ! कुलोचितं ब्राह्मणानां, भवता प्रतिपादितम् ।।४।।
वेदाभ्यासः कृतः पूर्वं, गुरवश्चापि तोषिताः । धर्मशास्त्रपुराणेषु, श्रुता धर्मास्त्वयादृताः ।।५।।

(टीकाकार का मङ्गलाचरण)

सर्वारम्भफलाध्यक्षो य एकः परतः परः । गजाननात्मना व्यक्तः सोऽत्राप्यस्त्वन्तरायहृत् ।।१।।
श्रीवाणी शरणं यस्य ; यस्य सर्वस्वमेव या । प्रसीदतुतमां सा मे ; वाणीशरणशर्मणः ।।२।।

चन्द्रकिरणों के समान स्वच्छ-कलि के दोषों को दूर करने वाला, मनुष्यों की पवित्रता का साधन, वेदों के सार ओंकार से अलङ्कृत, त्रिलोकी के गुरु ब्रह्माजी द्वारा अथवा वेदों के द्वारा गाया गया, वेदों के अभ्यास में लगे रहने वाले व्रतनियमपरायण मुनीन्द्रों द्वारा सेवित, पापों का हरण करने वाला और पुण्यों की वृद्धि करने वाला सम्भल का जल आप सव को पवित्र करे ।

दक्ष प्रजापति की कन्या मूर्ति की कोख से धर्म प्रजापति के यहाँ प्रकट होने वाले नर-नारायण को, मोक्षपथानुयायी उत्तम नर को, ब्रह्मविद्या देवी सरस्वती को, वेदव्यास-गुरु-परम्परा को प्रणाम करके मोक्षपथ के बाधक शत्रुओं को जीतने वाले इस जयशास्त्र "सम्भलमाहात्म्य" का उच्चारण करना चाहिए ।१। अगस्त्य ने कहा— पार्वती के हृदय को आनन्दित करने वाले शिव के आत्मज ! हे स्वामिन् ! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ—आप समाधान करने योग्य हैं ।२। आपके मुखारविन्द से नन्दिग्राम का माहात्म्य तो मैंने विशेष रूप से सुना, अब सम्भल की महिमा सुनना चाहता हूँ ।३। स्कन्द ने कहा—हे अगस्त्य ! ब्राह्मण कुल के योग्य ही आपका प्रश्न है ।४। आपने गुरुजनों को प्रसन्न रखते हुए वेदों

क्षालितं मुक्तिकुशलैरशुभं नृशरीरिणाम् । कोविदोऽस्ति भवानेव, जीवितेऽजीविते नरे ।।६।।
कलेवरं पूतिगन्धि, सदैवाशुचिभाजनम् । सुतीर्थपुण्यतोयेन, सम्यक् प्रक्षालितं त्वया ।।७।।
अत एव हि पाण्डित्ये, मोदं गच्छन्ति साधवः । अह्नः षोडशभागोऽपि, न तेषां निष्फलो यतः ।।८।।
सत्वरं क्षीयते चायुर्लोकः शोकसमाकुलः । तस्माद्धर्मे मतिः कार्या धर्मो रक्षति रक्षितः ।।९।।
सत्कर्मणां विपाकोऽयं, यत्कथासु सदा रतिः । श्रृणु द्विज ! महाप्राज्ञ ! त्वय्यकथ्यं न किञ्चन ।।१०।।
नियन्ता सर्वभूतानां, य एकः कारणं परम् । यो नामगोत्ररहितो, रूपादिपरिवर्जितः ।।
आविर्भावतिरोभावैः यद्भ्रूनर्तनवर्तनैः । भवन्ति जगतां सर्वे, व्यवहारा द्विजोत्तम ।।१२।।
तमेव नत्वा सततं, सर्वात्मानं वदाम्यहम् । योऽसावादित्यपुरुषः, सोऽसावहमिति स्फुटम् ।।१३।।
अन्धं तमः प्रविशन्ति, ये सम्भूतिमुपासते । निश्चितार्था श्रुतिरियं, ब्राह्मणस्य द्विजोत्तम ।।१४।।
उपलभ्य च गायत्रीं, नोपतिष्ठेत यो द्विजः । काले त्रिकाले सप्ताहात् स पतेन्नात्र संशयः ।।१५।।
तावद्विप्रो जपे तिष्ठेत्, यावदर्धोदयो रवेः । आसनस्थो भवेन्मौनी, प्रत्यगातारकोदयात् ।।१६।।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यां, जपेदादित्यसम्मुखः । काललोपो न कर्त्तव्यः, तस्मात् कालः प्रतीक्ष्यते ।।१७।।
काले फलन्त्योषधयः, काले पुष्प्यन्ति पादपाः । वर्षन्ति तोयदाः काले, तस्मात् कालं न लङ्घयेत् ।।१८।।
गायत्रीमंत्रतोयाढ्यं, दत्तं येनाञ्जलित्रयम् । काले सवित्रे किं न स्यात्, तेन दत्तं जगत्त्रयम् ।।१९।।
किं किं न सविता सूते काले सम्यगुपासितः । आयुरारोग्यमैश्वर्यं वस्तूनि सुबहून्यपि ।।२०।।

का अभ्यास किया है, धर्मशास्त्रों का भी सादर श्रवण किया है ।५। आपने मुक्तिमार्ग का उपदेश देकर मनुष्यों के पापों को धोया है, आप उनके जीवन-मरण की पहेलियों को सुलझाने वाले हैं ।६। दुर्गन्ध से भरे हुए इस शरीर को आपने पुण्यतीर्थों के जल से पवित्र किया है ।७। सज्जनों को उन्ही पण्डितों से प्रसन्नता प्राप्त होती है, जिनके दिन का सोलहवाँ हिस्सा भी व्यर्थ नहीं जाता ।८। सभी लोग शोक से व्याकुल हैं, उनकी आयु का भी प्रतिदिन क्षय हो रहा है; इसलिए धर्माचरण में ही बुद्धि का सदुपयोग करना चाहिये, धर्म-रक्षा पर ही अपनी रक्षा निर्भर है ।९। हे महाबुद्धे ! शुभ कर्मों का ही यह परिणाम है कि जो धार्मिक कथाओं के श्रवण में अनुराग बना रहता है ।१०। एक अद्वितीय परमात्मा ही जगत् का कारण है । चराचर की मर्यादाओं को बाँधने वाला वह नामरूप से रहित है ।११। जगत् के सृष्टि-प्रलय आदि सब व्यवहार उसके ही भ्रू विलास मात्र हैं ।१२। आदित्य-मण्डल में स्थित वह पुरुष चराचर की आत्मा है, उसको प्रणाम करके मैं तुम्हारा समाधान करता हूँ ।१३। लौकिक व्यवहार में ही फँसे हुए लोगों को घोर अन्धकार में पड़ा हुआ समझना चाहिए । यह ईशावास्योपनिषत् श्रुति का निश्चय है ।१४। जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य गुरुमुख से गायत्री सुनकर समयानुसार उसका आराधन नहीं करता, वह सातवें दिन ब्राह्मणत्व-क्षत्रियत्व और वैश्यत्व से गिर जाता है ।१ । सायंकाल ताराओं के उदय तक, प्रातः ताराओं के रहते-रहते सूर्योदय तक मौन होकर आसन पर बैठा हुआ गायत्री जप करे ।१६। सूर्यास्त से पूर्व ताराओं के उदय तक सायं सन्ध्या करनी चाहिये, काल का उल्लंघन ठीक नहीं ।१७। वृक्षों तथा वेलों पर समयानुसार ही फूल-फल आते हैं, वर्षा भी समयानुसार ही होतो है, इसलिए संध्या भी समयानुसार ही होनी चाहिए ।१८। जिसने गायत्री से अभिमंत्रित जल की तीन अञ्जलि समयानुसार सूर्य को दे दीं, उसने त्रिलोकी का ही दान कर दिया ।१९। समयानुसार सूर्य की आराधना से आयु-आरोग्य-ऐश्वर्य आदि अनेक

दुर्लभा सर्वमंत्रेषु, गायत्री प्रणवान्विता । लोकत्रयेऽपि गायत्र्या, उपमानं न विद्यते ॥२१॥
न गायत्र्याः परो मंत्रो, न शम्भलसमं पुरम् । न कृष्णेन समो देवो, नासत्यात् पातकं परम् ॥२२॥
गायत्री वेदजननी, गायत्री ब्राह्मणप्रसूः । गातारं त्रायते यस्माद्, गायत्री तेन गीयते ॥२३॥
न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि । देव्यास्त्रिकालमभ्यासात्, सिद्धो भवति नान्यथा ॥२४॥
गायत्र्येव परो विष्णुर्गात्र्येव परः शिवः । गायत्र्येव परो ब्रह्मा, ह्यादिदेवीति सा स्मृता ॥२५॥
तां नमस्कृत्य मनसा, तदैतिह्यं पुरातनम् । वक्ष्येऽहं परमं गुह्यं, शाम्भलं पापनाशनम् ॥२६॥
तत्रादौ दक्षिणद्वारि लिङ्गं वै शाम्भलेश्वरम् । सिद्धैः सुसेवितं सद्यः सर्वसिद्धिकरं परम् ॥२७॥
दर्शनात् स्पर्शनात् भक्त्या नरो निर्वृतिमाप्नुयात् । सदैवोद्घाटितं स्वर्गद्वारं तत्रोपलभ्यते ॥२८॥
आयान्ति दैवतान्यत्र, विज्ञाप्य त्रिदिवेश्वरम् । पञ्चमुद्रे महापीठे, सिद्धिदे सर्वजन्तुषु ॥२९॥
तत्र सा विकटा देवी, प्रकटा सिद्धिरूपिणी । यत्राश्रितानां भक्तानां, सर्वां सिद्धिं प्रयच्छति ॥३०॥
शम्भलेश्वरतः पूर्वे, लिङ्गं चान्द्रेश्वरं शिवम् । धर्मदं कामदं सम्यगर्थदं मोक्षदं सदा ॥३१॥
चन्द्रमौलिभरद्वाजौ, शिवभक्तावुभाविह । चन्द्रेश्वरं समभ्यर्च्य गायमानौ लयं गतौ ॥३२॥
पञ्चेश्वरोऽत्र गन्धर्वः परां सिद्धिमगात् पुरा । विद्याधरः सिद्धविद्यो वसुपूर्णश्च यक्षराट् ॥३३॥
नृत्यन्त्यो निजभावेन पुरात्राप्सरसो द्विज । सदेहाः कोकिलालापा लिङ्गमध्ये लयं गताः ॥३४॥
ऋषिर्वेदशिरा नाम, जपन् वै शतरुद्रियम् । मंत्रज्योतिर्मये लिङ्गे, सशरीरोऽविशत् पुरा ॥३५॥
किन्नरी हंसपद्यत्र, भर्त्रा वेणुप्रियेण वै । गायन्ती सुस्वरा प्राप्ता, परां निर्वाणभूमिकाम् ॥३६॥

मनोरथ पूर्ण होते हैं ।२०। प्रणवसहित गायत्री से बढ़कर तीनों लोकों में भी कुछ नहीं है ।२१। गायत्री से बढ़कर कोई मंत्र नहीं, सम्भल से बढ़कर कोई रहने योग्य स्थान नहीं, कृष्ण के समान कोई देवता नहीं, असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं ।२२। वेदों और ब्राह्मणों की माता गायत्री है, अपना गायन करने वालों की यह रक्षा करती है, इसलिये इसे गायत्री कहते हैं ।२३। वेदों और शास्त्रों के पढ़ने से वह सिद्धि प्राप्त नहीं होती जो गायत्री की आराधना से ब्राह्मणों को प्राप्त होती है ।२४। यह आदि देवी गायत्री ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव का स्वरूप है ।२५। ऐसी गायत्री देवी को मन से नमस्कार करके पापनाशक परमगोपनीय सम्भल के प्राचीन इतिहास का वर्णन करूंगा ।२६। सम्भल के दक्षिण द्वार पर तत्काल सर्वसिद्धियों को देने वाला सिद्धसेवित शाम्भलेश्वर शिवलिङ्ग है ।२७। भक्ति भावना से इसका दर्शन और स्पर्श करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है। स्वर्ग का द्वार यहाँ सदा खुला हुआ मिलता है ।२८। पञ्चमुख महादेव का यह पञ्चमुद्र नामक महापीठ है, यहाँ देवराज इन्द्र से आज्ञा लेकर देवगण उपस्थित होते हैं ।२९। यहाँ आने वालों को सिद्धि देने वाली विकटा देवी भी प्रकट हैं ।३०। शम्भलेश्वर से पूर्व दिशा में धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के देने वाला चान्द्रेश्वर शिवलिङ्ग है ।३१। यहाँ चन्द्रमौलि और भारद्वाज ये दोनों शिवभक्त शिव का पूजन और गुणगान करते हुए चन्द्रेश्वर शिव के स्वरूप में ही लीन हो गए ।३२। यहाँ पञ्चेश्वर गन्धर्व को सिद्धि की प्राप्ति हुई, विद्याधर को विद्या और कुबेर को धनाध्यक्षता मिली ।३३। अनेक अप्सराएँ भी यहाँ शिवभक्ति में विभोर होकर पञ्चम स्वर में भगवान् शङ्कर के गुण गाती और नाचती हुई शिवतत्त्व में ही समा गई ।३४। वेदशिरा नामक ऋषि भी यहाँ रुद्रसूक्त का जप करते हुए इस ज्योतिर्मय लिङ्ग में विलीन हो गये ।३५। अपने वेणुप्रिय नामक

असंख्याताः सहस्राणि सिद्धाः सिद्धपदं गताः। सिद्धलिङ्गमिति ख्यातं, तस्मात् चान्द्रेश्वरं परम् ॥३७॥
प्रतीच्यां दिशि यल्लिङ्गं, भुवनेश्वरनामकम्। तत्र हत्वा रिपुगणं प्राप्तं राज्यं विदेहजैः॥३८॥
वसुदेवो वणिक् चात्र समर्च्य भुवनेश्वरम्। सम्पत्तिमुत्तमां लेभे सुतां चाद्भुतदर्शनाम् ॥३९॥
त्रिकोणं दिव्यमेतद्धि, महादेवेन निर्मितम्। यस्य स्मरणमात्रेण, सर्वपापप्रणाशनम् ॥४०॥
श्रुत्वा चैनां कथां दिव्यां महादेवाश्रयां पराम्। न दरिद्रो भवेत् क्वापि नाधर्मेषु प्रवर्तते ॥४१॥
ब्राह्मणैः सततं सेव्यमिदमाख्यानमुत्तमम्। वेदपाठेन यत् पुण्यं तत्पुण्यफलदायकम् ॥४२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शृण्वन्तोऽध्यायमुत्तमम्। पातकानि विसृज्येह गतिं, यास्यन्त्यनुत्तमाम्।४३॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥

पति के साथ हंसपदी नामक किन्नरी सुन्दर स्वर से शिव के गुण गाती हुई यहाँ निर्वाण पदवी को प्राप्त हुई।३६। इस प्रकार अगणित सहस्रों सिद्ध यहाँ सिद्ध-पदवी को प्राप्त हुए, इसीलिये इस चन्द्रेश्वर शिवलिङ्ग को सिद्धलिङ्ग भी कहते हैं।३७। यहाँ से पश्चिम दिशा में भुवनेश्वर लिङ्ग है। जनकवंश के राजाओं ने भुवनेश्वर की आराधना से ही शत्रुओं को मारकर अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया था।३८। वसुदेव नाम के वैश्य ने श्रद्धासहित भुवनेश्वर की आराधना से यहाँ उत्तम सम्पत्ति और आश्चर्यजनक सौन्दर्य और दिव्यगुणों वाली पुत्री को प्राप्त किया था।३९। महादेव ने तीन कोनों वाले इस सम्भल का निर्माण किया है, इसके स्मरण करने मात्र से पापों का नाश होता है।४०। शङ्कर भगवान् से सम्बन्ध रखने वाली इस कथा को सुनकर दरिद्रता दूर होती है और अधर्म में भी प्रवृत्ति नहीं होती।४१। वेदपाठ के तुल्य फलदायक इस कथा को ब्राह्मण अवश्य पढ़ें।४२। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तथा स्त्री शूद्रादि भी इस अध्याय को सुनकर उत्तम गति को प्राप्त हुआ करेंगे।४३।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ।)

●

अथ द्वितीयोऽध्यायः

स्कन्द उवाच—

शम्भलेश्वररूपं, तेऽगस्त्यैतद्वर्णितं मया। किमन्यच्छ्रोतुकामोऽसि, तन्निःसंकोचमुच्यताम् ॥१॥
अगस्त्य उवाच—

पुनन्ति सर्वतीर्थानि स्नानदानैर्न संशयः। शम्भलालोकनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२॥
नैर्ऋत्यादिक्रमाल्लोका, व्याख्याताः पुरुषोत्तम। पुनर्मे वर्णयाद्य त्वं तीर्थान् शम्भलसंस्थितान् ॥३॥

स्कन्द उवाच—

आकर्णय महाभाग ! पुरं वै शाम्भलेश्वरम्। गङ्गा-रथप्रामध्यस्थं, तत्क्षेत्रं योजनत्रयम् ॥४॥
दिशस्तटेऽत्र नैर्ऋत्ये पुण्ये पुण्यजनोचिते। परदार - परद्रव्य - परनिन्दा - पराङ्मुखाः ॥५॥
जाता जातौ निकृष्टायामपि पुण्यानुसारिणः। तीर्थस्नानपरा नित्यं नित्यं स्थाणुपरायणाः ॥६॥
द्विजेषु नित्यं प्रणताः स्वनामाख्यानपूर्वकम्। दमदानपराः शान्ताः, शुचयो निर्जितेन्द्रियाः ॥७॥
अवश्येषु सदा युक्ता ये जनाः शम्भले पुरे। सर्वकामसमृद्धास्ते, यान्ति ब्रह्मसनातनम् ॥८॥
म्लेच्छा अपि मृता ये च ये मृता आत्महत्यया। तेऽपि निर्वाणपदवीमाश्रयन्ति न संशयः ॥९॥
यथेष्टमृत्यवे केचिदिह तत्त्वावबोधकाः। वसन्ति सर्वतीर्थानां राज्ञि मोक्षाभिलाषुकाः ॥१०॥
प्राधान्येन वसन्त्यत्र, ब्राह्मणा ब्रह्मचिन्तकाः। यायजूका जञ्जपूकाः, सर्वलोकहितैषिणः ॥११॥
हिमालयोपत्यकायां, रथप्रादक्षिणे तटे। निषादाधिपतिश्चासीद्, धूम्राक्ष इति विश्रुतः ॥१२॥

स्कन्द बोले—हे अगस्त्य ! सम्भल के तीनों कोनों पर शिवलिङ्गों का वर्णन मैंने किया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? निःसंकोच कहो।१। **अगस्त्य ने कहा**—अन्य तीर्थों में स्नान-दान आदि से पवित्रता प्राप्त होती है, सम्भल के दर्शन से ही पाप कट जाते हैं।२। दक्षिण और पश्चिम के कोने से लेकर उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व के कोने तक त्रिकोण बसे हुए सम्भल का वर्णन सुना, अब आप सम्भल के तीर्थों का वर्णन करें।३। **स्कन्द ने कहा**—हे महाभाग ! सुनिये, गङ्गा और रामगङ्गा के मध्य में बसे हुए इस सम्भल का मध्य क्षेत्र बारह कोस का है।४। त्रिकोण बसे हुए इस सम्भल में निकृष्ट जातियों में भी उत्पन्न जो मनुष्य परस्त्री, परद्रव्य और परनिन्दा से बचे रहकर मन और इद्रियों पर संयम रखते हैं, अपना नाम लेकर जो बड़ों को प्रणाम करते हैं, इस लोक में उनकी सब इच्छाएं पूर्ण होती हैं और अन्त में सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।५, ६, ७, ८। म्लेच्छ और आत्महत्यारे भी यहाँ मर कर मोक्ष की पगडण्डी पकड़ लेते हैं।९। मोक्ष की इच्छा वाले तत्त्ववेत्ता भी यहाँ मृत्युकाल की प्रतीक्षा करते हुए निवास करते हैं।१०। ब्रह्म का चिन्तन करने वाले, यज्ञ करने वाले, गायत्री के जप में तत्पर विश्व का हित चाहने वाले ब्राह्मणों की ही सम्भल प्रधान वस्ती है।।११। हिमालय की तलहटी में रामगंगा के दक्षिण तट पर सम्भल के समीप भीलों का राजा धूम्राक्ष रहता था॥१२॥ हिंसक होने पर भी यह शूरवीर चोरों, डाकुओं और व्याघ्र आदि

घातयेत् दूरसंस्थोऽपि स दृष्ट्वा परिपन्थिनः। व्याघ्रादीन् दुष्टसत्त्वांश्च हिनस्ति स्म प्रयत्नतः ॥१३॥
जीवन् मृगयुधर्मेण तथापि करुणाकरः। न विश्वस्तान् पक्षिगणान् न सुप्तान्न निवासिनः ॥१४॥
न तोयगृध्नून् न शिशून् नान्तर्वत्नीत्वलक्षणान्। स घातयति धर्मज्ञो, जातिधर्मपराङ्मुखः ॥१५॥
श्रमातुरेभ्यः पान्थेभ्यो विश्रमं स प्रयच्छति। ददाति स्म क्षुधार्तेभ्यः सततं भोजनादिकम् ॥१६॥
मृगत्वचोऽपि मृदुला, विवस्त्रेभ्यः प्रयच्छति। अनुव्रजति कान्तारे पथिकान् पथि रक्षति ॥१७॥
नित्यं कार्पटिकान् सर्वान् सह पुत्रेण रक्षति। प्रयुञ्जते स्म तेऽप्यस्मै प्रतितीर्थं शुभाशिषः ॥१८॥
कदाचित्तत्पितृव्येण समीपग्रामवासिना। वैश्यानां सुमहान् सार्थो रुद्धस्तत्र वने निशि ॥१९॥
घातयध्वं सुदूरस्थान्, गृह्णीध्वं तान् द्रुतं भटाः। स नाथोऽस्ति सुदूरे वै, पान्थानां रक्षकः परः ॥२०॥
वयं धूम्राक्षविश्वासादस्मिन् मार्गेऽकुतोभयाः। आयाता हन्त ? किं कुर्मः स तु दूरमितो वनात् ॥२१॥
तस्मिन्नरण्ये तन्मार्गे निषादाधिपतिर्निशि। सार्थपुण्यावशेषेण धूम्राक्षो मृगयां गतः ॥२२॥
इति श्रुत्वा स धूम्राक्षो भद्राकार्पटिकेरितम्। दूरान् मा भैष्ट मा भैष्टेत्येवं गर्जन् समागतः ॥२३॥
विश्वं कुशलि तेनैव विश्वनाथेन रक्षितम्। न चिन्तयेदरिष्टानि कस्यचित् कर्हिचित् क्वचित् ॥२४॥
विधिदृष्टं यतो भावि कलुषं भावि केवलम्। तस्मादात्मसुखप्रेप्सुः परानिष्टं न चिन्तयेत् ॥२५॥
कोऽयं कोऽयं दुराचारो धूम्राक्षे मयि जीवति। उल्लुलुण्ठयिषुः पान्थान् बहिःप्राणसमान् मम ॥२६॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नारकस्तत्पितृव्यकः। धनलोभेन दुष्टात्मा धूम्राक्षं हन्तुमुद्यतः ॥२७॥
कुलधर्मं विहायैवं वर्तते कुलपांसनः। चिरं चिन्तितमद्यैनं घातयिष्याम्यसंशयम् ॥२८॥

दुष्ट जानवरों को दूर से ही देखकर मार दिया करता था, अपने जाति-धर्म के विपरीत धर्म का यथार्थ रूप समझ लेने के कारण यह विश्वासपूर्वक रहने वाले, सोते हुए, जल पीते हुए, बच्चे, गर्भवती लक्षणों वाले जानवरों को नहीं मारता था ।१३, १४, १५। थके हुए पथिकों को विश्राम और भूखों को भोजन भी देता था। नङ्गों को कोमल मृगछालाएँ देता था, रक्षा के लिए कुछ दूर तक पथिकों के साथ भी चलता था ।१७। अपने पुत्र को साथ लेकर वह यात्रियों की रक्षा करता था और वे भी प्रत्येक तीर्थ पर उसको आशीर्वाद दिया करते थे ।१८। किसी समय समीप के गाँवों में रहने वाले उसके चाचा ने व्यापारी यात्रियों को घेरकर उन्हें लूटने के लिए अपने सेवकों को आज्ञा दे दी ।१९। धूम्राक्ष को वहाँ न देखकर ही उसके चाचा ने लूटमार की आज्ञा दी थी ।२०। यात्री चिल्ला रहे थे, हाय ! हम तो धूम्राक्ष के विश्वास पर ही यहाँ आये थे, अब क्या करें ? धूम्राक्ष तो कहीं दूर है ।२१। उसी समय उसी वन में उसी मार्ग से भीलों का राजा धूम्राक्ष उन यात्रियों के पुण्यों से शिकार के लिए निकला था, कपड़ों के व्यापारियों का करुण क्रन्दन सुनकर दूर से ही उन यात्रियों को आश्वासन देता हुआ 'मत डरो !' कहता हुआ वहाँ आ पहुँचा ।२२, २३। विश्वनाथ ही विश्व के रक्षक हैं, होता तो सब कुछ ईश्वर की इच्छा से ही हैं ।२४। दूसरों का अनिष्ट चिन्तन करने वाला केवल पाप ही कमाता है, इसलिए कभी भी कहीं भी किसी का अनिष्ट न सोचे, दूसरों का इष्टचिन्तन ही अपनी इष्टसिद्धि का उपाय है ।२५। धूम्राक्ष कहने लगा कि मेरे जीवित रहते हुए मेरे प्राणों से भी प्रिय पथिकों को कौन दुष्ट लूटना चाहता है ? धूम्राक्ष के इन वाक्यों को सुनकर धन के लोभी नरकगामी उसके चाचा ने धूम्राक्ष को मार डालने का यत्न किया ।२७। उसने सोचा कि यह अपने कुलधर्म के विपरीत चल रहा है, बहुत समय से इसे मार डालने की बात सोच तो रहा था, किन्तु आज अवश्य मैं इसे मार

विचार्यैवं स दुष्टात्मा भृत्यानाज्ञापयत् क्रुधा। आदावेनं घातयध्वं पश्चात् कार्पटिकानिमान् ।।२९।।
ततो युद्धमभूद् घोरं धूम्राक्षेण समं निशि । नारकस्य तु ये भृत्यास्तैश्छिन्नं तद्धनुर्महत् ।।३०।।
शम्भलेश्वरसामीप्ये छिन्ने धनुषि सन्मतिः। पान्थान् रक्षन् युधि प्राणांस्त्यक्त्वा शिवपुरं ययौ ।३१।।
तेऽपि कार्पटिकाः प्राप्तास्तल्लिङ्गस्य समीपतः। या मतिस्त्वन्तकाले स्याद् गतिस्तदनुरूपतः ।।३२।।
देवतानां यथा शम्भुर्भूतानां च यथा धरा। तद्वत् समस्ततीर्थानामाद्यं शम्भलमिष्यते ।।३३।।
एतस्योत्तरतः स्थानं महादेवेन निर्मितम्। इदं पुरमलङ्कुर्वंस्तदारभ्य स्थितो हरः ।।३४।।
एवमेतदुपाख्यानं धूम्राक्षस्य महात्मनः। यच्छ्रुत्वा कोऽपि नाद्यापि पुनः पापैः प्रपीड्यते ।।३५।।
महादेवप्रसादेन शम्भलस्याभवत् स्थितिः। तस्य दर्शनमात्रेण पूतात्मा जायते नरः ।।३६।।
पापकञ्चुकमुत्सृज्य नरो याति परं पदम्। शृण्वन् शम्भलमाहात्म्यं स्वर्गमोक्षप्रसाधनम् ।।३७।।

।। इति श्री स्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ।।

डालूँगा ।२८। यह सोच कर उस दुष्ट ने अपने भटों को आज्ञा दे दी कि प्रथम इस धूम्राक्ष को मारो, बाद में इन व्यापारियों को मारो ।२९। रात्रि के इस घोर युद्ध में नरकगामी चाचा के योद्धाओं ने धूम्राक्ष का धनुष काट दिया ।३०। धनुष कट जाने पर उस धर्मबुद्धि धूम्राक्ष ने पथिकों की रक्षा में शम्भलेश्वर के समीप ही अपने प्राण देकर शिवलोक को प्राप्त किया ।३१। वे यात्री भी शम्भलेश्वर के समीप ही अपने प्राण देकर शिवलोक को चले गए, क्योंकि अन्तिम क्षण की मति के अनुसार ही गति होती है ।३२। देवताओं में शिव के समान, प्राणियों में पृथिवी के समान तीर्थों में आदि तीर्थ सम्भल है ।३३। शम्भलेश्वर के उत्तर भाग में सम्भल को बसाकर भगवान् शङ्कर भी इसमें विराजमान रहते हैं ।३४। महात्मा धूम्राक्ष के इस उपाख्यान को सुनकर कोई भी आज भी पापों से पीड़ित नहीं होता ।३५। महादेव की कृपा से ही सम्भल की रचना हुई है इसलिए सम्भल के दर्शनमात्र से ही मनुष्य पवित्र हो जाता है ।३६। स्वर्ग और मोक्ष के देने वाले सम्भल के माहात्म्य को सुनकर मनुष्य पाप के आवरणों से मुक्त हुआ परम पद पाता है ।३७।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का द्वितीय अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ तृतीयोऽध्यायः

स्कन्द उवाच—

शृणु विप्र ! महाभाग ! परिशुद्धेन्द्रियाशय ! सुतीर्थक्षालिताशेषजन्मजातमहामल ! ॥१॥
सुहृदि प्रेमसम्पन्ने त्वय्यकथ्यं न किञ्चन। साधुभिः सह संवादो महच्छ्रेयोऽभिवृद्धये ॥२॥
पुष्पावत्यामभूत् पुर्यां सोमयाजिकुलोद्भवः। दीक्षितो देवशर्माख्यो यज्ञविद्याविशारदः ॥३॥
वेदवेदाङ्गविद्यासु कुशलः शिष्टसम्मतः। राजमान्यो बहुधनो वदान्यः कीर्तिभाजनम् ॥४॥
अग्निशुश्रूषणरतो वेदाध्ययनतत्परः। तस्य पुत्रो गुणनिधिश्चन्द्रबिम्बसमाननः ॥५॥
कृतोपनयनः सोऽपि विद्यां जग्राह भूरिशः। अथ पित्रानभिज्ञातो द्यूतकर्मरतोऽभवत् ॥६॥
आदायादाय बहुशो धनं मातुः सकाशतः। ददाति द्यूतकारेभ्यो मैत्रीं तैश्च चकार सः ॥७॥
सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः स्नानसंध्यापराङ्मुखः। निन्दको वेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः ॥८॥
स्मृत्याचारप्रतीपस्तु गीतवाद्यविनोदकः। नटपाखण्डिभिर्भण्डैः बद्धप्रेमा परस्परम् ॥९॥
प्रेषितोऽपि जनन्या स न याति पितुरन्तिकम्। गृहकार्यान्तरव्यग्रो दीक्षितो निजगेहिनीम् ॥१०॥
यदा यदैव पप्रच्छ क्वासौ गुणनिधिः सुतः। न दृश्यते मया गेहे क्व याति विदधाति किम् ॥११॥
तदा तदैव सा ब्रूतेऽधुनैवासौ बहिर्गतः। स्नात्वाभ्यर्च्य महादेवमेतावन्तमनेहसम् ॥१२॥
अधीत्याध्यापनार्थं हि द्वित्रैर्मित्रैः समं गतः। एकपुत्रेति तन्माता प्रतारयति दीक्षितम् ॥१३॥
न च तत्कर्म दुर्वृत्तं किञ्चिद् वेत्ति स्म दीक्षितः। तस्य केशान्तकर्माथ कृत्वा वर्षे तु षोडशे ॥१४।

स्कन्द बोले—हे महाभाग ! अच्छे-अच्छे तीर्थों का सेवन करने से आपकी इन्द्रियाँ और मन निर्मल हैं, आप जैसों का मिलना परम कल्याण का कारण है, आपसे कोई बात छिपाने योग्य नहीं है ।१-२। पुष्पावती नगरी में एक देवशर्मा नाम का ब्राह्मण था । सोमयाग की दीक्षा लेने वाले ब्राह्मणों के कुल में उसने जन्म लिया था ।३। वेद-वेदाङ्गों की विद्याओं में निपुण होने पर भी वह यज्ञविद्या का विशेषज्ञ था, उसका स्वाध्याय और अग्निहोत्र नित्य होता था, विद्वानों में उसकी प्रतिष्ठा थी, राजा उसका सम्मान करते थे, वह धनाढ्य, यशस्वी और उदार था, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाला उसका पुत्र गुणनिधि नाम से प्रसिद्ध था ।४-५। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद उसने भी अनेक विद्यायें प्राप्त कीं, किन्तु वह जुआ खेलने लगा, उसके पिता को इस वात का ज्ञान न था ।६। माता से धन लेकर वह जुआरियों को देता था और उन्हीं के साथ रहता था ।७। ब्राह्मणोचित सन्ध्या आदि सदाचार का त्याग करके वह वेदशास्त्रों की निन्दा करने वाला पाखण्डियों में रहकर पापाचरण में प्रवृत्त हो गया, नाचने-गाने के व्यसन में भी पड़ गया ।८-९। माता के कहने पर भी वह पिता के पास नहीं जाता था । पिता के पूछने पर वह कह देती कि स्नान-पूजा करके वह अभी-अभी बाहर गया है ।१०, ११, १२। स्वाध्याय करके दो तीन मित्रों के साथ अध्यापन के लिए गया है । इकलौता वेटा होने कारण उसकी माता अपने पति को इस प्रकार वहकाती रहती थी ।१३। पिता को अपने पुत्र के दुराचारों का ज्ञान न था ।

गृह्योक्तेन विधानेन पाणिग्रहमकारयत् । प्रत्यहं तस्य जननी सुतं गुणनिधिं मृदु ॥१५॥
शास्ति स्नेहार्द्रहृदया क्रोधेनापि समन्विता । यदि ज्ञास्यति ते वृत्तं पिता नौ ताडयिष्यति ॥१६॥
आच्छादयामि ते नित्यं पितुरग्रे विचेष्टितम् । लोकमान्योऽस्ति ते तातः सदाचारैर्मखोत्तमैः ॥१७॥
ब्राह्मणानां धनं पुत्र ! सद्विद्या साधुसङ्गमः । त्यज दुर्जनसंसर्गं साधुसङ्गपरो भव ॥१८॥
सच्छोत्रिया ह्यनूचाना दीक्षिताः सोमयाजिनः । पूर्वजास्तव सर्वेऽपि त्वमप्याश्रय तत्पथम् ॥१९॥
तवानुरूपा रूपेण वयसा कुलशीलतः । ऊनविंशतिकोऽसि त्वमेषा षोडशवार्षिकी ॥२०॥
तव पत्नी गुणनिधे ! साध्वी मधुरभाषिणी । एनां संवृणु सद्वृत्तां पितृभक्तियुतो भव ॥२१॥
श्वशुरश्चैव श्वश्रूश्च मान्यौ ते गुणशीलतः । वृथा दुःखायसे किं त्वं त्यज दुर्वृत्ततामिमाम् ॥२२॥
राजापि श्रोष्यति यदा तव दुश्चेष्टितं शिशो ! श्रद्धां विहाय ते ताते वृत्तिलोपं करिष्यति ॥२३॥
बालचेष्टितमेवैतद्वदन्त्यद्यापि ये जनाः । अनन्तरं हसिष्यन्ति वदिष्यन्ति च नोचितम् ॥२४॥
मातुश्चरित्रं तनयो धत्तेऽपि च पितुस्तथा । पितापि ते न पापीयान् श्रुतिस्मृतिपथानुगः ॥२५॥
तत्पदे लीनचित्ताया मम साक्षी जगत्पतिः । तव तातभयेनापि मुखं दुष्टस्य नेक्षितम् ॥२६॥
अहो ! बलीयांस्तु विधिर्येन जातस्त्वमीदृशः । प्रतिक्षणं जनन्यैवं शिक्ष्यमाणोऽपि दुर्मतिः ॥२७॥
तत्याज नैव दुर्मार्गं दुर्बोधो व्यसनी यतः । मृगयामद्यपैशुन्यवेश्याचौर्यदुरोदरैः ॥२८॥
परदारपरद्रव्यहरणैर्हृतमानसः । यद्यत् गृहगतं पश्येत्तत्तन्नीत्वा सुदुर्मतिः ॥२९॥
आर्पिपत् द्यूतकारेभ्यः स कुप्यवसनादिकम् । नवरत्नमयी मातुः करतः पितुरूर्मिका ॥३०॥
स्वपन्त्यास्त्वेकदादाय दुरोदरकरेऽर्पिता । दीक्षितेनाथ सा दृष्टा दैवात् द्यूतकृतः करे ॥३१॥

सोलहवें वर्ष में समावर्तन संस्कार के बाद उसके पिता ने उसका विवाह भी कर दिया । स्नेह से और कभी क्रोध से भी उसकी माता उसे समझाया करती थी कि तेरे पिता अपने सदाचारों से और यज्ञविद्या में निपुण होने से प्रसिद्ध हैं, मैं उनके आगे तेरे दुष्कर्म छिपाती रहती हूँ, ज्ञात होने पर वह मुझे और तुझे दोनों को मारेंगे ।१४, १५, १६, १७ । हे पुत्र ! सद्विद्या और सदाचार ही ब्राह्मणों का धन है, तू भी दुष्टों का साथ छोड़कर सज्जनों का आचरण ग्रहण कर ।१८। तेरे पूर्वजों ने सोमयाग की दीक्षा ली थी, इसलिए इस वंश की दीक्षित संज्ञा है, तू भी वंशजों का सदाचार पकड़ और दुष्कर्म छोड़ ।१९। हे गुणनिधे ! तेरी यह पतिव्रता पत्नी तेरे ही कुल और अवस्था के अनुकूल है, कुछ कम २० वर्ष का तू है और १६ वर्ष की यह है, तू इसका भी सम्मान कर और अपने पिता की आज्ञा में रह ।२०-२१। तेरे सास-ससुर का अच्छा स्वभाव है, उनकी प्रसन्नता के लिए भी बुरे कर्मों का परित्याग कर और स्वयं को भी दुःखों के गर्त में मत ढकेल ।२२। राजा भी तेरे दुर्गुण सुनकर तेरी और तेरे पिता की जीविका छीन लेगा ।२३। अभी बालक समझकर जो तेरे दुराचारों की उपेक्षा कर रहे हैं, वे ही बाद में हँसेंगे और उचित अनुचित कहेंगे ।२४। माता-पिता के चरित्रों का ही पुत्र अनुसरण करते हैं । तेरे पिता पापी नहीं हैं, धर्मात्मा हैं । मैं भी उनके चरणों की अनुरागिणी हूँ । ईश्वर साक्षी है कि मैंने भी किसी की ओर आँख उठाकर नहीं देखा । विधाता की गति बलवती है कि तू ऐसा न जाने कहाँ से पैदा हो गया । इस प्रकार माता के समझने पर भी वह मद्य, जुआ, चोरी, वेश्या, शिकार आदि व्यसनों में फँसा ही रहा । घर में उसे जो कुछ सोना, चाँदी कपड़े मिलते उन्हें ले जाकर जुआरियों को दे दिया करता । एक दिन एक रत्नजटित अँगूठी, सोती हुई अपनी माता के हाथ से निकालकर किसी जुआरी को दे आया । यह अँगूठी इसके पिता ने उबटन करते समय इसकी माता को दे दी थी । दैवयोग से वह अँगूठी दीक्षित ने जुआरी के हाथ

दीक्षितस्तमुवाचैवं कुतो लब्धेयमूर्मिका । पृष्टस्तेनाथ निर्बन्धादसकृत् प्रत्युवाच ह ॥३२॥
किं मां क्षिपसि विप्रोच्चैः, किं मया चौर्यकर्मणा । लब्धा मुद्रा त्वदीयेन पुत्रेणैव ममार्पिता ॥३३॥
तस्य मातुश्च पूर्वेद्युः जित्वा नीतो हि शाटकः । न केवलं हि मय्येतदङ्गुलीयं समर्पितम् ॥३४॥
द्यूतकारेषु बहुशस्तेन बह्वर्पितं धनम् । रत्नसंघं दुकूलानि शृङ्गारप्रभृतीनि च ॥३५॥
भाजनानि विचित्राणि कांस्यताम्रमयानि च । नग्नीकृत्य प्रतिदिनं ताड्यते द्यूतकारिभिः ॥३६॥
न तेन सदृशः कश्चिदाक्षिको भूमिमण्डले । कथं न ज्ञाततनयो भवांस्तु विनयान्वितः ॥३७॥
दीक्षितस्तु त्रपाभारविनम्रतमकन्धरः । प्रावृत्य वाससा मौलिं प्राविशन्निजमन्दिरम् ॥३८॥
स चागत्य प्रियामाह रोषपर्याकुलेन्द्रियः । हे गृहेश्वरि ! ते कुत्र प्रियो गुणनिधिः सुतः ॥३९॥
अथवा तिष्ठ किं तेन क्वासौ मम शुभोर्मिका । अंगोद्वर्तनकाले या मया दत्ता त्वया धृता ॥४०॥
नवरत्नमयीं शीघ्रं तामानीय प्रयच्छ मे । इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं रोषयुक्तं भयाकुला ॥४१॥
उवाच स्नामध्याह्नक्रियां निष्पादयाधुना । व्यग्रास्मि देवपूजार्थमुपहार्यादिकर्मणि ॥४२॥
इदानीमेव पक्वान्नकरणे व्यग्रहस्तया । स्थापिता भाजने क्वापि विस्मृतेति न वेद्म्यहम् ॥४३॥

देवशर्मोवाच—

हं हो ! सुपुत्रजननि ! नित्यं सत्यप्रभाषिणि । यदा यदा त्वां पृच्छामि तनयः क्व तवेत्यहम् ॥४४॥
तदा तदा त्वया प्रोक्तम्-अत्रैवासीत् स साम्प्रतम् । अधीत्याध्यापनार्थं हि द्विजैर्मित्रैर्बहिर्ययौ ॥४५॥
न दृश्यते गृहे किंचित् धनं वस्त्रादिकं मम । सुवर्णाभूषणं भद्रे ! तथ्यं ब्रूहि भयं त्यज ॥४६॥
साम्प्रतं नेक्ष्यते क्वापि वर्ततां स कुलाधमः । अथवा कुलजे ! सुभ्रूः तुभ्यं कुप्याम्यहं वृथा ॥४७॥
अनपत्योऽस्म्यहं तस्मात् दुःखदात् कुलदूषणात् । त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरेषा सनातनी ॥४८॥
उत्तिष्ठानय दर्भाम्बु तस्मै दद्यां तिलाञ्जलिम् । अपुत्रत्वं वरं नृणां कुपुत्रात् कुलदूषणात् ॥४९॥

में देख ली ।२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१। दीक्षित ने पूछा कि यह अँगूठी तुम्हें कहाँ से मिली ? कई बार आग्रहपूर्वक पूछने पर उसने कहा ।३२। दीक्षित जी ! आप मुझे क्यों धमका रहे हैं ? मैंने चोरी नहीं की है, तुम्हारे बेटे ने ही मुझे दी है ।३३। कल वह अपनी माता की साड़ी हार गया था; ताँबा, पीतल, काँसे के बहुत से बर्तन, वस्त्र, शृङ्गार की अनेक वस्तुएँ उसने जुआरियों को दी हैं, न देने पर ज़ुआरी उसे प्रतिदिन नंगा करके पीटते भी हैं ।३४, ३५, ३६। वह तो प्रसिद्ध जुआरी है । आप तो बहुत सरल हैं, अपने पुत्र के चरित्र को नहीं जानते ।३७। यह सुनकर दीक्षित का सिर झुक गया, चुप होकर सिर से वस्त्र लपेटकर वह अपने घर चला आया ।३८। क्रोध में भरकर दीक्षित ने अपनी पत्नी से पूछा कि तुम्हारा प्रिय पुत्र गुणनिधि कहाँ है ? ।३९। अथवा उस दुष्ट गुणनिधि से मेरा क्या प्रयोजन ? मेरी अँगूठी कहाँ है ? स्नान के समय में ज़ो मैंने तुम्हें दी थी, तुमने पहन ली थी ।४०। नवरत्नजटित अँगूठी को ज़ल्दी लाकर दो । यह सुनकर वह डरती हुई बोली कि मैं कही रखकर भूल गई हूँ, अभी देवपूजा के लिए पक्वान्न बना रही हूँ, आप मध्याह्न-क्रिया करें ।४१, ४२, ४३। देवशर्मा ने कहा—हे सुपुत्र को जन्म देने वाली ! हे सत्यभाषिणि ! मेरे पूछने पर तुम सर्वदा यही कहा करती थीं कि अभी पढ़कर पढ़ाने के लिए चला गया है, दो-तीन मित्र भी उसके साथ हैं ।४४, ४५। घर में भी सुवर्ण के आभूषण, वस्त्र, पात्र आदि कुछ नहीं दिखाई दे रहा है, सच बोलो डरो मत ।४६। अब भी उस नीच का पता नहीं, कहाँ है ? अथवा तुम पर मेरा कुपित होना व्यर्थ है, कुल की रक्षा के लिए ऐसे कुल-कलंक का त्याग ही उचित है, अब मैं पुत्रहीन हूँ ।४७, ४८। कुपुत्र की

स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा तस्मिन्नेवाह्नि कस्यचित् । श्रोत्रियस्य सुतायाः स पाणिं जग्राह दीक्षितः ॥५०॥
श्रुत्वा गुणनिधिर्वृत्तमीदृशं शोकविह्वलः । उदीचीं दिशमालम्ब्य निर्ययौ नगराद्बहिः ॥५१॥
चिन्तामवाप महतीं क्व यामि करवाणि किम् । नाहमभ्यस्तविद्योऽस्मि न चाप्यस्ति धनं मम ॥५२॥
देशान्तरेषु धनवान् विद्यावान् वा सुखी भवेत् । भयमस्ति धने चौरात् सद्विद्यस्त्वकुतोभयः ॥५३॥
इति चिन्तयतस्तस्य भानुरस्ताचलं गतः । क्षुल्लेलिहानः स भृशं शम्भलं समुपेयिवान् ॥५४॥
व्यावृत्तनयनः क्षीणश्चौर्यं कर्त्तुं समुद्यतः । तस्य पादतलस्पर्शात् सुप्तः कोऽप्याह बोधितः ॥५५॥
चौरश्चौर इति प्रोच्चैराक्रुश्यान्यानबोधयत् । ताडितः स तथा तैस्तैर्यथा पञ्चत्वमागतः ॥५६॥
अथ बद्धः समागत्य पाशमुद्गरधारिभिः । निनीषुभिः संयमनीं याम्यैः सुविकटैर्भटैः ॥५७॥
तावत्ते पार्षदाः प्राप्ताः किंकिणीजालमालिनः । दिव्यं विमानमादाय तं नेतुं शूलपाणयः ॥५८॥
शम्भोर्गणान् समालोक्य भीतैस्तैर्यमकिङ्करैः । अवादि प्रणतैरित्थं दुर्वृत्तोऽयं द्विजाधमः ॥५९॥
कुलाचारप्रतीपोऽयं पित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः । सत्यशौचपरिभ्रष्टः सन्ध्यास्नानविवर्जितः ॥६०॥
प्रत्यक्षतोऽपि वीक्षध्वमस्पृश्योऽयं भवादृशैः । अस्ति चेद्धर्मलेशोऽस्य गणास्तच्छृणुमो वयम् ॥६१॥
इत्येतद्वाक्यमाकर्ण्य प्रोचुस्ते पार्षदास्ततः । किंकराः ! शिवधर्मास्तु सूक्ष्मास्तस्माद् भवादृशैः ॥६२॥
स्थूलाक्षैस्ते कथं लक्ष्या ये लक्ष्याः सूक्ष्मदृष्टिभिः । आर्येणानेन यत्पुण्यं कृतं तच्छ्रूयतामिह ॥६३॥
शम्भलेश्वरतः पार्श्वे प्राणांस्तत्याज निश्यसौ । तैलङ्गराजो भविता तस्मान्निर्धूतकल्मषः ॥६४॥
पार्षदैर्यमदूतेभ्यो मोचितः सोऽभवत्पुनः । अरिन्दमस्य तनयो ययातिरिति विश्रुतः ॥६५॥
तैलङ्गविषये राज्यं प्राप्तो धर्मरतिः सदा । जातिस्मरत्वमापेदे महादेवप्रसादतः ॥६६॥
मनुष्यधर्मबोद्धृत्वाद् भोगांस्त्यक्त्वा स उत्तमान् । तपः कर्तुं मनश्चक्रे ययातिर्नृपसत्तमः ॥६७॥

अपेक्षा पुत्रहीन होना अच्छा है, कुश और जल लाओ, मैं उसे तिलाञ्जलि देता हूँ ।४९। इस प्रकार दीक्षित ने अपने पुत्र को त्याग दिया और किसी वेदवेदाङ्गवेत्ता ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लिया ।५०। गुणनिधि भी ये समाचार सुनकर अपनी करतूतों पर पछताता हुआ नगर से बाहर उत्तर दिशा में चल पड़ा । ।५१। चिन्ता करने लगा कि अब कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? विद्याभ्यास मैंने छोड़ दिया था, धन मेरे पास नहीं है, धन की अपेक्षा विद्या परदेश में अधिक सहायक होती है; धनवान् को चोर आदि का भय रहता है, विद्वान् को कोई भय नहीं ।५२, ५३। इस प्रकार उसके सोचते हुए ही सूर्यास्त हो गया । बहुत भूखा, दुर्बल, देखने में भी असमर्थ वह गुणनिधि सम्भल मे आकर चोरी के लिए तत्पर हुआ । उसका पैर पड़ जाने से कोई सोया हुआ जाग गया; उसने चोर-चोर चिल्लाकर औरों को भी जगा दिया, फिर सबने उसको पकड़कर मार दिया ।५४, ५५, ५६। यमपुरी ले जाने के लिए भयंकर शस्त्रधारी यमदूतों ने उसको बाँध लिया । इतने ही में उसको शिवपुरी ले जाने के लिए त्रिशूलधारी शिवदूत भी दिव्य विमान लेकर वहाँ आ गये ।५७, ५८। शिवगणों को देखकर डरे हुए यमदूतों ने कहा कि यह तो बड़ा पापी है, आप लोगों के छूने योग्य नहीं हैं, यदि इसका कोई पुण्य है तो कहें ।५९, ६०, ६१। यह सुनकर शिवदूतों ने कहा कि शिव के नियमों को सूक्ष्मदृष्टि वाले ही समझ सकते हैं, आप जैसे स्थूल दृष्टि वाले नहीं समझ सकते; अब आप इसका पुण्यकर्म सुनिए ।६२, ६३। शम्भलेश्वर के समीप इसने प्राण छोड़े हैं, इसलिए इसके सभी पाप नष्ट हो जाने से इसको तैलङ्ग देश का राज्य मिलेगा ।६४। शिवगणों द्वारा यमदूतो से छुड़ा देने पर तैलङ्गदेश के राजा अरिन्दम के पुत्र के रूप में इसने जन्म लिया और ययाति नाम से इसकी प्रसिद्धि हुई ।६५। महादेव की कृपा से तैलङ्गदेश का राज्य

इति कृत्वा मतिं धीरस्तैलङ्गाधिपतिर्बली । आजगाम महीपालः शम्भलं हरिमन्दिरम् ॥६८॥
चन्द्रेश्वरमधः स्नात्वा माहिष्मत्याः स सङ्गमे । एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्तव्रतोऽभवत् ॥६९॥
अयाचिताशनो मासं मासं पानीयभोजनः । पञ्चगव्याशनो मासं मासं चान्द्रायणव्रती ॥७०॥
मासं कुशाम्बुजलभुक् मासं श्वसनभोजनः । अथ त्रयोदशे मासे स्नात्वा माहिष्मतीजले ॥७१॥
प्रत्यूष एव चन्द्रेशं यावदायात्यसौ नृपः । तावद्विलोकयामास मध्ये लिङ्गस्य धूर्जटिम् ॥७२॥
विभूतिभूषितं बालमष्टवर्षाकृतिं परम् । आकर्णपूर्णनयनं सुरक्तदशनच्छदम् ॥७३॥
चारुपङ्गलमौलिं च नग्नं प्रहसिताननम् शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चित्तहारिणम् ॥७४॥
पठन्तं श्रुतिसूक्तानि पश्यन्तं तं महीपतिम् । द्रष्ट्वा तुष्टाव नृपती रोमकञ्चुकितो मुदा ॥७५॥

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥७६॥
एकः कर्त्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।
यद्यत् प्रत्यक् सर्व एकोऽप्यनेकस्तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥७७॥
न ते गोत्रं नेश ! जन्मापि नाख्या नो वाग्रूपं नैव शीलं न देशः ।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्किं यत्त्वं नेश ! तं त्वां प्रपद्ये ॥७८॥
स्तुत्वेति भूमौ निपपात राजा स दण्डवत् प्रापदतीव हर्षम् ।
तावत् स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच राजेन्द्र ! वरं वृणीष्व ॥७९॥

तत उत्थाय नृपतिर्ययातिर्हृष्टमानसः । प्रत्यब्रवीत् किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥८०॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वस्यैवापि सर्वदा । पुरं चतुर्युगीस्थायि कर्तुमिच्छाम्युमापते ॥८१॥

पाकर इसको पिछले जन्म की याद भी बनी रही ।६६। मनुष्य जन्म का कर्तव्य समझ लेने से इसने राज्य के उत्तम भोगों का परित्याग कर तप करने का निश्चय किया ।६७। इस निश्चय के अनुसार वह तैलङ्गदेश का राजा हरिमन्दिर सम्भल में आ गया ।६८। चन्द्रेश्वर के नीचे माहिष्मती के सङ्गम में स्नान करके एक मास तक एकाहार, एक मास तक सूर्यास्त से पूर्व अल्पाहार, एक मास तक चान्द्रायण, एक मास अयाचित भोजन, एक मास जलाहार, एक मास पञ्चगव्यपान, एक मास कुशों से अभिमंत्रित जल का पान, एक मास केवल वायु का ही आहार कर के वर्ष के शेष चार मासों में चातुर्मास्य के नियमों का पालन करके तेरहवें महीने के प्रथम दिन प्रात:काल जैसे ही यह माहिष्मती में स्नान करके चन्द्रेश्वर के दर्शन करने आया कि आठ वर्ष की अवस्था वाले दिगम्बर बालक के रूप में उसने भगवान् शङ्कर का दर्शन प्राप्त किया । कानों तक फैले नेत्र, लाल होठ, चन्द्रमा की किरणों से चमचमाता हुआ मस्तक बालकोचित चित्तहारिणी क्रीडा, मन्द मुसकान, मुख से वेद मंत्रों की मधुर ध्वनि, अपनी ओर कृपादृष्टि, यह सब देखकर ययाति ने नतमस्तक होकर स्तुति आरम्भ की ।६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७ , ७५। हे परमेश्वर ! आप एक ही परमात्मा अनेक रूपों में प्रकट हैं, यहाँ दूसरा कोई नहीं है, वास्तविकता तो यह है कि आपका न रूप हैं, न नाम है, न गोत्र है, न कोई देश विशेष है, फिर भी आप जगत् के कर्त्ता, धर्त्ता और संहार कर्त्ता हैं; बालक, युवा और वृद्ध भी आप ही हैं, मैं आप की शरण में आया हूँ ।७६, ७७, ७८। यह कहकर राजा ने पृथ्वी पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया, तभी वृद्धों के भी वृद्ध उस बालक ने राजा से वर माँगने को कहा ।७९। ‘सब कुछ देने वाले आप सभी के अन्तरात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं, आपसे क्या छिपा है, मैं चारों युगों में इस नगर को स्थायी रूप में देखना चाहता हूँ ।८०,

तव प्रसादाद्यज्ञं च कर्तुकामोऽहमागतः। इति तस्य वचः श्रुत्वा देवः कारणकारणम् ।।८२।।
शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचिं स्मृत्वा तमब्रवीत्। त्वया राजर्षिवर्येन योऽभिलाषः कृतो हृदि ।।२३।।
अचिरेणैव कालेन सम्पूर्णः स भविष्यति। मम प्रसादात् राजेन्द्र ! पुरपालत्वमेष्यसि ।।८४।।
सत्ये सत्यव्रतो नाम त्रेतायां च महद्गिरिः। द्वापरे पिङ्गलो नाम कलौ शम्भल उच्यते ।।८५।।
युगे युगे महाराज ! विख्यातं भूतले पुरम्। स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नात्र संशयः ।।८६।।
प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाम्भवम्। वर्षं जपन्निमं मंत्रमपुत्रः पुत्रवान् भवेत् ।।७७।।
वाञ्छितार्थप्रदं स्तोत्रं न देयं यस्य कस्यचित्। इत्युक्त्वान्तर्हितो बालो ययातिस्तत्र संस्थितः ।।८८।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यातः ।।

८१। आप की कृपा से इस पुर में यज्ञ करने की भी मेरी इच्छा है।' शिव ने उसकी इच्छा पूर्ण की, इस नगर का रक्षक भी उसे बना दिया।८२, ८३, ८४। सत्ययुग में इसका नाम सत्यव्रत, त्रेता में महद्गिरि, द्वापर में पिङ्गल, कलियुग में सम्भल होगा।८५। हे राजन् ! इस प्रकार प्रत्येक युग में इस पुर की प्रसिद्धि वनी रहेगी। स्वर्ग और मोक्ष की सम्पत्ति भी यहाँ प्राप्त होती रहेगी।८६। प्रातः स्नान-सन्ध्या से निवृत्त होकर शम्भलेश्वर शिवलिङ्ग का पूजन करके एक वर्ष पर्यंत इस मन्त्र का जप करने से पुत्रहीन को भी पुत्र प्राप्त होता है।८७। सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने वाला यह स्तोत्र अधिकारी को ही देना चाहिये, निरधिकारी को नहीं, यह कह कर बालक रूप में प्रकट हुए शिव अदृश्य हो गये। राजा ययाति वहीं स्थित रहा।८८।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का तृतीय अध्याय पूर्ण हुआ)

●

अथ चतुर्थोऽध्यायः

स्कन्द उवाच—

अथ राजा द्विजश्रेष्ठ ! लोकानां हितकाम्यया । संस्थाप्य लिङ्गमध्ये तत्पुरं सत्यव्रतं शुभम् ॥१॥
राजसूयं समाजह्रे तत्रादौ भूरिदक्षिणम् । सूर्यकुण्डं तथैवैकमत्र स्थापितमद्भुतम् ॥२॥
तुष्टेन देवदेवेन स्वमौलौ यो धृतः सदा । अत्रिर्भृगुर्जामदग्न्यो जाबालिरथ कश्यपः ॥३॥
नारदः पर्वतश्चैव रैभ्यो यत्रर्त्विजोऽभवन् । दृश्योऽभवद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥४॥
सिनीवाली कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रजा वसुः । कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च वनदेव्यः स्थिता मखे ॥५॥
उमया सहितो रुद्रः संस्थितो यज्ञसन्निधौ । हंसयानेन सम्प्राप्तस्तत्र देवश्चतुर्मुखः ॥६॥
राजसूयं स विधिवत्कृत्वा चन्द्रेश्वराग्रतः । दक्षिणामददद्राजा कोटीनां दश पञ्च च ॥७॥
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यस्ते च तस्मै वरान् ददुः । सहितो ब्रह्मरुद्राभ्यां विष्णुः सन्तुष्टमानसः ॥८॥
भक्तिप्रभावं विज्ञाय प्रायच्छद्वरमुत्तमम् । वत्स ! ते निश्चला भक्तिर्भवे भवतु सर्वदा ॥९॥
देवेन दत्ता ये तुभ्यं वराः सन्तु तथैव ते । त्वयैष स्थापितो ग्रामो मम नाम्ना भविष्यति ॥१०॥
अत्र चाहं निवत्स्यामि पुरे राजर्षिसत्तम । सिद्धिदं यदिदं पुण्यं सर्वपापहरं पुरम् ॥११॥
ममालयस्य यो नित्यं कुर्याद्वै दर्शनं नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा मम लोके स मोदते ॥१२॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा म्लेच्छास्तथान्त्यजाः ।
स्नानात् पानात् तथा दानात् सर्वे ते मोक्षमाप्नुयुः ॥१३॥

स्कन्द ने कहा— हे अगस्त्य ! लोकहित की कामना से राजा ने सत्ययुग में इस सत्यव्रत नामक नगर को बसाकर राजसूय यज्ञ किया और सूर्यकुण्ड की स्थापना की ।१, २। भगवान् शंकर ने अपनी मुकुटमणि के समान इस सूर्यकुण्ड का आदर किया, अत्रि-भृगु-जामदग्न्य- जाबालि-कश्यप-नारद-पर्वत-रैभ्य इस यज्ञ के प्रधान ऋत्विज् थे, इसमें मुनियों की मण्डली के सहित भगवान् विष्णु भी प्रकट हुए ।३-४। जिसमें चन्द्रमा की कला कुछ दीखती है ऐसी सिनीवाली अमावास्या तिथि, जिसमें चन्द्रकला नहीं दीखती वह 'कुहू' अमावास्या तिथि, द्युति-प्रजा-वसु-कीर्ति-धृति-लक्ष्मी और वनदेवियाँ भी उस यज्ञ में उपस्थित हुईं ।५। पार्वती सहित शंकर भगवान् और हंसारूढ ब्रह्मा जी भी वहाँ उपस्थित हुए ।६। राजा ययाति ने चन्द्रेश्वर के समीप इस राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर दक्षिणा में १५ करोड़ सुवर्ण-मुद्राएँ दीं ।७। दक्षिणा लेकर उन ब्रह्मर्षियों ने भी उस राजा को आशीर्वाद दिया । ब्रह्मा और शिव के सहित विष्णु ने उसको शिव भक्ति का वरदान दिया ।८, ९। यह भी कहा कि तुम्हारे लिए दिये गये सभी वरदान सफल हों और तुम्हारा वसाया हुआ यह ग्राम मेरे (हरिमन्दिर) नाम से विख्यात होगा ।१०। हे श्रेष्ठ राजर्षे ! मैं भी पापनाशक और सिद्धिदायक इस नगर में निवास करूँगा ।११। इसके मध्य में मेरे रहने से इसका नाम हरिमन्दिर है । इसका नित्य दर्शन करने वाला मनुष्य मेरे ही लोक में सुख भोगता है । ।१२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ और अन्त्यज सभी यहाँ स्नान, जलपान और दान करने वाले मोक्ष के भागी होते हैं ।१३। जो हरिमन्दिर सम्भल में निवास

हरिमन्दिरमध्ये यो निवासं कुरुते नरः । स्वार्थं वापि परार्थं वा योऽस्य कुर्यात् परिक्रमाम् ॥१४॥
कामुकः काममाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् । ममात्रैव निवासोऽस्ति ब्रह्मणा सह शम्भुना ॥१५॥
ग्राममध्ये मे निवासः प्राकारे ब्रह्मणः सदा । दक्षिणं पश्चिमं पूर्वं भागं रक्षति शूलधृक् ॥१६॥
इति दत्वा वरान् देवो देव्या सह जगत्पतिः । ययातये विवेशाथ धाम विश्वेश्वरः परम् ॥१७॥
इतिहासमिमं श्रुत्वा नारी वा यदि वा पुमान् । न जात्विष्टवियोगाग्नितापेन परितप्यते ॥१८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहत्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥

करता है अथवा जो अपनी या दूसरे की कार्यसिद्धि के लिये इसकी परिक्रमा करता है, उसकी कामना पूर्ण होती है, निष्काम को मोक्ष मिलता है; ब्रह्मा और शिव के साथ मेरा यहाँ नित्य निवास है ।१४, १५। इस ग्राम के मध्य में मेरा निवास है; इसके परकोटे में ब्रह्मा का निवास है; दक्षिण, पश्चिम और पूर्व के कोणों की रक्षा शिवा जी करते हैं।१६। भगवान् विष्णु इस प्रकार ययाति को वरदान देकर देवी-देवताओं के साथ अपने धाम को चले गये ।१७। स्त्री या पुरुष कोई भी इस इतिहास को सुनकर इष्टवियोग की आग में नहीं तपता ।१८।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का चतुर्थ अध्याय पूर्ण हुआ)

◆

अथ पंचमोऽध्याय:

स्कन्द उवाच—

अन्यच्च श्रृणु विप्रेन्द्र ! वृत्तं तत्रत्यमुत्तमम्। महदाश्चर्यजनकं महापातकनाशनम् ॥१॥
नारदस्य च संवादं ययातेश्च महात्मनः। एकदा नारदः स्वर्गादागतः पृथिवीतले ॥२॥
कृतयज्ञं च नृपतिं द्रष्टुं ब्रह्माङ्गसम्भवः। आजगाम महातेजा ययातेरुत्तमं गृहम् ॥३॥
दृष्ट्वा तमागतं राजा समुत्तस्थौ निजासनात्। प्रक्षाल्य चरणौ तस्य गामर्घ्यं च न्यवेदयत् ॥४॥
पप्रच्छ कुशलं धर्मे मानवानां महामनाः। पुनः प्रोवाच तं विप्रं भक्तिनिर्मलमानसः ॥५॥
महान्तं तपनज्वालासमं त्वां प्राप्य साम्प्रतम्। सन्दिग्धा दुर्मतिरियं मम पुण्या भविष्यति ॥६॥

नारद उवाच—

कुतस्ते संशयो जातस्तन्मे ब्रूहि नृपोत्तम। ददामि ते परं ज्ञानं सर्वसंशयनाशनम् ॥७॥
श्रुत्वा तन्निजगादैनं यदि तुष्टोऽसि नारद ! पुरस्यास्य चरित्रं मे सर्वं विस्तरतो वद ॥८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। उवाच वचनं वाग्मी तं नृपं नयकोविदम् ॥९॥
श्रृणु पुण्यनिधे सर्वं माहात्म्यं शम्भलस्य तत्। यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥१०॥
इदं पुण्यं शरीरं ते क्षेत्रेऽस्मिन् मुक्तिसाधने। शम्भलेश्वरलिङ्गं वै सर्वेषां मुक्तिसाधनम् ॥११॥
भुवनेश्वरनाम्ना वै सर्वपातकनाशनम्। सर्वेषामेव क्षेत्राणां शिरोभूतमिदं महत् ॥१२॥
मानवानां हितायात्र स्थापितं हरिमन्दिरे। दृष्टेनानेन लिङ्गेन पूजितेन स्तुतेन च ॥१३॥
त्यक्तपापो भवेन्मर्त्यः संसारे न पुनर्विशेत्। रुद्राः पाशुपता सिद्धा ऋषयस्तत्त्वचिन्तकाः ॥१४॥
शान्ता दान्ता जितक्रोधा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः। न तेषां पुनरावृत्तिर्ये मृता हरिमन्दिरे ॥१५॥

स्कन्द ने कहा – हे अगस्त्य ! महापापों के नाश करने वाला और आश्चर्यजनक दूसरा एक और सम्भल का वृत्तान्त सुनिये ।१। यह नारद और ययाति का संवाद है । किसी समय नारद जी राजा ययाति को देखने उसके घर आये ।२, ३। उनको देखकर राजाने अपने आसन से उठकर उनका पूजन किया ।४। कुशल प्रश्न के पश्चात् राजा ने मनुष्यों के कर्त्तव्य के विषय में अपना कुछ सन्देह प्रकट किया ।५। आज सूर्य के समान प्रतापी आपको पाकर मेरी बुद्धि संशयरहित होकर पवित्र होगी । नारद ने कहा—हे राजन् ! क्या संशय है ? कहो, मैं अवश्य तुम्हारे संशय का निवारण करूँगा ।७। यह सुनकर ययाति ने कहा कि हे नारद ! यदि आप प्रसन्न हैं तो विस्तार से सम्भल का चरित्र वर्णन कीजिये ।८। नारद जी ने उसकी प्रार्थना सुनकर उत्तर देना आरम्भ किया ।९। हे पुण्यनिधे ! अब आप सम्भल का माहात्म्य सुनिये, इसके श्रवण से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है ।१०। तुम्हारा शरीर धारण करना सफल हुआ है, यहाँ शम्भलेश्वर शिवलिङ्ग सबके लिए मुक्ति का देने वाला है ।११। ऐसा ही सर्वपापनाशक भुवनेश्वर लिङ्ग यहाँ है, यह सम्भल सभी धर्म-क्षेत्रों का शिरोमणि है । मनुष्यों के हित के लिए ही इस हरिमन्दिर सम्भल में यह लिङ्ग प्रतिष्ठित है । इसके दर्शन-पूजन और स्तवन से पापरहित हुए पुरुष का फिर संसार में प्रवेश नहीं होता, यहाँ मर कर पापों का नाश हो जाने से शम-दम आदि साधनों के जुट जाने पर मोक्ष का क्रम बन जाता है ।१३, १४, १५।

राजन् ! कलौ समुत्पन्ना नराः कल्मषबुद्धयः । सदाचारविनिर्मुक्ताः सत्यशौचपराङ्मुखाः ॥१६॥
मायया दम्भलोभाभ्यां मोहेन च समावृताः । शूद्रान्नसेविनो विप्रा जिह्वालौल्यपरायणाः ॥१७॥
सन्ध्यास्नानजपेज्यासु दूरीकृतमनोधियः । शम्भलेश्वरमासाद्य सर्वपापविवर्जिताः ॥१८॥
माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्य निशि जागरात् । शम्भलेश्वरमभ्यर्च्य प्रयान्ति परमां गतिम् ॥१९॥
इतोऽर्ककुण्डमीशाने तत्र स्नात्वा रवेर्दिने । प्रभाते भास्करं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०॥
सर्वं परित्यज्य रवेर्यो मूर्ति शरणं गतः । न तं पापानि बाधन्ते महापापैरपि श्रितम् ॥२१॥
ययाते ! यदि सप्तम्यां लभ्यते रविवासरः । स्नात्वोषसि तदा मौनी विष्णुमर्कं प्रपूजयेत् ॥२२॥
सप्तजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् । मंत्रेणानेन संस्नायात् सप्तम्यामुदिते रवौ ॥२३॥
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरेष्वपि । मनोवाक्कायजं वापि ज्ञाताज्ञातं च यद्भवेत् ॥२४॥
तन्मे रोगं च शोकं च विष्णुरर्को निहन्त्विह । अनेन मंत्रेण नरः स्नात्वा भक्तिसमन्वितः ॥२५॥
विष्णुमर्कं समालोक्य क्षणान्निष्कल्मषो भवेत् । पूर्वपापानि नश्यन्ति न लिम्पन्त्युत्तराणि च ॥२६॥
अङ्गदेशेऽभवद्वैश्यः शालूको नाम कश्चन । स प्राक्तनात् कर्मयोगात् कुष्ठरोगेण पीडितः २७॥
कुष्ठरोगाभिभूतः संस्त्यक्त्वा दारान् गृहं वसु । अत्रार्ककुण्डमासाद्य विष्णुमाराधयत् सुधीः ॥२८॥
करवीरैर्जपाभिश्च वन्धूकैः किंशुकैः शुभैः । देवमोहनधूपैश्च बहुभिर्देवताम्बरैः ॥२९॥
कपूरैर्वर्तिदीपैश्च नैवेद्यैर्घृतपायसैः । अर्घ्यदानैश्च विधिवत् सूर्यस्तोत्रजपैरपि ॥३०॥
एवं समाराधयतस्तस्यार्को वरदोऽभवत् । प्रण्यगादीद् वचः श्लक्ष्णं याचितुं मनसेप्सितम् ॥३१॥
कुष्ठस्तु ते प्रयात्येव प्रार्थयान्यं वरं स्वतः । आकर्ण्य वचनं स्निग्धं शालूको रश्मिमालिनः ॥३२॥

—हे राजन् ! कलियुग में उत्पन्न होने वाले प्राणी प्राय: सदाचार शून्य, सत्य-शौच से रहित, छल कपट से भरे हुए ब्राह्मण होकर भी तथा जिह्वा की लोलुपता के कारण शूद्रान्न का सेवन करने वाले भी शम्भलेश्वर का दर्शन करके पवित्र हो जाते हैं ।१६, १७, १८। माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन उपवास और रात्रि में जागरण करके प्रात: शम्भलेश्वर का पूजन करने से मोक्ष मिलता है ।१९। शम्भलेश्वर से ईशान कोण में सूर्यकुण्ड है । यहाँ रविवार के दिन प्रात: स्नान करके सूर्य का दर्शन करने से पाप नष्ट होते हैं ।२०। सब सहारे छोड़कर जो सूर्यनारायण की शरण में आता है ब्रह्महत्या आदि महापाप भी उसको नहीं सताते ।२१। हे राजन् ! रविवार युक्त सप्तमी को मौन रहकर सूर्योदय से पूर्व ही नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर जो स्नान करता है, और विष्णु के रूप में सूर्य की आराधना करता है उसके सात जन्मों के पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ।२२, २३। मन से वाणी, से शरीर से, ज्ञान में या अज्ञान में किये गये जन्म-जन्मान्तरों के पापों को और मेरे रोगों को, शोक को सूर्य नारायण नष्ट करें । भक्ति सहित इस मन्त्र से स्नान करके सूर्यनारायण का दर्शन करके मनुष्य निष्पाप हो जाता है । पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं और अगलों से लिप्त नहीं होता ।२४, २५, २६। अङ्ग देश निवासी कोई शालूक नाम का वैश्य पिछले पापों से कोढ़ी हो गया ।२७। उसने घर, घर वालों तथा धन को छोड़कर यहाँ सूर्यकुण्ड पर आकर विष्णु के रूप में सूर्य की आराधना की ।२८। कनेर, गुड़हल, गुलाब, अशोक आदि लाल रंग वाले सुगन्धित फूलों से अष्टगन्ध धूप, दीप, कपूर, रेशमी वस्त्र घृतमिश्रित खीर, मिष्टान्न आदि से उसने पूजन किया, सूर्यनारायण के मन्त्रों का जप किया, आदित्यहृदय आदि स्तोत्रों का पाठ किया ।२९, ३०। इस प्रकार उसकी आराधना से प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उससे वरदान माँगने को कहा ।३१। तेरा कुष्ठरोग तो जाता

प्रणतो दण्डवद्भूमौ सम्प्रहृष्टतनूरुहः । स तमभ्यर्थयामास प्रणतार्तिहरं रविम् ॥३३॥
जगच्चक्षुरमेयात्मन् ! महाध्वान्तविधूनन । यदि प्रसन्नो भगवान् यदि देयो वरो मम ॥३४॥
सदा त्वद्भक्तिनिष्ठा ये माभूत् कुष्ठं तदन्वये । अन्येऽपि रोगा नश्यन्तु नास्तु तेषां दरिद्रता ॥३५॥
नापि वह्नेश्च सन्तापस्त्वद्भक्तानां सहस्रगो । तथास्त्विति रविः प्रोच्य वरमन्यं स्वयं ददौ ॥३६॥
त्वयेयं पूजिता मूर्तिः पुरे सत्यव्रते मम । नित्यमत्र निवत्स्यामि न त्यक्ष्यामि कदाचन ॥३७॥
'विष्णवादित्य' इति ख्याता प्रतिमैषा भविष्यति । सर्वव्याधिनिहन्त्री च सर्वपापप्रणाशिनी ॥३८॥
इति दत्वा वरांस्तस्मै सूर्येणान्तरधीयत । शालूको निर्मलतनुः सोऽपि स्वभवनं ययौ ॥३९॥
अर्ककुण्डमिति ख्यातं शम्भले हरिमन्दिरे । यस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगः प्रणश्यति ॥४०॥
विष्णवादित्यकथामेतां शृणुयादपि यो नरः । प्राप्नोति निर्मलां बुद्धिं जहाति च मनोमलम् ॥४१॥
एतदर्कस्य माहात्म्यं मया ते कथितं नृप ! । श्रुत्वानुमोदमानोऽपि नरः सिद्धिमवाप्नुयात् ॥४२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये पंचमोऽध्यायः ॥

ही रहा, अब तू और कोई वर माँग, यह सुनकर शालूक ने प्रसन्न होकर दण्डवत् प्रणाम किया और प्रार्थना की ।३२, ३३। जगत् के नेत्र ! आपकी अपार महिमा है, वाहर के और अन्दर के अन्धकार को आप ही दूर करते हैं, यदि आप मुझे वर देने के लिए प्रसन्न हैं, तो मैं यह चाहता हूँ कि आपके भक्तों के वंश में कोई कोढ़ी न हो, रोगी न हो, दरिद्र न हो, अग्नि का भय न हो । सूर्यनारायण ने यह वरदान स्वीकार किया और स्वयं भी एक और वर दिया ।३४, ३५, ३६ । इस सत्यव्रत पुर में जिस मूर्ति की तुमने पूजा की है, मैं इसमें नित्य निवास करूँगा सभी पापों, रोगों का विनाश करने वाली यह मेरी मूर्ति विष्णवादित्य नाम से प्रसिद्ध होगी ।३७, ३८। यह कहकर सूर्य अदृश्य हुए और शालूक भी निर्मल शरीर होकर अपने घर चला गया ।३९। हरिमन्दिर सम्भल में इस प्रसिद्ध सूर्यकुण्ड के दर्शन मात्र से कुष्ठरोग का नाश हो जाता है ।४०। विष्णवादित्य की इस कथा को सुनने वालों के मन पवित्र और बुद्धि निर्मल हो जाती है ।४१। नारद जी ने राजा ययाति को यह कथा सुनाकर कहा—कि इस कथा को सुनकर इस का अनुमोदन करने वाला भी सिद्धि को प्राप्त होता है ।४२।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का पंचम अध्याय पूर्ण हुआ)

◆

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारद उवाच—

हंसतीर्थं च तत्पूर्वे त्रिषष्टिधनुषां परम् । तस्मिँस्तीर्थे तु यद्वृत्तं तन्निशामय भूपते ॥१॥
बका हंसत्वमापन्नास्तत्तीर्थस्य प्रभावतः । एकदा तीर्थयात्रायां चैत्रकृष्णाष्टमीं प्रति ॥२॥
अन्नं राशीकृतं तत्र यद् दत्तं यात्रिभिस्तदा । बहुदेवलकैर्विप्रैस्तद् दृष्ट्वा पक्षिणोऽमिलन् ॥३॥
हारीता मद्गवो लावा जीवंजीवाश्चकोरकाः । बलिपुष्टाष्टिट्टिभकाः कुक्कुभाः कुररा बकाः ॥४॥
परस्परं युध्यमानैर्बहुभिश्चञ्चुभिर्हताः । ते हन्यमाना न्यपतँस्तस्मिँस्तीर्थे बकास्तदा ॥५॥
तीर्थप्रभावात् त्वरितं हंसीभूताः सुपेशस । दृष्ट्वा तत्रेदमाश्चर्यं यात्रायामागता जनाः ॥६॥
ऊचुरङ्गलिनिर्देशैरहो ! पश्यत पश्यत । अस्मासु वीक्षमाणेषु बकाः कुण्डेषु येऽपतन् ॥७॥
धार्तराष्ट्रास्तु ते जातास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः । हंसतीर्थं तदारभ्य सूर्यकुण्डस्य पूर्वतः ॥८॥
विख्यातमभवल्लोके नाम्नैतेन नृपोत्तम ! । अतीव मलिनात्मानो महामलिनकर्मभिः ॥९॥
क्षणान्निर्मलतां यान्ति हंसतीर्थकृताप्लवाः । हंसतीर्थमिदं तस्मात् सेवनीयम् बुभूषुभिः ॥१०॥
दर्शनीयमिदं तीर्थं वाञ्छितं सुरसत्तमैः । हंसतीर्थस्य पुरतो धनुस्त्रिंशत्परं नृप ॥११॥
कृष्णतीर्थमिति ख्यातं यत्र सन्निहितो हरिः । अतिपापोऽपि निष्पापो जायते यद्विलोकनात् ॥१२॥
ददाति वाञ्छितां सिद्धिं यः स्नातो हरिवासरे । स्नानमात्रेण तरसा सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१३॥
तत्तीर्थोदकसंस्पर्शो व्रणविस्फोटनाशकृत् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा प्रणिपत्य जगत्प्रभुम् ॥१४॥
लभते वाञ्छितां सिद्धिं दुर्लभां सर्वदेहिभिः । मणिमाणिक्यसम्पूर्णं गजाश्वरथसंकुलम् ॥१५॥

नारद ने कहा—सूर्यकुण्ड से ७३ धनुष, २५२ हाथ की दूरी पर हंसतीर्थ हैं, वहाँ घटित हुई घटना आप सुनिये ।१। चैत्र कृष्ण पक्ष अष्टमी के दिन वेतन लेकर देव पूजा करने वाले ब्राह्मणों द्वारा लगाए गये तीर्थ-यात्रियों से प्राप्त अन्न के ढेर को देखकर आकाश में पक्षियों का दल छा गया ।२,३। हारीत, मद्गु, लाव जीवंजीव, चकोर कौए, टटीरे, कुक्कुभ, कुरर बगले आदि भिन्न-भिन्न जाति वाले पक्षी आपस में लड़ने लगे, उनमें बलवान् पक्षियों द्वारा मारे गये बगले इस तीर्थ में गिर गये ।४, ५। गिरते ही वे बगले हंस बन गये; हे राजन् ! तभी से इसको हंसतीर्थ कहते हैं; मलिन कर्म करने वाले भी इसमें स्नान करके निर्मल हो जाते हैं, उन्नति के इच्छुकों को इस हंसतीर्थ का सेवन अवश्य करना चाहिए ।६, ७, ८, ९, १०। देवता भी इस तीर्थ के दर्शनार्थी हैं, हंसतीर्थ से ३० धनुष १२० हाथ आगे कृष्णतीर्थ है। इसमें कृष्ण की सन्निधि है, इसके दर्शन मात्र से महापापी भी निष्पाप हो जाते हैं ।११, १२। द्वादशी के दिन इस तीर्थ में स्नान करने से रोगों का नाश और मनोरथों की पूर्ति होती है ।१३। कृष्णतीर्थ के जल का स्पर्श होते ही फोड़े-फुंसियों का भय नहीं रहता, इस तीर्थ में स्नान करके कृष्ण को प्रणाम करने से दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, मणि

स्त्रीरत्नपुत्ररत्नैश्च समृद्धं राज्यमाप्नुयात् । कृष्णतीर्थे तु यैस्तत्र न स्नातं हंस सन्निधौ ॥१६॥
ते मर्त्यलोके भाराय भुवः सन्ति न संशयः । कृष्णतीर्थस्य माहात्म्यं ये श्रोष्यन्तीह मानवाः ॥१७॥
हरेः सन्दर्शनात् सद्यः श्रेयः प्राप्स्यन्ति ते भुवि । तदग्रतः सन्निहतिः महापुष्करिणी शुभा ॥१८॥
लोलार्कदक्षिणे भागे कुरुक्षेत्रस्थली तु सा । तत्र स्नानं जपस्तप्तं हुतं दत्तं शुभार्थिभिः ॥१९॥
कुरुक्षेत्रप्रभावेण भवेत् कोटिगुणाधिकम् । तत्रत्याद्भिः कृतस्नानो देवदेवं समर्च्य च ॥२०॥
महत्फलमवाप्नोति निर्वाणपदवीं व्रजेत् । ततः पादोदकं तीर्थं सन्निहत्यास्तु पूर्वतः ॥२१॥
तत्र पादोदके तीर्थं स्नाति विश्वेश्वरः स्वयम् । मरीच्यादियुतो ब्रह्मा ब्रह्माण्याद्याश्च मातरः ॥२२॥
सचेतना हि यावन्तस्त्रिलोक्यां देहधारिणः । आयान्ति कार्तिके मासे स्नातुं पादोदके सदा ॥२३॥
जलबुद्बुदवत्तेषां वृथा जन्म शरीरिणाम् । यैर्न पादोदके तीर्थे कृतं स्नानं कदाचन ॥२४॥
पादोदके नरः स्नात्वा कृत्वा च पितृतर्पणम् । हरिं प्रदक्षिणीकृत्य न भूयस्तनयो भवेत् ॥२५॥
निर्वाणलक्ष्मीं यः काङ्क्षेद् भुञ्जानो भवदुर्गतीः । शम्भलं न त्यजेज्जातु चतुर्वर्गफलोदयम् ॥२६॥
सत्यलोके तु यत्सौख्यं यत्सौख्यं वैष्णवे पदे । तत्सौख्यं लभते मर्त्यो निमेषाद्धरिमन्दिरे ॥२७॥
पादोदकात् पूर्वतस्तु श्वेतद्वीपं मनोरमम् । तत्रास्ते ज्ञानदो नृणां ज्ञानकेशवसंज्ञकः ॥२८॥
श्वेतद्वीपे नरः स्नात्वा ज्ञानकेशवसन्निधौ । न ज्ञानाद् भ्रंशते क्वापि ज्ञानकेशवपूजनात् ॥२९॥
तार्क्ष्यकेशवनामा च ज्ञानकेशवसन्निधौ । स्नातव्यं सर्वदा भक्त्या तार्क्ष्यतीर्थे नरैः सदा ॥३०॥
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या संसारे न पुर्नविशेत् । ददाति भगवांस्तत्र परां नैःश्रेयसीं श्रियम् ॥३१॥
ब्रह्मविद्योपदेष्टारस्तत्तीर्थोदकसेविनः । तत्र चान्द्रेश्वरं तीर्थं कलिकल्मषनाशनम् ॥३२॥

माणिक्य से भरे हुए कोश, स्त्रीरत्न और पुत्र रत्नों से भरा हुआ घर, हाथी-घोड़ों से सजी हुई सेनाओं वाला समृद्धिशाली राज्य भी मिल जाता है। इस तीर्थ में स्नान न करने वाले पृथ्वी के बोझ हैं। इस तीर्थ की महिमा सुनने वालों को भी सद्गति मिलती है, कृष्णतीर्थ के आगे सन्निहति नाम की पुष्करिणी है, लोलार्क तीर्थ के दक्षिण भाग में कुरुक्षेत्र की सीमा आरम्भ हो जाती है, यहाँ किया हुआ जप, तप, स्नान, हवन, दान आदि पुण्यकर्मकोटिगुण फलदायक होता है; यहाँ स्नान करके देवपूजन करने वालों को मोक्ष जैसे महान् फल की प्राप्ति भी हो सकती है, सन्निहति के पूर्व भाग में पादोदक तीर्थ है, इसमें स्वयं विश्वनाथ भी स्नान करते हैं, मरीचि आदि प्रजापतियों के सहित ब्रह्माजी और ब्रह्माणी आदि मातायें भी यहाँ आती हैं, इस तीर्थ की महिमा को जानने वाले सभी देहधारी कार्तिक में यहाँ स्नान के लिए आते हैं।१४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३। पानी के बबूले के समान उनका जन्म व्यर्थ है जिन्होंने पादोदक तीर्थ में स्नान नहीं किया।२४। यहाँ स्नान तर्पण करके हरि की परिक्रमा करने वालों का फिर जन्म नहीं होता, वे फिर किसी की सन्तान नहीं बनते।२५। संसार को दुःख रूप जानकर मोक्ष का इच्छुक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के दाता सम्भल का कभी परित्याग न करे।२६। सम्भल में सत्यलोक और विष्णुलोक का सुख भी क्षणमात्र में सुलभ है।२७। पादोदक से पूर्व में श्वेतद्वीप तीर्थ है, यहाँ ज्ञान के दाता भगवान् का नाम ज्ञानकेशव है।२८। ज्ञानकेशव की कृपा से इस श्वेतद्वीप में स्नान पूजन करने वाले के ज्ञान में कहीं कोई कमी नहीं आती २९। ज्ञानकेशव के समीप ही तार्क्ष्यतीर्थ है, यहाँ भगवान् का नाम तार्क्ष्यकेशव है, यहाँ भी स्नान करना उचित है।३०। यहाँ स्नान करने वाला भक्त फिर संसार में नहीं आता. मोक्षलक्ष्मी के दाता होकर ही यहाँ भगवान् बैंठे हैं।३१। इस तीर्थ का सेवन करने वाले ब्रह्मविद्या के उपदेशक होते हैं, कलि दोषों का नाशक चान्द्रेश्वर तीर्थ भी तार्क्ष्य तीर्थ

श्वेतमाधवतीर्थे च शङ्खमाधवसंज्ञकम् । शङ्खोदकेन संस्नाप्य भवेच्छङ्खनिधेः पतिः ॥३३॥
प्रणस्य प्राप्नुयान्नित्यं तद्विष्णोः परमं पदम् । अन्यदेव हि ते वच्मि रहस्यं नृपमत्तम ॥३४॥
त्रिवर्गोत्तमसारं यन्निर्मितं परमर्षिभिः । लोलार्कसंज्ञकं तीर्थमुत्तरे श्वेतमाधवात् ॥३५॥
योगक्षेमं वहत्येतद्धरिमन्दिरवासिनाम् । मार्गशीर्षस्य सप्तम्यां रविवारो यदा भवेत् ॥३६॥
तत्र स्नात्वा विधानेन नरः पापैः प्रमुच्यते । कृतानि यानि पापानि नरैः संवत्सरावधि ॥३७॥
नश्यन्ति तत् क्षणात्तानि लोलार्कस्यास्य सेवनात् । नरः स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च पितृँस्तथा ।३८॥
श्राद्धं विधाय विधिना पित्रोर्मुक्तो भवेदृणात् । सूर्योपरागे लोलार्के स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥३९॥
कुरुक्षेत्राद् दशगुणा भवन्तीह न संशयः । लोलार्के माघसप्तम्यां स्नात्वास्मिन् हरिमन्दिरे ॥४०॥
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात् । न तस्य दुःखं नो पामा न दद्रुर्न विर्चचिका ॥४१॥
लोलार्कदर्शनं कृत्वा तत्राचम्य यथाविधि । सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥४२॥
शृणु राजन् ! कथां दिव्याममोघां पापनाशिनीम् । दशाश्वमेधकं तीर्थं लोलार्कस्यास्य पूर्वत ॥४३॥
तीर्थं दशाश्वमेधाख्यं प्रथितं धरणीतले । पुरा लोलार्कसंज्ञं तत्तीर्थं राजर्षित्तम ॥४४॥
दशाश्वमेधकं पश्चाज्जातं विधिपरिग्रहात् । राजात्र सुरथो नामानपत्यः स बभूव ह ॥४५॥
दशाश्वमेधानाजह्रे शंखमाधवसन्निधौ । अद्यापि होमधूमेन व्याप्तं गगनमण्डलम् ॥४६॥
तदाप्रभृत्येव किमु व्योम नीलं प्रतीयते । राज्ञो धर्मरतेस्तस्य छिद्रं नेयाय किञ्चन ॥४७॥
तस्माद् दशाश्वमेधाख्यं सर्वपापप्रणाशनम् । ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदां तिथिम् ॥४८॥
दशाश्वमेधके स्नानान्मुच्यते सर्वपातकैः ज्येष्ठशक्लद्वितीयायां स्नात्वा तीर्थोदके शुभे ॥४९॥
जन्मद्वयकृतं पापं तत्क्षणादेव मुञ्चति । एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः ॥५०॥

के पास है ।३२। चन्द्रेश्वर के पास ही श्वेतमाधवतीर्थ है, यहाँ शङ्खमाधव भगवान् को शंख के जल से स्नान कराने वाला मनुष्य शङ्ख नाम के निधि का पति वनता है ।३३। शङ्खमाधव भगवान् को स्नान कराकर प्रणाम करने वाले को विष्णु का परमपद प्राप्त होता है । हे राजन् ! और भी एक रहस्य की वात सुनिये ।३४। श्वेतमाधव से उत्तर में लोलार्कतीर्थ है, धर्म, अर्थ और काम के साधक इस तीर्थ को महर्षियों ने प्रतिष्ठित किया है ।४५। यहाँ के निवासियों के योग (अप्राप्त की प्राप्ति) तथा क्षेम (प्राप्त की रक्षा) का भार भी इस तीर्थ पर है, अगहन की सप्तमी में रविवार का योग होने पर यहाँ स्नान करने से सब पाप धुल जाते हैं, एक वर्ष तक किये पाप भी यहाँ नष्ट होते हैं, यहाँ श्राद्ध तर्पण करने वाला अपने माता-पिता के ऋण से मुक्त होता है, सूर्यग्रहण के समय यहाँ का स्नान कुरुक्षेत्र के स्नान से भी अधिक फलदायक है, माघ की सप्तमी को यहाँ स्नान करने से सात जन्म के पाप नष्ट होते हैं, दाद-खुजली, फोड़ा-फुन्सी का दुःख दूर होता है लोलार्क तीर्थ का दर्णन करके विधि पूर्वक आचमन करने वाला सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ।३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२। हे राजन् आप दशाश्वमेध तीर्थ की पापहारिणी कथा सुनिये । एक लोलार्क तीर्थ का जल ही पूर्व की ओर वढ़कर दशाश्वमेधतीर्थ बन गया है । एक सुरथ नाम का राजा सन्तानहीन था, शङ्खमाधव की सन्निधि में उसने दश अश्वमेघ यज्ञ किये थे, उन यज्ञों के धुएँ से आकाश इतना छा गया था कि मानों तभी से अव तक भी वह नीलवर्ण दिखायी दे रहा है, उस धर्मात्मा राजा के यज्ञों में कोई त्रुटि नहीं होने पाई, इसलिए इस तीर्थ का नाम दशाश्वमेध है, ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर दशहरा तिथि तक नित्य स्नान करने

तिथिं दशहरां प्राप्य जन्मजन्माघहारिणीम् । दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः ।।५१।।
स्नातो दशहरायां यः पूजयेन्मधुसूदनम् । दशाश्वमेधावभृथे यत्फलं तदवाप्नुयात् ।।५२।।
दशाश्वमेधे तन्नूनं स्नात्वा दशहरातिथौ । प्राप्नोति दुर्दशां नैव पुमान् पुण्यतमः क्वचित् ।।५३।।
शम्भलेश्वरतः पूर्वमन्तर्गेहं च कीर्त्यते । तत्र ब्रह्माणमालोक्य ब्रह्मलोके महीयते ।।५४।।
वृद्धब्राह्मणवेषेण सदा तिष्ठति मन्दिरे । तावदेव स्थितस्तत्र यावद्धरिसमागमः ।।५५।।
पूर्वद्वारे हरेरस्मिन् धाता तिष्ठति सर्वदा । इति ते कथितो राजन् महिमास्य महत्तरः ।।५६।।
दशाश्वमेधतीर्थस्य सर्वाघौघविनाशिनः । श्रुत्वाध्यायमिमं पुण्यं श्रावयित्वा विधानतः ।।५७।।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति श्रद्धया मानवोत्तमः ।।५८।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ।।

वालों के दस जन्म के पाप नष्ट हो होते हैं । ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१। दशहरा के दिन यहाँ स्नान करके मधुसूदन की पूजा करने से दस अश्वमेधों के अवभृथ(यज्ञान्त) के स्नान का फल प्राप्त होता है ।५२। दशाश्वमेध तीर्थ में दशहरा के दिन स्नान करने वाले पुण्यात्मा पुरुष की कभी दुर्दशा नहीं होती ।५३। शम्भलेश्वर महादेव के पूर्व का यह भाग हरिमन्दिर सम्भल का अन्तर्गृह (अन्दर का हिस्सा) है, वहाँ ब्रह्माजी के दर्शन करने वालों की ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा होती है । ४। कल्कि विष्णु भगवान् का अवतार होने तक ब्रह्माजी यहाँ रहेंगे ।५५। हे राजन् ! सम्भल की यह महिमा आपको सुनायी कि इसके पूर्वद्वार में ब्रह्माजी की निरन्तर स्थिति है ।५६। समस्त पापों का विनाश करने वाले दशाश्वमेध तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करने वालों की और इस अध्याय को विधिवत् श्रद्धापूर्वक सुनने वालों की ब्रह्मलोक में गति होती है ।५७, ५८।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का षष्ठ अध्याय पूर्ण हुआ)

●

अथ सप्तमोऽध्यायः

ययातिरुवाच—

अपूर्वेयं कथा ख्याता ब्रह्मन् ब्रह्मविदुत्तम। सर्वेषामेव तीर्थानां ब्रूहि मे गतिमुत्तमाम् ॥१॥

नारद उवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि तीर्थं ते विमलोदकम्। यस्य श्रवणमात्रेण लभते वाञ्छितं फलम् ॥२॥
दशाश्वमेधोत्तरतो धनुषां तु शतत्रयम्। पिशाचमोचनं तीर्थं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥३॥
अत्रागत्य द्विजः कश्चित् सन्ध्यां माध्याह्निकीं स्मरन्। जपँश्च त्रिपदां देवीं ध्यायन् देवं जनार्दनम् ४।
कृत्वा संहारमार्गेण प्राणायामं प्रयत्नतः। क्षणं तत्र सरित्तीरे सूपविष्टो महातपाः ॥५॥
पिशाचमेकमद्राक्षीदत्यर्थविकृताननम्। महाविशालमौलिं तं प्रोच्चैर्भूतशिरोरुहम् ॥६॥
प्रलम्बकर्णपलितं पिङ्गलश्मश्रुभूषणम्। प्रलम्बितललज्जिह्वमत्युत्कटकटीतटम् ॥७॥
दावदग्धद्रुमाकारमतिचञ्चललोचनम्। मूर्त्या भयानकमिव सर्वप्राणिभयङ्करम् ॥८॥
हृदयाकम्पनं दृष्ट्वा पिशाचं ब्राह्मणोत्तमः। अतिदीनाननः कस्त्वमिति धैर्येण पृष्टवान् ॥९॥
कुतस्त्वमिह सम्प्राप्तः कस्मात्ते गतिरीदृशी। अस्माकं तापसानां तु न भयं त्वद्विधादपि ॥१०॥
कृष्णनामधृतास्त्राणां विभूतिकृतवर्मणाम्। तापसोदीरितमिति पिशाचः प्रीतिपूर्वकम् ॥११॥
निशम्य प्राञ्जलिः प्राह तं कृपालुं तपोनिधिम्। अनुक्रोशोऽस्ति यदि ते भगवंस्तापसोत्तम ॥१२॥
स्ववृत्तान्तं तदा वच्मि शृणुष्वावहितः क्षणम्। विष्णुदत्ताभिधानोऽहं निवासो मण्डपाचले ॥१३॥
तीर्थप्रतिग्रहरुचिस्तत्रासं ब्राह्मणान्वये। कुरुक्षेत्रे प्रतिग्राही राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥१४॥
सोऽहं मरुस्थले घोरे तरुतोयविवर्जिते। आगतो दैवयोगेन तत्र पञ्चत्वमागतः ॥१५॥

ययाति ने कहा— हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ नारद जी ! आपने अद्भुत कथा सुनाई. अब सम्भल के तीर्थों की महिमा सुनाइये ।१। नारद बोले— अब मैं तुम्हें विमलोदक तीर्थ का माहात्म्य सुनाता हूँ, इसके सुनने मात्र से मनोरथ पूर्ण होते हैं ।२। दशाश्वमेध से उत्तर में ३०० धनुष (१२०० हाथ) दूर पिशाचमोचन तीर्थ है ।३। कोई ब्राह्मण यहाँ आकर मध्याह्न सन्ध्या में गायत्री जपकर भगवान् का ध्यान करता हुआ रेचक प्राणायाम के बाद सुख से बैठा था ।४,५। तभी उसने एक भयंकर पिशाच को देखा, बहुत चौड़ा सिर, कानो तक फैले हुए बाल, पीली दाढ़ी मूँछ, लटकती हुई लम्बी जीभ, चलायमान आँखें तथा जले हुए पेड़ जैसी डरावनी उसकी सूरत को देखकर ब्राह्मण का हृदय कांप उठा । फिर भी सँभल कर उसने पूछा कि तू कौन है ।६, ७, ८, ९। तू कहाँ से आया है ? तुझे यह योनि क्यों मिली ? हम जैसों को तुम जैसों से कोई भय नहीं है ।१०। कृष्ण नाम का अस्त्र हमारे पास है, भस्म हमारा कवच है । तपस्वी के इन वचनों को सुनकर वह पिशाच प्रसन्न होकर बोला—हे भगवन् आप मेरा वृत्तान्त सुनने की कृपा करें, मण्डपाचल का निवासी मैं विष्णुदत्त ब्राह्मण हूँ, तीर्थों पर दान लेने में मेरी बड़ी रुचि थी, सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में भी मैंने

पर्वस्वदत्तदानोऽहं कृततीर्थप्रतिग्रहः । इमां योनिमनुप्राप्तो बहुदुःखनिबन्धनीम् ॥१६॥
गते बहुतिथे काले तत्र भूमौ मुने ! मया । दृष्टो ब्राह्मणदायाद एकदा कश्चिदागतः ॥१७॥
मुक्तकच्छमशौचं च स्नानसंध्याविवर्जितम् । तं दृष्ट्वा तच्छरीरेऽहं प्रविष्टो भोगलिप्सया ॥१८॥
स द्विजो मन्दभाग्यान्मे केनचिद्वणिजा सह । अर्थलोभेन सम्प्राप्तः पुरं पुण्यमिमं मुने ! ॥१९॥
अन्तःपुरं प्रविष्टोऽभूत् स द्विजो मुनिसत्तम । तच्छरीराद्बहिर्भूतस्त्वहं पापैः समं क्षणात् ॥२०॥
नास्त्यस्माकं प्रवेशोऽत्र प्रेतानां तपसां निधे । महापातकयुक्तानां शम्भले हरिमन्दिरे ॥२१॥
ताडितोऽहं हरेर्दूतैर्बहिष्कर्त्तुमितः पुरात् । अहो चित्रमहं वेद्मि तपस्विँस्तन्निबोध मे ॥२२॥
आहारकाम्यया दृष्टमामिषं न मया क्वचित् । पुष्पिणः फलिनः सन्ति पादपाः प्रतिकाननम् ॥२३॥
भूयांस्यत्र विचित्राणि मया दृष्टानि सर्वतः दैवाद् दृष्ट्वैकमायान्तं तत्र पान्थं कुतश्चन ॥२४॥
तस्यान्तिकमनुप्राप्तः क्षुधया परिपीडितः । प्रसह्य भक्षयाम्येनमिति मे मतिरास्थिता ॥२५॥
यावत्तु तं जिघृक्षामि तावत्तद्वदनाम्बुजात् । हरिनामपवित्रा वाङ् निरगात् पापहारिणी ॥२६॥
हरिनामश्रवणतो मदीयमपि पातकम् । मन्दीभूतं यतस्तस्मात् प्रवेशं लब्धवानहम् ॥२७॥
स तु पान्थस्ततो ग्रामं प्रविष्टोऽहमिहागतः । आत्मानं बहु मन्येऽहं त्वां विलोक्याधुना मुने ॥२८॥
मामुद्धर कृपासिन्धो योनेरस्मात् सुदारुणात् । इति प्रेतवचः श्रुत्वा कृपालुः स तपोनिधिः ॥२९॥
मनसा चिन्तयामास मोक्ष्याम्येनमसंशयम् । तपसाद्य निजेनापि प्रेतमेनमिहातुरम् ॥३०॥
मामेव शरणं प्राप्तं शरणागतवत्सलम् । विमृश्यैतदशेषेण पिशाचं प्राह सत्वरम् ॥३१॥
निर्मलोदे सरस्यस्मिन् स्नाहि पापापनुत्तये । पिशाच ! त्वत्पिशाचत्वं तीर्थस्यास्य प्रसादतः ॥३२॥
हरिमन्दिरमालोक्य क्षणात् क्षीणं भविष्यति । श्रुत्वेति स मुनेर्वाक्यं प्रेतः प्राह प्रणम्य तम् ॥३३॥

दान लिया, दान देना तो मैंने सीखा ही न था, दैवयोग से मैं पेड़-पानी से रहित रेगिस्तान में आकर मर गया और दुःखदायक इस योनि में आ पड़ा ।११, १२, १३, १४, १५, १६। हे मुने ! वहुत समय वीतने पर यहाँ आये हुए एक ब्राह्मण के लड़के को मैंने देखा ।१७। उसकी धोती की लाँग खुली हुई थी शौच स्नान-सन्ध्या से शून्य था, भोग-विलास की इच्छा से मैंने उसके शरीर में प्रवेश किया ।१८। मेरे दुर्भाग्य से वह ब्राह्मण किसी वैश्य के साथ धन के लोभ से सम्भल आया ।१९। हे मुनिवर ! सम्भल में घुसते ही उस ब्राह्मण के शरीर से पापों के साथ मुझको भी निकलना पड़ा ।२०। हे तपोनिधे ! हरिमन्दिर सम्भल में हम जैसे महापापी प्रेतों का प्रवेश नहीं है ।२१। श्री हरि के दूतों ने सम्भल से मुझे निकालने के लिये पीटा भी है। हे तपस्विन् !एक और आश्चर्य की वात सुनो ।२२। खाने केलिए मुझे कहीं मांस देखने को न मिला; प्रत्येक वन में फूलों-फलों से लदे हुए वृक्ष दिखाई दिये ।२३। और भी अनेक विचित्रताएँ मुझे यहाँ देखने को मिलीं, कहीं से आते हुए पथिक को देखकर मैं उसे बलपूर्वक खाना चाहता था ।२४-२५। मैं उसको पकड़ना चाहता ही था कि उसके मुख से श्रीहरि की पवित्र नामावली निकल पड़ी ।२६। श्रीहरि के नामों का श्रवण करके मेरे भी कुछ पाप कट जाने से सम्भल में मेरा प्रवेश हो गया ।२७। वह पथिक तो तो सम्भल के अन्दर चला गया, मैं इधर यहाँ आकर आपको देखकर कृतार्थ हुआ हूँ ।२८। हे तपोनिधि ! अब आप मुझे इस योनि से छुड़ाइये। यह सुनकर उस तपस्वी ने अपना तप देकर भी शरणागत की रक्षा का निश्चय कर उस पिशाच से कहा। २९-३०-३१। हे पिशाच ! इस तीर्थ के निर्मल जल में स्नान और फिर हरिमन्दिर के दर्शन से तू इस योनि से छूट जायेगा। यह सुनकर प्रेत ने प्रसन्नता से हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त ब्राह्मण को प्रणाम किया और

प्रीतात्मानं प्रीतमनाः प्रबद्धकरसम्पुटः । पानीयं पातुमपि नो लभ्यते मुनिसत्तम ॥३४॥
स्नानस्य दुर्लभा वार्ता जलस्पर्शोऽपि दुर्लभः । इति प्रेतोक्तमाकर्ण्य सुभृशं प्रीतिमानभूत् ॥३५॥
उवाच स तपस्वी तं जगदुद्धरणक्षमः । आगच्छ त्वाभिषेक्ष्यामि पवित्रेण कुशाम्बुना ॥३६॥
कुशाम्बुसेचनात्तस्य पैशाच्यं मनसो गतम् । कुशाम्बुधारिणं वीक्ष्य पिशाचं जलदेवताः ॥३७॥
जलावगाहनपरं विनयाच्चक्रिरे च तम् । पिशाचत्वमगात् तावद् दिव्यदेहमवाप सः ॥३८॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः । दिव्ययानं समारुह्य वर्त्म प्राप्तोऽथ पावनम् ॥३९॥
गगने गच्छता तेन स तपस्वी नमस्कृतः । प्रोच्चैः प्रोचे च भगवन् मोचितोऽस्मि त्वयानघ ॥४०॥
अस्मात् कदर्ययोनित्वादतीव परिनिन्दितात् । तीर्थस्यास्य प्रभावेण दिव्यदेहो ममाभवत् ॥४१॥
पिशाचमोचनं तीर्थं विमलोदं भविष्यति । अन्येषामपि पैशाच्यमिह स्नात्वा गमिष्यति ॥४२॥
अस्मिस्तीर्थे महापुण्ये येऽपि स्नास्यन्ति मानवाः । पिण्डान्निर्वापयिष्यन्ति सन्ध्यातर्पणपूर्वकम् ॥४३॥
ये च पैशाच्यमापन्नास्तेषां वंशे पितामहाः । तेऽपि पैशाच्यमुत्सृज्य यास्यन्ति विमलां गतिम् ॥४४॥
तस्मात् शुक्लचतुर्दश्यां श्रावणे नृपसत्तम ! । अत्र स्नानादिकं कार्यं पैशाच्यपरिशोधनम् ॥४५॥
तीर्थप्रतिग्रहात् पापान्निस्तरिष्यन्ति ते नराः । श्रावणे ये विशेषण करिष्यन्त्यवगाहनम् ॥४६॥
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकाद् द्विजोत्तम । एवं वदन् स पुरुषो नमस्कुर्वन् दिवं ययौ ॥४७॥
स ऋषिश्च महाभाग ! स्वमाश्रममगात् पुनः । इमां कथां समाकर्ण्य गच्छेद् देशान्तरं नरः ॥४८॥
चौरव्याघ्रपिशाचेभ्यो नाभिभूयेत कर्हिचित् । अन्यच्च कथयिष्यामि तीर्थं सर्वत्र दुर्लभम् ॥४९॥

कहा हे मुनिवर ! पानी तो हमको पीने के लिए भी नहीं मिलता ।३२-३३-३४। जल का स्पर्श भी हमारे लिए वर्जित है, स्नान तो वहुत दुर्लभ है, यह सुनकर ब्राह्मण को और भी प्रसन्नता हुई ।३५। जगत् के उद्धार की क्षमता रखने वाले तपस्वी ने उससे कहा कि आ, मैं पवित्र कुश जल से तेरा अभिषेक करूँगा ।३६। जल के छिड़कते ही उसके मन से पिशाचपना निकल गया, जल के देवताओं ने भी प्रसन्न होकर उसको स्नान की अनुमति दी, स्नान करते ही उसको दिव्य देह प्राप्त हो गया ।३७, ३८। दिव्यवस्त्र और दिव्यमालाएँ पहने हुए वह दिव्यगन्ध से सुगन्धित होकर दिव्य विमान पर बैठकर देवलोक को चल दिया ।३९। आकाश में जाते समय उसने तपस्वी को प्रणाम किया और कहा कि आपकी कृपा से मैं इस योनि से मुक्त हुआ हूँ ।४०। इस तीर्थ के प्रभाव से मैं इस निन्दनीय योनि से छूटकर दिव्य देह को प्राप्त हुआ हूँ ।४१। अब यह विमलोदक तीर्थ पिशाचमोचन नाम से प्रसिद्ध होगा, यहाँ स्नान करके पिशाचयोनि से छुटकारा मिला करेगा ।४२। इस तीर्थ मे जो भी स्नान करेंगे, सन्ध्या तर्पण करके पितरों को पिण्ड देंगे, पिशाच योनि में पड़े हुए उनके पितर भी पिशाचयोनि से मुक्त होकर निर्मल गति प्राप्त करेंगे ।४३, ४४। हे राजन् ! श्रावण शुक्ल चतुर्दशी को प्रेत बाधा की निवृत्ति के लिए यहाँ स्नानादि करना चाहिए ।४५। विशेष रूप से श्रावण में स्नान करने वाले तीर्थों पर दान लेने के पाप से मुक्त हुआ करेंगे। हे द्विजोत्तम ! श्रावण में यहाँ नियमपूर्वक स्नान करने वाले विष्णुलोक से फिर नहीं लौटते, यह कहकर ब्राह्मण को नमस्कार करता हुआ वह पिशाच देवलोक को चला गया ।४७। वह ऋषि भी अपने आश्रम को चले गये। इस कथा को सुनकर परदेश जाने वाले चोर-

यस्य दर्शनमात्रेण पानानां जायते क्षयः। पिशाचमोचनादर्वागस्ति कूपश्चतुर्मुखः ॥५०॥
तस्मिन् कूपे महाराज! स्थितः साक्षाच्चतुर्मुखः। भक्त्या चतुर्मुखे तीर्थे चतुराननसन्निधौ ॥५१॥
स्नानमत्रानुतिष्ठन्तो लभन्ते परमां गतिम्। पूज्यन्ते सुरसंघातैः सर्वत्र त्रिदशेश्वरैः ॥५२॥
चतुर्मुखादुत्तरतो नैमिषारण्यमुत्तमम्। हरिमन्दिरमासाद्य न स्नातं नैमिषे तु यैः ॥५३॥
भारभूताः पृथिव्यास्ते ख्याताः केशयुता द्रुमाः। तस्मिँस्तीर्थे च ये स्नातास्ते तु देहावसानतः ॥५४॥
गणा एव प्रजायन्ते नात्र कार्या विचारणा। भूतिकामनया यस्तु स्नायाद्वारे बृहस्पतेः ॥५५॥
मासद्वयाभ्यन्तरतस्तस्य श्रीः सर्वतोमुखी। तीर्थस्यास्य प्रसादेन क्षेममूर्तिस्तपोनिधिः ॥५६॥
प्राप्तो विभूतिमचलां प्रसादात् कृत्तिवाससः। क्षेममूर्तिः पूजनीयो तस्मादिह शुभेच्छुभिः ॥५७॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयतां व्रजेत्। अष्टौ बृहस्पतेर्वारान् कृत्वाभ्यर्च्य तपोधनम् ॥५८॥
भोजयेद् ब्राह्मणांश्चाष्टौ स्वर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्। पुष्पगन्धैस्तथा वस्त्रैः पूजयेद् द्विजसत्तमान् ॥५९॥
गोदानैरन्नदानैश्च निजशक्त्यनुसारतः। विघ्नास्तस्य प्रलीयन्ते क्षेमं स्याच्च पदे पदे ॥६०॥
देशान्तरगतो यस्तु तस्यागमनकाम्यया। स्नातव्यं नैमिषारण्ये क्षेमेणाशु समाव्रजेत् ॥६१॥
नैमिषे च त्रयोदश्यामूर्जस्य स्नानमाचरन्। दामोदरं नमस्कृत्य न नरो रोगभाग्भवेत् ॥६२॥
सर्वापराधयुक्तोऽपि नापराध्यति कुत्रचित्। दिने दिनेऽपराधश्चेत् क्रियते हरिमन्दिरे ॥६३॥
स याति संक्षयं सर्वः क्षेममूर्तेरवेक्षणात्। अद्यैव वास्तु मरणं बहुकालान्तरेऽपि वा ॥६४॥
कलिकालभयात् पुम्भिर्न त्याज्यं हरिमन्दिरम्। कल्पवृक्षैः सममिदं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥६५॥

व्याघ्र - पिशाच आदि से निर्भय रहते हैं। पिशाचमोचन के पास ही चतुर्मुख कूप है, इसके दर्शन मात्र ही पापों का क्षय होता है ।४८, ४६, ५०। इस कूप में ब्रह्माजी का निवास है, यहाँ स्नान करने वालों को उत्तम गति प्राप्त होती है, देवता भी उसका पूजन करते हैं ।४१, ५२। चतुर्मुख कूप से उत्तर में नैमिषारण्य तीर्थ है, सम्भल में आकर यहां स्नान न करने वाले मनुष्य केशधारी वृक्षों के समान पृथ्वी पर बोझ ही हैं, यहाँ स्नान करने वालों को मरने के बाद निःसन्देह शिवगणों का पद मिलता है, क्षेममूर्ति तपस्वी को इस तीर्थ की कृपा से अचल सम्पत्ति प्राप्त हुई थी. इसलिए अपना कल्याण चाहने वालों को यहाँ क्षेममूर्ति का भी पूजन करना चाहिए, सम्पत्ति की इच्छा करने वाले गुरुवार को नियमपूर्वक स्नान करने से दो महीने के अन्दर ही सम्पत्ति प्राप्त कर लेते हैं ।५३, ५४, ५५, ५६, ५७। यहाँ के स्नान दान का अक्षय फल होता है, नियमपूर्वक आठ गुरुवार स्नान और क्षेमनाथ का पूजन कर आठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर शक्ति के अनुसार गन्ध, पुष्प, वस्त्र, घी, रत्न आदि दक्षिणा देने वालों का पद-पद पर कल्याण होता है ।५८, ५६, ६०। परदेश में गये हुए अपने प्रिय को जल्दी बुलाने के लिए भी यहाँ स्नान करने से कामना पूर्ण होती है ६१। कार्तिक की त्रयोदशी में यहाँ स्नान करके दामोदर भगवान् को नमस्कार करने वाला रोगी नहीं होता ।६२। सम्भल में रहकर भी प्रतिदिन किये गये अपराध क्षेममूर्ति के दर्शन से नष्ट होते हैं, आज या

शुभो हि शम्भलग्रामः संसारान्मुक्तिमिच्छताम् । क्षेत्राणां चक्रवर्तीदं क्षेत्रं पुण्यौघवर्धनम् ॥६६॥
निर्वाणलक्ष्मीं परमां येऽभिवाञ्छन्ति लीलया । तैर्नित्यसुखभिच्छद्भिर्नं[त्याज्यं हरिमन्दिरम् ॥६७॥
हरिमन्दिरपानीयं ये पिबन्ति नरा भुवि । मोदन्ते निर्भयाः सर्वे तु गत्वा धाम वैष्णवम् ॥६८॥

॥ इति श्री स्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः ॥

वहुत समय के वाद होने वाली मृत्यु का ज्ञान न होने से मोक्ष की इच्छा रखने वालों को सम्भल नहीं छोड़ना चाहिए, कल्पवृक्षों के समान मनोरथों का पूर्ण करने वाला यह स्थान है ।६३, ३४, ६५। मोक्ष के इच्छुकों को क्षेत्रों के चक्रवर्ती इस सम्भल क्षेत्र को नहीं छोड़ना चाहिए ।६६, ६७। सम्भल का जल पीने वाले भी निर्भय होकर विष्णुलोक का आनन्द लूटते हैं ।६८।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का सप्तम अध्याय पूर्ण हुआ ।)

◆

अथ अष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच—

क्षेममूर्तेर्दक्षिणतो धनुषां च शतत्रयम् । सर्वपापप्रशमनं विजयं तीर्थमुत्तमम् ।।१।
सदा विजयदं पुंसां महापापौघनाशनम् । हरिवर्यो नृपवरः स्नात्वा विजयके शुभे ।।२।।
विजयं प्राप्तवान् सद्यो विजयस्य प्रसादतः । रणे राजकुले द्यूते विवादे सर्वदैव हि ।।३।।
विजयो जायते पुंसां विजयस्य प्रसादतः । तत्र स्नानं च दानं च सर्वं शतगुणं भवेत् ।।४।।
ऊर्ध्वरेतोऽभिधं तीर्थमितः षष्टिधनुर्मितम् । अत्र स्नात्वा च हुत्वा च जपित्वा मुनयः पुरा ।।५।।
ऊर्ध्ववीर्याः शांतचित्ताः परिभूतमनोमलाः । प्राप्ता वै ब्रह्मणः स्थानं सेवनादूर्ध्वरेतसः ।।६।।
एकान्तिनामकं तीर्थमेतस्मात् पूर्वतः स्थितम् । अत्र स्नात्वा कान्तिदेवीं नत्वा स्यात् सम्पदुत्तमा ।।७।।
भाद्रकृष्णतृतीयायामुपोषणपरैर्नृभिः । कृत्वा जागरणं रात्रावेकान्त्याश्च समीपतः ।।८।।
प्रातर्भोज्याः प्रयत्नेन नव पञ्च कुमारिकाः । अलंकृत्य यथाशक्ति वस्त्राभरणभूषणैः ।।९।।
विधाय पारणां पश्चात् पुत्रभृत्यसमन्वितैः । परिक्रमा महादेव्याः कर्तव्या क्षेत्रवासिभिः ।।१०।।
उपसर्गप्रशान्त्यर्थं निर्वाणपदवीच्छया । । हरिमन्दिरे पूजनीया कान्तिदेवी प्रयत्नतः ।।११।।
अत्यल्पमपि यद्दत्तमेकान्त्यां नृपसत्तम । अनन्तत्वाय जायेत परत्राप्यत्र तद् भुवि ।।१२।।
एकान्त्यास्तु तटे रम्ये दत्तमिष्टं हुतं स्तुतम् । येनापि श्रद्धया तस्य मोक्षप्राप्तौ न संशयः ।।१३।।
गुर्विणीभिः सुतनयो वन्ध्याभिर्गर्भसम्भवः । असौभाग्यवतीभिश्च सौभाग्यं महदाप्यते ।।१४।।
विधवाभिर्न वैधव्यं पुनर्जन्मान्तरे क्वचित् । सीमन्तिनीभिर्नारीभिः पुम्भिर्निर्वाणमिच्छुभिः ।।१५।।

नारद ने कहा—क्षेमनाथ से तीन सौ धनुष, पन्द्रह सौ हाथ की दूरी पर दक्षिण में विजयतीर्थ है ।१। पापपुञ्ज के नष्ट करने वाले इस विजय तीर्थ में स्नान करके हरिवर्य राजा ने विजय प्राप्त की । रण में, राजदरबार में, जुए में, विवाद में, सर्वत्र विजय दिलाने वाला यह तीर्थ है। यहाँ स्नान-दान का सौगुना फल हो जाता है ।२, ३, ४। अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, मन का मैल धुल जाने से शान्तचित्त हुए मुनिगण इस ऊर्ध्वरेता तीर्थ के सेवन से आज भी ब्रह्मलोक में स्थित हैं ।५, ६। ऊर्ध्वरेता के पूर्वभाग में एकान्ति तीर्थ है, यहाँ स्नान करके कान्ति देवी को नमस्कार करने से अपार सम्पत्ति मिलती है ।७। भादों के कृष्णपक्ष की तृतीया के दिन एकान्ति के तट पर उपवास, रात्रि जागरण करके प्रातः नौ या पांच कन्याओं का भोजन वस्त्राभूषणादि से पूजन करके अपने कुटुम्ब के साथ कान्ति देवी की परिक्रमा करनी चाहिए ।८, ९, १०। मोक्ष की इच्छा से विघ्न बाधाएँ हटाने के लिए सम्भल में कान्ति देवी की पूजा अवश्य करनी चाहिए ।११। एकान्ति के तट पर जो भी कुछ दान आदि पुण्यकर्म किये जाते हैं, वह अत्यन्त फलदायक होने से मोक्ष भी देते हैं ।१२, १३। एकान्ति तीर्थ का सेवन करने से गर्भवती स्त्रियाँ सुपुत्र को, वन्ध्य गर्भ को, भाग्यहीन सौभाग्य को प्राप्त करती हैं, विधवाओं को फिर जन्मान्तर में वैधव्य नहीं होता, सुहागिन स्त्रियाँ, मुमुक्षु,

एकान्त्यां सर्वदा स्नानं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छुभिः। अपि जन्मसहस्राणां क्षीयन्ते पापराशयः ॥१६॥
एकान्ते हि स्थिता कांन्तिस्तेनैकान्तिरुदाहृता। भोगमोक्षप्रदा देवी जलमध्यस्थिता सदा ॥१७॥
सा मया कथिता तुभ्यमेकान्त्याख्या मनोहरा। यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो याति परां गतिम् ॥१८॥
एकान्त्या उत्तरे कोणे ह्यवन्तीसर उत्तमम्। मथुरासदृशं प्रोक्तं सेवनान्मोक्षदं नृणाम् ॥१९॥
अत्रार्थे कथयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। कौशिक्यास्तु तटे कश्चिद् ब्रह्मदत्तो द्विजोऽभवत् ॥२०॥
तस्य पुत्रो महातेजा यज्ञदत्तेति विश्रुतः। कामासक्तोऽप्यनुदिनमर्थलोभेन संवृतः ॥२१॥
जगाम यौवनं तस्य जरा कर्णे समागता। चिन्तामवाप महतीं दृष्ट्वा तां दुःखदायिनीम् ॥२२॥
विललापातुरस्तत्र स्वकर्मभयसंवृतः। न मया तोषितो विष्णुः सर्वपापहरो हरिः ॥२३॥
सर्वकामप्रदो नृणां गणेशो नार्चितो मया। तमस्तोमहरः सूर्योऽप्यर्चितो न मया क्वचित् ॥२४॥
बहुपुष्पफलोपेताः सच्छायाः स्निग्धपल्लवाः। पथि नारोपिता वृक्षा इहामुत्र फलप्रदाः ॥२५॥
तुलसीवनशुश्रूषा न कृता पापनुत्तये। न मया तोषिता विप्रा मिष्टान्नैर्मधुरै रसैः ॥२६॥
नालंकृत्य सवत्सा गौः विप्राय प्रतिपादिता। न तिलाश्च घृतेनाक्ताः सुसमिद्धे हुताशने ॥२७॥
हुता वै मंत्रपूतास्तु सर्वपापापनुत्तये। गवाह्निकं च नो दत्तं गोकण्डूतिर्न वा कृता ॥२८॥
नोद्धृता पंकमग्ना गौर्गोलोकसुखदायिनी। किं क्षेत्रं किन्नु वा तीर्थं यन्मां तारयितुं क्षमम् ॥२९॥
श्रेयोहेतुं विनिश्चित्य यज्ञदत्तो मनीषया। यावत् स्वस्थोऽप्ययं देहो यावदिन्द्रियविक्रमः ३०॥
तावत् पापौघशमनीं तीर्थयात्रां करोम्यहम्। श्वः श्रेयसमियं सर्वं मदीयं साधयिष्यति ॥३१॥
शुभे तिथौ शुभे वारे यात्रामारब्धवान् द्विजः। कंचित् पन्थानमागम्य स मुनिस्तपसे स्थितः ।३२॥
हरिमन्दिरमासाद्य कृत्वा ब्राह्मणपूजनम्। तीर्थस्नानं प्रतिदिनं कुर्वन् संवत्सरावधि ॥३३॥

भोगों के इच्छुक—ये सभी यहाँ एकान्ति के तट पर कान्तिदेवी कृपा से अपने-अपने मनचीते फल प्राप्त करते हैं।१४, १५, १६। भोग और मोक्ष दोनों को देने वाली कान्ति देवी एकान्त में यहाँ जल के मध्य में सदा निवास करती है, इसलिए इस तीर्थ का नाम 'एकान्ति' है।१७। एकान्ति तीर्थ की यह सुन्दर कथा मैंने तुम्हें सुनायी, इसे सुनकर भी पापों से मुक्ति और परम गति प्राप्त होती है।१८। 'एकान्ति' के उत्तर में 'कवन्तीसर' तीर्थ है, मथुरापुरी के समान यह मोक्ष का दाता है।१९। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास सुनो। कौशिक नदी के तट पर एक ब्राह्मण रहता था, उसके पुत्र का नाम यज्ञदत्त था, वह विषय वासनाओं में फँसा हुआ था और लालची भी था।२०, २१। जवानी बीतने पर बुढ़ापा देखते ही उसे बहुत दुःख हुआ और सोचने लगा।२२। अपने कर्मों पर पछताता हुआ कहने लगा—कि हाय! मैंने कमी विष्णु, गणेश, सूर्य आदि देवताओं का आराधन नहीं किया, फलों-फूलों से लदे छायादार पेड़ भी मार्ग मैं कहीं नहीं लगाए, तुलसी की सेवा नहीं की, ब्राह्मणों को षड्रस भोजन भी नहीं कराये, न कभी गोदान किया, विधिपूर्वक हवन भी नहीं किया, गोग्रास का नियम भी पालन नहीं किया, गायों के खुजाने का और उन्हें कीचड़ में से निकालने का पुण्य भी मैंने नहीं कमाया, अब कौन क्षेत्र अथवा तीर्थ ऐसा है जो मेरा उद्धार कर सके।२३, २४, २५, २६, २७, १८, २९। यह सोचकर यज्ञदत्त ने निर्णय किया कि जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक इन्द्रियाँ अपना काम कर रही हैं, तब तक मुझे अपना कल्याण साधन कर लेना चाहिए, इसके लिए इस समय तीर्थयात्रा ही सरल उपाय है।३१, ३२। शुभमुहूर्त में उसने यात्रा आरम्भ की, कुछ चलकर सम्भल की महिमा

जानन्नेव गुणान् विप्रः क्षेत्रस्य स्य तथाविधान् । कान्तिदेवीं स एकान्त्यां सिषेवे तत्परायणः ॥३४॥
कान्तिमानभवत् सोऽपि नाकान्तिस्तत्र कश्चन । तत्रापि सन्तर्प्य पितृन् समं देवर्षिमानवैः ॥३५॥
अत्राप्लुता नरा यान्ति तद्विष्णो परमं पदम् । इति तेषु स तीर्थेषु पुनः सस्नावतन्द्रितः ॥३६॥
एकदा व्रतमातिष्ठन्नवन्तीसरसि स्थितः । यावत् स पारणां कर्तुमियेष द्विजसत्तमः ॥३७॥
तावच्छीतज्वराक्रान्तश्चकम्पेऽत्यर्थमातुरः । वैदेशिकस्तथैकाकी ज्वरवेगश्च दुःसहः ॥३८॥
चिन्तामवाप महतीं किमेतत् समुपस्थितम् । प्रतीकारमदृष्ट्वासावाशां तत्याज जीविते ॥३९॥
सांयात्रिक इवागाधे भिन्नपोतो महार्णवे । क्व क्षेत्रं क्व कलत्रं च क्व पुत्राः क्व च तद्वसु ॥४०॥
ज्वरोऽयं दारुणः प्राप्तो नास्त्युपायोऽस्य शान्तये । मृत्युर्मूर्ध्नि कृतावासो न मे दूरे व्यवस्थितः ॥४१॥
अथवा चिन्तया किं स्यादनया दुरवस्थया । रणे वा मरणे श्रेयस्तीर्थे वेति बुधोदितम् ॥४२॥
चर्मास्थिसञ्चयेनैतद्वपुषा किं प्रयोजनम् । प्राप्स्यामि निधनादत्र सिद्धिं नैःश्रेयसीं ध्रुवम् ॥४३॥
इति चिन्तयतस्तस्य पीडासीदतिदारुणा । कोटिवृश्चिकदाहस्य या व्यथा तामवाप सः ॥४४॥
दिनानि पञ्च सप्तेति स्थित्वा पञ्चत्वमागतः । तावद्वैकुण्ठभवनाद्विमानं समुपस्थितम् ॥४५॥
ताक्ष्यर्योपलक्षितश्चैवोच्छ्रित आसीन्महान् ध्वजः । अधिष्ठानं सुकन्यानां पीतकौशेयवाससाम् ॥४७॥
चामरव्यग्रहस्तानां सहस्राणां सुशोभनम् । पुण्यशील-सुशीलाभ्यां गणाभ्यां च विराजितम् ॥४८॥
तद्विमानमथारुह्य पीतवासाश्चतुर्भुजः । अलंचक्रे नभोवर्त्म स द्विजो दिव्यभूषणः ॥४९॥
एवं विष्णुगणैर्युक्तो यज्ञदत्तो द्विजोत्तमः । अवन्तीतीर्थकृपया प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥५०॥

को समझते हुए उसने सम्भल में आकर ब्राह्मणों का पूजन किया और एक वर्ष तक सम्भल के सभी तीर्थों में प्रतिदिन स्नान किया, फिर एकान्ति के तट पर कान्ति देवी की आराधना में तत्पर हो गया ।३३, ३४, ३५। कान्तिदेवी का कोई भी कृपापात्र कान्तिहीन नहीं रहता, इसलिए यह भी कान्तिमान् होकर विष्णु का धाम प्राप्त करने की इच्छा से फिर सम्भल के तीर्थों में स्नान करने लगा ।३६, ३७। एक बार अवन्ती सरोवर के तट पर व्रत का अनुष्ठान पूर्ण होने पर जैसे ही भोजन करने को उठा कि शीत ज्वर ने इसे आ घेरा, परदेश में अकेला बढ़ते हुए ज्वर के वेग में थर-थर काँपने लगा ।३८, ३९। बहुत सोचने पर भी जब इस कष्ट से बचने का कोई उपाय उसे न सूझा, तब उसने जीवन की आशा छोड़ दी ।४०। बीच समुद्र में जहाज के टूट जाने पर निराश हुए यात्री के समान वह यज्ञदत्त कुछ देर तक घर की, धन की, स्त्रियों की, पुत्रों की चिन्ता करता रहा, भयंकर ज्वर की शान्ति का कोई साधन न मिलने पर, मृत्यु को सिर पर आया हुआ समझकर धैर्य के साथ अब वह इस निश्चय पर पहुँचा ।४१, ४२। अथवा इस व्यर्थ चिन्ता से क्या ? पण्डितों का कहना है कि रण में या तीर्थ में मरना बहुत अच्छा है ।४३। हाड़-मांस का समूह यह शरीर है, इससे मुझे क्या लेना ? यहाँ मरने से अवश्य मेरा मोक्ष होगा ।४४। इस प्रकार सोचते हुए ही उसके शरीर में करोड़ विच्छुओं के काटने का कष्ट होने लगा ।४५। बारह दिन तक कष्ट भोगकर उसके मरते ही वैकुण्ठ से विमान आ गया ।४६। उस विमान के ध्वज में गरुड़ का चिह्न था, पीले वस्त्रों वाली सहस्रों कन्याएं उसमें चौंर लिए हुए बैठी थीं, पुण्यशील और सुशील नाम वाले दो विष्णुगण भी उसमें विराजमान थे, यज्ञदत्त भी पीले वस्त्र और दिव्य आभूषण धारण किए हुए चतुर्भुज होकर उस विमान में बैठकर आकाश को अलंकृत करता हुआ चल पड़ा ।४७, ४८, ४९। इस प्रकार वह यज्ञदत्त ब्राह्मण अवन्तीसरोवर तीर्थ की कृपा से विष्णु भगवान् के धाम को चला गया ।५०।हस्त नक्षत्र

अत्र तीर्थे नरा येऽपि कुर्वन्ति पितृतर्पणम् । अष्टम्यां हस्तयुक्तायां न तेषां दुर्लभं पदम् ॥५१॥
तृप्तास्तु पितरस्तस्य सदा तिष्ठन्ति निर्भयाः । अत्राप्लुता नरा यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५२॥
तीर्थाध्यायमिमं पुण्यं नरो नियतमानसः । श्रावयित्वा द्विजाँश्चापि श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥५३॥
क्षत्रियान् धर्मनिरतान् वैश्यान् सन्मार्गवर्तिनः । श्रावयेत नरो यस्तु स याति परमां गतिम् ॥५४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥

से युक्त अष्टमी में यहाँ पितरों का तर्पण करने वालों के लिए विष्णुलोक दुर्लभ नहीं है ।५१। यहाँ तृप्त हुए पितर सदा निर्भय रहते हैं । यहाँ स्नान करने वाले विष्णुलोक के यात्री वनते हैं ।५२। श्रद्धा भक्ति से युक्त होकर मन को एकाग्र किये हुए जो इस तीर्थाध्याय को सुनते-सुनाते हैं, उन्हें परमगति मिलती हैं ।५३, ५४।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का अष्टम अध्याय पूर्ण हुआ ।)

●

अथ नवमोऽध्याय:

ययातिरुवाच—

जीवितेश कथामेनां पुण्यां पुण्यात्मभिः श्रिताम् । न तृप्तिमधिगच्छामि श्रुत्वा त्वच्छ्रीमुखेरिताम् ।।१।।
सरस्यावन्तिके विप्रो यज्ञदत्ततो ममार यः । साक्षान्नासौ कथं मोक्षं प्राप्तवान् मुनिसत्तम ।।२।।

नारद उवाच—

साक्षान्मोक्षो भवेज्ज्ञानान्न कदाचन कर्मभिः । आन्वीक्षिकीं विना राजन् निर्वाणं नाधिगच्छति ।।३।।
भृशं भ्राम्यति भूतानि ब्रह्माण्डेष्वखिलेष्वपि । न शाम्यति विना ज्ञानं गतागतपरिश्रमः ।।४।।
यदन्यदपि ते चित्ते प्रष्टव्यं यदि विद्यते । निःसङ्कोचं तदाचक्ष्व प्रीत्या तत् प्रब्रुवामहे ।।५।।

ययातिरुवाच—

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पापक्षयकरं परम् । यस्य सन्दर्शनेनैव पापौघस्तरसा व्रजेत् ।।६।।

नारद उवाच—

श्रोतुरिच्छैव वक्तॄणां भवत्युत्साहवर्धिनी । ययाते ! शृण्वतस्तीर्थं कथ्यमानं मयाधुना ।।७।।
पापक्षयकरं पुण्यमैशान्यां दिशि वर्तते । धनुषां सप्ततिरितः परं धर्मह्रदो महान् ।।८।।
धर्मं एव द्रवीभावमापन्नोऽत्र दयावशः । स्नात्वा पापक्षये तीर्थे कृत्वा च पितृतर्पणम् ।।९।।
हरिमन्दिरमालोक्य न भूयो जन्मभाग्भवेद् । यावत्संख्यास्तिला दत्ताः पितृभ्यो जलतर्पणे ।।१०।।
पुण्ये पापक्षये तीर्थे तृप्तिः स्यात्तावदाब्दिकी । श्राद्धे निमंत्रिता विप्रा भुक्त्वा पश्चाद् गताः पुनः ।।११।।

राजा ययाति ने कहा—हे जीवितेश, हे प्राणेश्वर ! (नारद के लिए सम्बोधन) अथवा जीवितेश (नारायण) की इस कथा को आपके श्रीमुख से सुनकर मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ ।१। हे देवर्षे ! अवन्ती सरोवर में मरने पर यज्ञदत्त का तत्काल ही मोक्ष क्यों नहीं हुआ ? ।२। नारद ने कहा—हे राजन् ! तत्काल ही मोक्ष तो ज्ञान पर ही निर्भर है, कर्मों पर नहीं, अन्तःकरण को पवित्र करके ज्ञान के योग्य बना देना—कर्मों का काम है, सहायक होने से कर्मों को भी मोक्षदायक कह देते है, वेदान्त विद्या के बिना मोक्ष नहीं ।३। ब्रह्माण्ड में असंख्य प्राणियों के आवागमन का परिश्रम, ज्ञान के बिना किसी उपाय से शान्त नहीं होता है ।४। और भी जो कुछ पूछना चाहो, निःसंकोच पूछो, हम प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा समाधान करेंगे ।५। ययाति ने पूछा—हे भगवन् ! जिस तीर्थ के दर्शन से ही पाप पुञ्ज का क्षय होता हैं, ऐसे किसी तीर्थ का वर्णन कीजिए ।६। नारद ने कहा—हे राजन् ! श्रोता की इच्छा ही वक्ता के उत्साह को बढ़ाती है, अब आप ऐसे तीर्थ की कथा सुनिये ।७। अवन्ती सरोवर से ७० धनुष, २८० हाथ की दूरी पर ईशान कोण में धर्मह्रद तीर्थ हैं ।८। प्राणियों पर दया के वशीभूत होकर साक्षात् धर्म ही इस तीर्थ में जल बन कर बह रहे हैं पापों के नाश करने वाले इस तीर्थ में स्नान, तर्पण करके हरिमन्दिर का दर्शन करने पर फिर जन्म नहीं होता, तर्पण में तिलों की संख्या के अनुसार उतने ही वर्षों तक पितर तृप्त रहते हैं, श्राद्ध में निमंत्रित ब्राह्मण भी भोजन के बाद स्नान

तेषामपि च मोक्षः स्यात् स्नानाद् धर्मह्लदे नृप। पञ्चकूर्चेन पीतेन यात्राशुद्धिरुदाहृता ॥१२॥
सा शद्धिः श्रद्धया प्राप्या तोर्थे पापक्षये नृप !। भौमवारे चतुर्थ्यां चेत् स्नानं भाग्येन लभ्यते ॥१३॥
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्। तत्र संसाधिता विद्या षण्मासैः सिद्धिमाप्नुयात् ॥१४॥
पापक्षयात् प्रतीच्यां च तीर्थं सागरसंज्ञकम्। तत्र स्नातो भवेत्स्नातः सागरेषु चतुर्ष्वपि ॥१५॥
चत्वारि तत्र लिङ्गानि सगरस्थापितान्यपि। सन्तर्प्यात्र पितृन् देवान् याति ब्रह्म सनातनम् ॥१६॥
तस्माद् धनुः शतादर्वाक् कूपः पञ्चाग्निसंज्ञकः। देवो जनार्दनोऽत्रैव तोषितस्तृणबिन्दुना ॥१७॥
तं सर्वगमपि स्थातुमत्र कूपे स सर्वदा। ययाचे तत्पदाम्भोजे भक्ति चाव्यभिचारिणीम् ॥१८॥
इति तस्येप्सितं श्रुत्वा भगवान् मधुसूदनः। प्रीतः प्रोवाच राजर्षि लोककल्याणकामुकम् ॥१९॥
तृणबिन्दो ! मुनिश्रेष्ठ ! स्थास्याम्यहमिह ध्रुवम्। भक्तिर्मयि तवात्यन्तं सुदृढास्तु निरन्तरम् ॥२०॥
अत्राग्निपञ्चके स्नात्वा गत्वा देशान्तरेष्वपि। नरः पञ्चत्वमापन्नो मुक्तिमेष्यति नान्यथा ॥२१॥
येऽप्यग्निपञ्चके कूपे स्नास्यन्ति भुवि मानवाः। समर्चिष्यन्ति मां चापि तेषां संसारभीः कुतः ।२२।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः पीतवासाश्चतुर्भुजः। तृणबिन्दुस्तु राजर्षिः स्थितस्तत्राग्निपञ्चके ॥२३॥
कूपादस्माद् दक्षिणतः कूपश्चाशोकनामकः। मधावशोकाष्टम्यां यो जागर्यान्निशि मानवः ॥२४॥
स शोकं नैव लभते सदानन्दमयो भवेत्। एतदेव सदा प्राहुः सर्वे सर्वस्य पूर्वजाः ॥२५॥
कश्चिदस्मत्कुले जातोऽशोककूपजलाप्लुतः। भोजयेत् प्रयतो विप्रान् यतीन् पाशुपतानपि ॥१६॥
अशोकेऽत्र नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च हरिमन्दिरम्। वासयेद्धरिलोकेऽसौ कुलानामेकविंशतिम् ॥२७॥
तस्मादुत्तरतो राजँस्तीर्थं तु यमसंज्ञकम्। तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च हरिमन्दिरम् ॥२८॥

करके मुक्त हो जाते हैं, कुशोदक से अभिमंत्रित पञ्चगव्य पी लेने से निषिद्ध यात्रा करने वालों की शुद्धि हो जाती है ।९, १०. ११, १२। श्रद्धापूर्वक किये हुए कर्म पापों का नाश करने वाले है, चतुर्थी मंगलवार को यदि भाग्य से यहाँ स्नान मिल जाये तो सनातन ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग भी मिल जाय। छः महीने में यहाँ विद्या की साधना भी सिद्ध होती है। १३, १४। धर्मह्लद, पापक्षय तीर्थ से पश्चिम में सागर तीर्थ हैं, यहाँ स्नान करने से चारों समुद्रों के स्नान का फल मिलता है ।१५। सगर राजाने यहाँ चार शिवलिङ्गों की स्थापना की है; यहाँ देव, ऋषि, पितरों का तर्पण करने वाले ब्रह्मलोक में जाते है ।१६। सप्तसागर से सौ धनुष पीछे पञ्चाग्नि कूप है, यहाँ राजर्षि तृणविन्दु ने जनार्दन भगवान् को प्रसन्न किया था ।१७। सर्वव्यापक होते हुए भी उन्हें इस कूप में हमेशा रहने के लिए कहा और उनके चरणों में अपनी दृढ़ भक्ति माँगी ।१८। राजर्षि तृणविन्दु की इस लोकोपकार की भावना को जानकर भगवान् ने उनसे कहा ।१९। हे राजर्षे ! मैं इस कूप में अवश्य निवास करूँगा, मुझमें तुम्हारी भक्ति भी तिरन्तर बढ़ती ही रहेगी ।२०। पञ्चाग्नि कूप में स्नान करके परदेश में जाकर मरा हुआ भी मुक्त होगा इसमें कोई सन्देह नहीं ।२१। मृत्युलोक के सभी मानव इस पञ्चाग्नि कूप में स्नान करके जो मेरा पूजन करेंगे उन्हें संसार का क्या भय ।२२। यह कहकर विष्णु भगवान् तो अदृश्य हो गये और राजर्षि तृणविन्दु वहीं स्थिर रहे ।२३। पञ्चाग्नि कूप से दक्षिण में अशोक कूप हैं, चैत्र के शुक्लपक्ष की अशोकाष्टमी के दिन यहाँ रात्रि में जागरण करने वाला कभी शोकातुर नहीं होता, सदा आनन्दरूप रहता है, सभी मनुष्यों के सभी पूर्वज ऐसा ही कहते चले आ रहे हैं ।२४, २५। हमारे कुल में कोई ऐसा उत्पन्न हो जो अशोक कूप में स्नान करके ब्राह्मण, संन्यासी और शिवभक्तों को तृप्त करे ।२६। अशोक कूप में स्नान

यत्र कुत्र मृतो वापि न भूयस्तनयो भवेत् । यमतीर्थे शनियुतां षष्ठीं प्राप्याप्लुतो यदि ॥२९॥
म्रियमाणः स कुत्रापि लभते परमां गतिम् । यमतीर्थे महाराज ! श्राद्धं कृत्वा विधानतः ॥३०॥
अपि दुर्गतिमापन्नानुद्धरेत् सप्त पूर्वजान् । निमज्य मनसा तीर्थे क्षणं योऽवहितो भवेत् ॥३१॥
वैवस्वतस्य प्रतिमा पूजनीयाऽत्र यत्नतः । वाञ्छन्ति पितरः सर्वे यमतीर्थजलेऽमले ॥३२॥
दाता तिलोदकस्यात्र वंशे नः कोऽपि जायताम् । अन्यत्र कृत्वा पापानि सुबहूनि महान्त्यपि ॥३३॥
तत्क्षणाद्विलयं यान्ति यमतीर्थाभिषेचनात् । हरिमन्दिराच्चापशते वर्तते मणिकर्णिका ॥३४॥
पुरस्य दक्षिणे भागे विश्रुतेयं महोदकी । तस्यां या गतिरुत्कृष्टा तां निशामय सुव्रत ! ॥३५॥
त्रिशूलधारी तत्रास्ते जटी मुण्डी महेश्वरः । अन्तर्जलं महाराज ! पापराशिविधूननः ॥३६॥
माहिष्मत्यवहत् क्षीरं घृतमेव महोदकी । एनयोः संगमे स्नात्वा मोक्षमत्यन्तमश्नुते ॥३७॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च यान्यन्यानि महात्मनाम् ॥३८॥
तीर्थानि तानि सर्वाणि महोदक्यां वसन्ति हि । सर्वतीर्थेष्वतः स्नानाद्यत्पुण्यं तदिहाप्यते ॥३९॥
श्रद्धया विधिना स्नातो मृद्गोमयतिलादिभिः । स्वशाखोच्चारितैर्मन्त्रैर्दर्भापामार्गशोभितैः ॥४०॥
तिलबर्हिर्यवैः सम्यक् कृत्वा देवादितर्पणम् । जपन् देवान् समभ्यर्च्य सर्वयज्ञफलं भजेत् ॥४१॥
सर्वतीर्तेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् । महोदक्यां विधिस्नातैः श्रद्धया तदवाप्यते ॥४२॥
अश्रद्धयापि यः स्नातो माहिष्मत्यास्तु सङ्गमे । सोऽपि पुण्यमवाप्नोति स्वर्गप्राप्तिवरं परम् ॥४३॥
तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियः । यत्फलं लभते जन्तुस्तद्ददाति महोदकी ॥४४॥

करके हरिमन्दिर का दर्शन करने वाला २१ पीढ़ियों को विष्णुलोक में बसाता है ।२७। अशोक कूप से उत्तर में यमतीर्थ है, यहाँ स्नान करके हरिमन्दिर का दर्शन करने वाला कहीं भी मरकर फिर जन्म नहीं लेता । शनिवार युक्त षष्ठी तिथि में स्नान करके कहीं भी मरने पर परमगति प्राप्त होती है । यहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करके क्षण भर के लिए भी यदि मन एकाग्र हो तो अपनी सात पीढ़ियों तो तार दे ।२८, २९, ३०, ३१। प्रयत्न करके भी यहाँ यमराज की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए, स्वर्ग में रहने वाले पितर भी यह इच्छा किया करते हैं कि हमारे वंश में कोई ऐसा उत्पन्न हो जो यमतीर्थ में स्नान करके तिलोदक से तर्पण करे, बड़े और बहुत पाप भी यहाँ स्नान करने से नष्ट हो जाते हैं । यहाँ से सौ धनुष पर मणिकर्णिका तीर्थ है ।३२, ३३, ३४। सम्भल के दक्षिण भाग में यह मणिकर्णिका महोदकी नाम से भी प्रसिद्ध है । वर्तमानकाल ने मनःकामना (मनोकामना) नाम से ही प्रसिद्धि है ।३५। पापपुञ्ज का विनाश करने वाले भगवान् शङ्कर इसके जल में निवास करते हैं । इन्हें यहाँ धूर्जटि नाम से भी कहा गया है ।३६। माहिष्मती में दूध और महोदकी में घी बहा करता था, इन दोनों के संगम में स्नान करने से मोक्ष मिलता है ।३७। पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा आदि नदियाँ और भी त्रिलोकी के तीर्थ महोदकी में रहते हैं, इसलिए महोदकी में स्नान कर लेने से सब तीर्थों का फल मिल जाता है ।३८, ३९। मृत्तिका, गोमय, कुश, अपामार्ग, तिल से अपनी शाखा के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए स्नान करें । तिल, जौ, चावल, कुश, लेकर देवऋषि और पितरों का तर्पण करके जप और देवपूजन करने से सम्पूर्ण यज्ञों का फल मिलता है ।४०, ४१। सब तीर्थों में सब प्रकार के दानो का फल भी महोदकी में विधिपूर्वक और श्रद्धापूर्वक स्नान कर लेने से मिल जाता है ।४२। माहिष्मती ओर महोदकी के संगम तो विना श्रद्धा के भी स्नान कर लेने से स्वर्ग प्राप्त होता है ।४३। इन्द्रियों को संयम में रखकर बहुत समय तक तप करने का फल

एकामप्याहुतिं दत्वा महोदक्यास्तटे बुधः। लभते जीवितं यावदग्निहोत्रविधेः फलम् ॥४५॥
एकावृत्यापि गायत्रीं महोदक्यास्तटे जपन्। लभतेऽयुतगायत्रीजपस्य फलमद्भुतम् ॥४६॥
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्मर्त्यस्य निश्चितः। तस्मात् सर्वेषु कालेषु सेवनीया महोदकी ॥४७॥
प्राप्ते तु मरणे पुसां पुनर्जन्म न विद्यते। अपुनर्भवभूरेषा सदा सेव्या महोदकी ॥४८॥

ययातिरुवाच—

महोदकीति प्रथिता कस्मात् सा मणिर्कणिका। बोद्धुमेतद्धि देवर्षे ! महत् कौतूहलं मम ॥४९॥

नारद उवाच—

निशामय महाबाहो ! महत्कौतूहलं यदि। सोमवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः ॥५०॥
पुरुजेतेति नाम्नासौ तपसे कृतनिश्चयः। अनपत्योऽतिमेधावी महोदक्यां समागतः ॥५१॥
आरिराधयिषुर्देवं शिवं कान्तं जगद्गुरुम्। यस्यैषा सा परामूर्तिर्मध्येतोयं व्यवस्थिता ॥५२॥
आनन्दामृतरूपाख्यां शुद्धधर्मस्वरूपिणीम्। तामेव जगतां धात्रीमारिराधयिषन्नृपः ॥५३॥
निराहारः स्थितस्तत्र शिवाराधनपत्परः। जपन् मंत्रानहरहर्ध्यानस्तिमितलोचनः ॥५४॥
तपांसि नानारूपाणि व्रतानि विविधानि च। रोमोद्गमो यच्छ्रवणात् कातरा अथ कातराः ॥५५॥
ततो देवा भयत्रस्ताश्चकम्पे च वसुन्धरा। रोदसीमण्डले व्याप्तं तेजस्तस्य महात्मनः ॥५६॥
पत्न्या सार्धं महाराज ! तपश्चक्रेऽतिदारुणम्। वर्षाष्टकस्तदा देवो बालेन्दुतिलकः शिवः ॥५७॥
सर्वो विश्वपतिः श्रीमान् विश्वेशो विश्वभावनः। महोदक्यामाविरासीत् कृपया भगवान् हरः।५८॥
उवाच सुप्रसन्नात्मा ज्योतीरूपो महेश्वरः। वरं वृणु महाबुद्धे ! बुद्ध्या निश्चित्य सत्वरम् ॥६९॥
तवानेनाततपसा तीर्थसंसेवनेन च। प्रसन्नोऽस्मि महासौम्य ! नादेयं तव विद्यते ॥६०॥

भी महोदकी दे देती है।४४। महोदकी के तट पर एक आहुति के देने से भी जीवन पर्यन्त किये गये अग्निहोत्र का फल मिलता है।४५। महोदकी के तट पर एक बार भी गायत्री का जप करने से १०००० गायत्री जप का फल मिलता है।४६। मरणधर्मा मनुष्य की मृत्यु आज अथवा सौ साल के बाद भी निश्चित हैं, इसलिए महोदकी को छोड़कर कभी कहीं नहीं जाना चाहिए।४७। यहाँ मरने पर पुनर्जन्म नहीं होता, यह महोदकी मोक्षपद की जन्मभूमि है, मुमुक्षुओं को इसका सदा सेवन करना चाहिए।४८। ययाति ने पूछा— हे देवर्षे ! महोदकी नाम से प्रसिद्ध इस तीर्थ की मणिर्कणिका नाम से प्रसिद्धि क्यों हुई ? मुझे इस बात के जानने की बहुत उत्कण्ठा है।४९। नारद ने उत्तर दिया— हे महाबाहो ! यदि इतने उत्कण्ठित हो तो सुनो, चन्द्रवंश का एक राजा परम धर्मात्मा और तेजस्वी था ५०। सन्तानहीन होने के कारण वह 'पुरुजेता' नाम वाला राजा तप करने का निश्चय लेकर यहाँ महोदकी के तट पर आया।५१। इस महोदकी के जल में शङ्कर भगवान् सदा निवास करते हैं, इसलिए यहीं पर आराधना करने की उसकी इच्छा हुई।५२। आनन्द और अमृतरूप वाली जगत् की अधिष्ठात्री शुद्धधर्मस्वरूपा शिव शक्ति के आराधन की भी उसने इच्छा की।५३। उस राजा ने ऐसे व्रत और तप किये कि सुनने वालों को भी रोमाञ्च हो जाये और काँप उठें। उसने खाना-पीना छोड़ दिया था, शिव और पार्वती के ध्यान में तत्पर होकर नेत्र बन्द किये हुए जप करता रहता था।५४, ५५। देवता डर गये, पृथ्वी हिल उठी, भूगोल-खगोल दोनों ही उस महात्मा के तेज से भर गये।५६। अपनी धर्मपत्नी के साथ राजर्षि के ऐसे तप को देखकर दया के वश में हुए चन्द्रशेखर भगवान् शङ्कर आठ वर्ष के बालक के रूप में प्रकट हुए।५७, ५८। शिव ने प्रसन्न होकर राजा से वर माँगने को कहा।५९। तुम्हारा तप और तीर्थसेवा देखकर

इति श्रुत्वा वचः सोऽथ मेघगम्भीरनिस्वनम् । उन्मील्य लोचने राजा पुरः पश्यति शूलिनम् ।।६१।।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सपत्नीको महामनाः । तुष्टाव गिरिजाकान्तं सूक्तैः श्रुतिसमुद्भवैः ।।६२।।
नमोऽस्तु ते ब्रह्मविदां वराय सदाशिवायाम्बरसंस्थिताय ।
हिरण्यवर्णाय हिरण्यबाहवे नमो हिरण्याय हिण्यरेतसे ।।६३।।
तपःस्वरूपाय तपोधनाय तपः फलानां प्रतिपादनाय ।
नमोऽस्तु तुभ्यं सुशरीरधारिणे प्रभातसूर्यारुणदन्तपंक्तये ।।६४।।
नमोऽस्तु ते जन्मजरान्तकाय त्रिशूलहस्ताय महाविभूतये ।
कृपाकरायाखिलकार्यकारणप्रणालिकादूरतराय तुभ्यम् ।।६५।।
नमः सर्वार्तिनाशाय प्रणतानां शिवात्मने । सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं ज्ञानगम्याय ते नमः ।।६६।।
फलदात्रे च तपसां तपोरूपाय ते नमः । महादेव ! नमस्तुभ्यं देवदेव ! नमोऽस्तु ते ।।६७।।
स्तुतिं कर्तुं न जानामि भक्तप्रिय ! नमोऽस्तु ते । तव पादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वा भक्तिरस्तु मे ।।६८।।
अयमेव वरो नान्यः प्रसन्नोऽसि यदीश्वर ! । देहि मे पुत्रममलं वंशकर्तारमद्भुतम् ।।६९।।
इत्थं परिष्टूय नृपोत्तमः पुनः पुनर्नमोऽस्त्वेव च भाषमाणः ।
द्विस्त्रिः प्रणम्याथ पुरो विवेश जलस्थितस्यैवमुमापते सः ।।७०।।
उवाच नम्रं राजर्षि शिवो मधुरया गिरा ।।७१।।
ब्रवीमि त्वां नृपवर ! द्विजोऽभूत् पूर्वजन्मनि । माथुरः शिवशर्माख्यो मायापुर्यां भवान् मृतः ।।७२।।
तेन पुण्येन वैकुण्ठे भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् । तत्पुण्यशेषात् क्षितिपो जातस्त्वमिह भूतले ।।७३।।

मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मेरे पास तुम्हें न देने योग्य कुछ नहीं है ।६०। मेघ के समान इस गम्भीर वाणी को सुनकर राजा ने नेत्र खोलकर अपने सम्मुख भगवान् शङ्कर को देखा ।६१। धर्मपत्नी सहित राजा ने पृथ्वी पर गिरकर प्रणाम किया और वेदमन्त्रों से स्तुति करने लगा ।६२। हे देवदेव ! महादेव ! तप की शक्ति देने वाले भी आप हैं और तप का फल देने वाले भी आप हैं । त्रिशूल हाथ में लेकर आप आध्यात्मिक,आधिदैविक और आधिभौतिक तापों के शमन करने की सूचना दे रहे हैं, जीवों के जन्म जरा मरण का आत्यन्तिक अन्त भी आपके ही हाथ में हैं, आपके सुन्दर शरीर की चमक-दमक की उपमा के लिए वेदों को भी अग्नितत्त्व सुवर्ण ही उपमान मिला । किन्तु वह भौतिक सुवर्ण आपके चिन्मय श्रीविग्रह का उपमान कैसे हो सकता है । इसलिए वेदों ने भी 'नेति नेति' कहकर आपकी महिमा का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी । कार्यकारण की पद्धति ही तर्क का आधार है, किन्तु वह पद्धति तो आपके स्वरूप का स्पर्श ही नहीं कर सकती, इसलिए वेदों ने आपको तर्कागम्य कहा है । ऐसी परिस्थिति में जीव का उद्धार आपकी कृपा पर ही निर्भर है, मैं आपकी क्या स्तुति कर सकता हूँ । मैं आपके चरणों की भक्ति के सिवाय और कुछ नहीं चाहता, फिर भी यदि आप और भी प्रसन्न हैं तो वंश चलाने-वाला एक सत्पुत्र भी दे दीजिए ।६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९। इस प्रकार स्तुति करके वह राजा प्रणाम करता हुआ जल में गिर पड़ा ।७०। तब शिव ने नम्र राजर्षि से मधुरवाणी में कहा ।७१। हे राजन् ! आप पूर्वजन्म में मथुरापुरी के शिवशर्मा ब्राह्मण थे, मायापुरी से आपकी मृत्यु हुई ।७२। उस पुण्य से वैकुण्ठ के सुख भोगकर शेष पुण्यों का फल भोगने के लिए अब आप

कालेन बहुनैतेन तेनैव सुकृतेन च। मुक्तिग्राममितः प्राप्तस्तपसश्च फलं श्रृणु ॥७४॥
वंशवृद्धिकरः पुत्रः पुण्यवान् गुणवान् सुधीः। मत्प्रसादात्तव गृहे भविष्यति न संशयः ॥७५॥
अन्यच्च श्रृणु राजेन्द्र ! प्रसादात् त्वाम् ब्रवीम्यहम्। अनादिसिद्धा पृथ्वीव शोभते मणिकर्णिका ।७६।
शम्भ्वालयाख्यो ग्रामोऽयं काशीवत् स्थापितो मया। त्रिशूले धारिता काशी त्रिकोणा त्रिजगन्मयी ७७
कदाचित् पार्वतीकर्णाभरणं मणिकर्णिका। स्रस्तेति तामिहान्वेष्टुमायातोऽहं तदीप्सया ॥७८॥
विष्णोर्भगवतः कल्केर्जन्मभूमिरियं तथा। मत्प्रियाभूषणप्राप्तिस्थानमित्यपरो गुणः ॥७९॥
ततोऽहमत्र न्यवसम् काश्यामप्यहमास्थितः। ज्योतिर्लिङ्गेष्वपि तथा कलाभिर्मे विभोः स्थितिः ।८०॥
कृच्छ्रैस्तपोभिर्द्रष्टुं मां त्वयाप्यत्राहमादृतः। प्रकटश्चाहमत्रेति विख्याता स्यान्महोदकी ॥८१॥
दर्शनात् स्पर्शनादस्याः पूजनाच्छ्रवणादपि। स्नानाच्च सततं भक्त्या सर्वं प्राप्नोति वाञ्छितम् ।८२॥
इन्द्राद्या लोकपालाश्च मरीच्याद्या महर्षयः। माध्याह्निकीं क्रियां कर्तुमायान्ति मणिकर्णिकाम्।७३॥
पुण्येनोपार्जितं द्रव्यमत्यल्पमपि चेदिह। श्रद्धया दत्तमेतत् स्याच्छतकोटिफलप्रदम् ॥८४॥
न कुष्ठं न च विस्फोटो न शूलं न प्रवाहिका। न मूत्रकृच्छ्राद्येतस्याः पानीयस्यापि सेवनात् ॥८५॥
फाल्गुनस्यासिते पक्षे चतुर्दश्यां नृपोत्तम !। स्नातव्यं विधिवत्सर्वैर्मम प्रीतिकरैर्नृभिः ॥८६॥
जलस्थं मत्स्वरूपं च द्रष्टव्यं सिद्धिकामुकैः। का सिद्धिरनवाप्ता स्यात्तत्स्वरूपावलोकनात् ॥८७॥
इत्युक्त्वा तं महीपालं सस्नेहं श्लक्ष्णया गिरा। आनन्दरूपो भगवाँस्तस्यामेव लयं ययौ ॥८८॥
सोऽपि राजा महाभाग ! पत्न्या सार्धं गृहं ययौ। भौमानि भुक्त्वा सौख्यानि पुत्रमुत्पाद्य सुन्दरम् ॥८९॥

इस भूलोक में राजा बने हो ।७३। उसी शेष पुण्य के प्रभाव से इस मुक्तिक्षेत्र सम्भल में आकर जो तुमने तप किया है, उसका फल सुनो ।७४। मेरी कृपा से तुम्हें वंशवृद्धि करने वाले पुण्यात्मा पुत्र की प्राप्ति होगी ।७५। हे राजेन्द्र ! मेरी कृपा से अव तुम इतना और भी समझो कि यह मणिकर्णिका पृथ्वी के समान अनादि सिद्ध है ।७६। काशी के समान ही यह सम्भल ग्राम मेरा बसाया हुआ है, त्रिलोकी को अपने स्वरूप में समा लेने वाली त्रिकोणा काशी मेरे त्रिशूल पर बसायी हुई प्रसिद्ध है ।७७। किसी समय पार्वती के कानों का आभूषण मणिकर्णिका कहीं गिर गया, मैं उसका अन्वेषण करने के लिए यहाँ आया ।७८। कल्कि विष्णु भगवान् की यह जन्मभूमि है, और मेरी प्रियतमा पार्वती के कानों के आभूषण मणिकर्णिका की प्राप्ति का स्थान है ।७९। तूने भी मेरे दर्शनों के लिए यहीं घोर तपस्या की है। प्रकट भी मैं जल में हुआ हूँ इसलिए महोदकी भी इसे कहेंगे ।८०, ८१। इस महोदकी के दर्शनों, स्पर्श, पूजन तथा निरन्तर भक्ति पूर्वक स्नान से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं ।८२। इन्द्र आदि लोकपाल, मरीचि आदि महर्षि इस मणिकर्णिका पर मध्याह्न की सन्ध्या के लिए आते हैं ।८३। शुद्ध कमाया हुआ थोड़ा भी धन यहाँ श्रद्धापूर्वक दान करने से अक्षत फल देता है ।८४। कोढ़, फोड़े, संग्रहणी तथा मूत्र कृच्छ्र आदि कोई भी रोग इस महोदकी का जल सेवन करने से नही रहता ।८५। फाल्गुन कृष्णपक्ष चतुर्दशी, शिवरात्रि के दिन मेरे भक्तों को यहाँ विधिवत् स्नान करना चाहिए ।८६। सिद्धि की इच्छा करने वालों को जल में स्थित मेरे इस स्वरूप का दर्शन करना चाहिए। इस स्वरूप का दर्शन क्या नहीं देता ।८७। इस प्रकार स्नेह भरी वाणी में उस राजा से यह सब कुछ कहकर महोदकी के जल में ही भगवान् अदृश्य हो गये ।८८। वह राजा भी अपनी पत्नी के साथ घर जाकर राज्य सुख भोगते हुए सुन्दर

तस्मिन् राज्यं विनिक्षिप्य पुनः प्रायान्महोदकीम् । महादेवं समाराध्य निर्वाणं पदमाप्तवान् ॥९०॥
एतत्पुण्यतमाख्यानं राज्ञः पुरुजितो नृप ! । श्रुत्वा पापविनिर्मुक्तो ज्ञानं परममृच्छति ॥९१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥

पुत्र को जन्म देकर राज्यभार भी उस पर सौंपकर फिर महोदकी पर ही आकर महादेव की कृपा से मोक्ष को प्राप्त हुआ ।८९, ९०। राजा पुरुजित् की इस कथा को सुनकर पापों का क्षय हो जाने से परम ज्ञान की प्राप्ति होती है ।९१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का नवम अध्याय पूर्ण हुआ ।)

अथ दशमोऽध्यायः

नारद उवाच—

श्रृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । यामाकर्ण्य नरो भूयाद् विरजा ज्ञानभाजनम् ॥१॥
इहैत्र मारितो देव्या दुर्गया महिषासुरः । पादेनाक्रम्य कण्ठेऽसौ यदैवापीडितस्तदा ॥२॥
निःश्वासरन्ध्रात्तस्यैवं निपेतुर्जलविन्दवः । तेभ्यः सकाशान्निर्याता नदी माहिष्मती त्वियम् ॥३॥
महारुधिरधाराभिस्तदा तीव्रा प्रवर्तिता । तस्मिन्निपतिते लोककण्टके महिषासुरे ॥४॥
देवदुन्दुभयो नेदुः प्रहृष्टा दिवि देवताः । पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः प्राप्ता यत्राम्बिका स्थिता ॥५॥
तुष्टुवुश्च महादेवीं दण्डवत् पतिता भुवि । हंसयांने ! नमस्तुभ्यं नमः सृष्टिविधायिनि ! ॥६॥
सर्वरूपा त्वमीशानि ! त्वमरूपासि सर्वगे ! त्वं चिच्छक्तिर्महामाया त्वं स्वाहा त्वं स्वधा सुधा ॥७॥
शङ्खिनी गजवक्त्रा त्वं महिषघ्नी रणप्रिया । वर्तुला जृम्भिणी क्लिन्ना अश्वारूढा सुरेश्वरी ॥८॥
मातस्त्वयाद्य विनिहत्य महासुरेन्द्रम् दुष्टस्वसैनिकविनिर्जितदेवसेनम् ।
त्राताः स्म इत्यविरतं हृदि भावयन्तस्त्वत्तः परः क इह यं शरणं व्रजामः ॥९॥
ततस्तुष्टा जगन्माता तानाह त्रिदशेश्वरान् । अस्या यः स्रोतसि स्नानं करिष्यति नरोत्तमः ॥१०॥
तस्योदरगता पीडा न काचन भविष्यति । बाला पद्मा शिवा शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रिया परा ।११॥
माहिष्मत्याः सन्निधौ मे तिष्ठन्त्येता विभूतयः ॥१२॥
एतास्तु शक्त्यः सर्वाः सर्वदा सहिताः सदा । रक्षां करिष्यमाणाः स्युर्मद्भक्तानां मदाज्ञया ॥१३॥

नारद ने कहा—हे राजन् ! पापनाशिनी एक और भी कथा सुनो, जिसे सुनकर निर्मल हुआ मनुष्य ज्ञान का पात्र होता है ।१। दुर्गा देवी ने महिषासुर को यहीं मारा है, पैर से गले को दबाते समय पीड़ित होने से आँखों और उसकी नाक का पानी ही इस नदी के रूप में वह चला है ।२, ३। उसके रुधिर की धाराओं से माहिष्मती और बढ़ गयी । महिषासुर के मरने पर देवताओं की दुन्दुभियाँ बज उठीं, फूल बरसाते हुए देवता भी देवी के समीप आकर उपस्थित हुए ।४, ५। देवी के चरणों में गिरकर स्तुति करने लगे; हे हंसवाहने ! रूपरहित भी आप अपनी बनायी सृष्टि के सर्व रूपों में स्वयं ही हैं, चेतना, शक्ति, स्वाहा, स्वधा, सुधा, शंखिनी, गजमुखी. गणेश की शक्ति, महिषहन्त्री, रणप्रिया, भूगोल-खगोल का विस्तार करने वाली, दयार्द्र, अश्वारूढा, कल्कि, विष्णु भगवान् की शक्ति आप ही हम सब देवताओं की ईश्वरी हैं । देवसेना को जीतने वाले इस दुष्ट महिषासुर को मारकर आपने हमारी रक्षा की है, शरणागतवत्सल आपकी शरण में हम शरणार्थी आये हैं ।६, ७, ८, ९। माता ने तब प्रसन्न होकर देवताओं से कहा कि इस माहिष्मती के जल में जो स्नान करेगा, उसको उदर सम्बन्धी कोई विकार नहीं होगा । बाला, पद्मा आदि मेरी विभूतियाँ इस नदी की सन्निधि में रहेंगी ।१०, ११, १२। ये सभी शक्तियाँ हर समय और हर जगह मेरी

यः स्नास्यत्यत्र यत्नेन नवम्यां बुधवासरे। तस्यापदां सहस्राणि नाशयिष्यामि देवताः ॥१४॥
इति दत्वा वरान् देवी तत्रैवान्तरधात् पुनः। तेऽपि स्वर्गौकसः सर्वे स्वं स्वं स्थानं ययुर्मुदा ॥१५॥
दक्षिणा हि महादेव्यास्तीर्थमस्त्यृणमोचनम्। त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवः स्वः स्थितान्यपि ।१६।
तेभ्योऽखिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः श्रेष्ठमेतत् सनातनम्। ऋणत्रयात् प्रमुच्येत यत्र स्नातो नरोत्तमः ॥१७॥
सम्पर्कादस्य तीर्थस्य फलं स्यादश्वमेधजम्। ऋणमोचननाम्न्यस्मिँस्तीर्थे स्नातः शुचिः पुमान् ।१८॥
सम्यक् मलमवाप्नोति श्राद्धतर्पणकर्मणाम्। गुरुपुष्यसिताष्टम्यां व्यतीपातो यदा भवेत् ॥१९॥
श्राद्धकृल्लभते तर्हि कोटिगोदानजं फलम्। मोदन्ते पितरस्तस्य यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२०॥
ये केचन मृता वंशे ऋणग्रस्ताः पितामहाः। ते यान्ति परमं स्थानं पिण्डनिर्वपणे कृते ॥२१॥
ऋणमोचनतः पूर्वे धनुषां नवतिः परम्। सर्वाघौघप्रशमनं तीर्थं वै पापमोचनम् ॥२२॥
एकादश्यामुपोष्यात्र प्राश्याम्बु चुलुकत्रयम्। स्नानं कृत्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥२३॥
पापपुञ्जविनिर्मुक्तो मोचयेन्निजपूर्वजान्। कुतो बिभेति पापेभ्यो हरिमन्दिरसेवकः ॥२४॥
पापमोचनमासाद्य कृत्वा पापशतान्यपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यः श्रद्धावान् हरिमन्दिरे ॥२५॥
भीरुतामत्र सम्प्राप्ता यमदूताः सुदारुणाः। दूरतोऽपि पलायन्ते हरिमन्दिरदर्शनात् ॥२६॥
मार्गशीर्षसिताष्टम्यां पापमोचनसन्निधौ। उपोष्य जागरं कुर्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७॥
यत्किंचिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धितः। सर्वं तद्विलयं याति पापमोचनसेवनात् ॥२८॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां रविभूमिजवासरे। स्नानमात्रेण तीर्थेऽस्मिन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२९॥
पापमोचनके तीर्थे यः पापं कुरुते नरः। स दुर्गतिमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३०॥
पापमोचनपार्श्वे च तीर्थं कालोदकं स्मृतम्। कलयन् भगवान् कालो यत्र कल्मषनाशनः ॥३१॥

आज्ञा से मेरे भक्तों की रक्षा किया करेंगी ।१३। बुधवार युक्त नवमी में यहाँ स्नान करने वालों की हजारों विपत्तियों के विनाश का उत्तरदायित्व मुझ पर ही है ।१४। यह वरदान देकर देवी अदृश्य हो गयीं और देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये ।१५। महोदकी से दक्षिण में सभी तीर्थों में श्रेष्ठ ऋणमोचन तीर्थ है; यह सनातन है; यहाँ स्नान करने वाले देवता, ऋषि और पितर इन तीनों के ऋण से मुक्त होते हैं ।१६, १७। इस तीर्थ के स्पर्श से भी अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है, गुरुवार पुष्यनक्षत्र, व्यतीपात योग शुक्लपक्ष अष्टमी के दिन पिण्ड देने से प्रलयकालपर्यन्त पितरों की तृप्ति होती है और श्राद्धकर्ता को कोटि गोदान का फल मिलता है ।१८, १९, २०। जो पूर्वज ऋण चुकाए बिना मर गये हैं, उन्हें यहाँ पिण्ड दे देने से मुक्ति मिल जाती है ।२१। ऋणमोचन से पूर्व में ९० धनुष आगे पापमोचन तीर्थ है। एकादशी के दिन व्रत रखकर स्नान आचमन और तर्पण करने वाला पापों से मुक्त होकर पूर्वजों को भी मुक्त करता है ।२३-२४। हरिमन्दिर, सम्भल में श्रद्धा रखने वाला सैंकड़ों पाप करके भी पापमोचन तीर्थ पर आकर सब पापों से मुक्त होता है ।२५। हरिमन्दिर को दूर से ही देखकर यमदूत भयभीत होकर भाग उठते हैं ।२६। अगहन शुक्ल अष्टमी को पापमोचन तीर्थ पर व्रत और रात्रि जागरण से महापाप भी छूट जाते हैं ।२७। मनुष्य बुद्धि से जो न चाहते हुए भी पाप बन पड़ते हैं, वे सब पापमोचन तीर्थ की सेवा से नष्ट हो जाते हैं ।२८। अष्टमी को रवि-चतुर्दशी को मंगलवार अथवा दोनों तिथियों में कोई भी वार हो तो यहाँ स्नान मात्र से सभी पाप नष्ट होते हैं ।२९। इस तीर्थ पर आकर पाप करने वालों की प्रलयकाल तक दुर्गति ही होती रहती है ।३०।

तत्र स्नानं च दानं च कृत्वा तर्पणमादृतः । विलोक्य कालप्रतिमां नरकादुद्धरेत् पितृन् ॥३२॥
अष्टौ प्रदक्षिणाः कृत्वा प्रत्यहं स्नाति यो नरः । लिप्यते न ह्यसौ पापैर्मनोवाक्कायसम्भवैः ॥३३॥
तत्र चामलकीवृक्षपरिधौ कालमन्दिरम् । स्नात्वा नमति यस्तस्य सर्वपापक्षयो भवेत् ॥३४॥
कालोदकात् पूर्वतस्तु वर्तते सोमतीर्थकम् । तत्र सोमः स्वयं साक्षान्महापातकनाशनः ॥३५॥
कुह्वां सोमेन युक्तायां स्नानं यः कुरुते नरः । सोमतीर्थे भवेत्तस्य कुष्ठाद्यामयनाशनम् ॥३६॥
अपत्यहीनः पुरुषः स्नानं कृत्वात्र सोमके । अब्दमात्रे न सन्देहः पुत्रवान् जायते हि सः ॥३७॥
पूर्वभागेऽस्य तीर्थस्य मूर्तिः सोमस्य शोभते । तस्याः सम्पूजनान्मर्त्यो विज्वरो भवति क्षणात् ॥३८॥
रौरवादिषु ये केचित् पितरः कोटिशोऽपि चेत् । तत्र श्राद्धे कृते पुत्रैः पितृलोकं प्रयान्ति ते ॥३९॥
कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः स्नात्वास्मिन् सोमतीर्थके ॥४०॥
स्वातिनक्षत्रसंयुक्ता कुहूरूर्जस्य या भवेत् । एष पुण्यतमः कालो वाजपेयफलप्रदः ॥४१॥
प्रातः सोमकुहूयोगे स्नात्वा चन्द्रोदवारिणा । उपास्य सन्ध्यां विधिवत् कृत्वा सर्वोदकक्रियाः ॥४२॥
आवाहनार्घ्यरहितान् पिण्डान् दद्यात् प्रयत्नतः । वसुरुद्रादित्यसंज्ञान् पितृन् ध्यात्वा पितृप्रियः ।४३॥
गयायां पिण्डदानेन तथा तुष्यन्ति पूर्वजाः । तथा चन्द्रोदतीर्थेऽस्मिन् श्राद्धैस्तृप्यन्ति पूर्वजाः ॥४४॥
यथा गयायां मुक्तः स्यादृणात् पितृकृतान्नरः । तथैवात्रापि मुक्तः स्याच्चन्द्रोदे पिण्डदानतः ॥४५॥
कलौ सोमस्य महिमा प्रच्छन्नोऽपि भविष्यति । तस्य दक्षिणकोणे तु गोतीर्थं नृप ! वर्तते ॥४६॥
तद्दर्शनात् भवेत्सद्यो गोदानजनितं फलम् । स्नात्वा तत्र ह्रदे मर्त्यो गयां कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥४७॥

पापमोचन के पास ही कालोदक तीर्थ है, यहाँ भगवान् काल क्रियाओं का आधार होकर उनमें पापांशों का नाश कर रहे हैं ।३१। यहाँ स्नान, दान और तर्पण करके काल भगवान् की मूर्ति का दर्शन करने वाला नरक में पड़े हुए पितरों को भी नरक से निकाल लेता है ।५२। आठ परिक्रमा लगाकर प्रतिदिन यहाँ स्नान करने वालों को मन-वाणी और शरीर के पाप नहीं लगते ।३३। आँवला-वृक्षों के घेरे में वहाँ कालमन्दिर को नमस्कार करने वाले के सब पाप नष्ट होते हैं ।३४। कालोदक से पूर्व में सोमतीर्थ है, यहाँ भगवान् सोम स्वयं ही महापापों का नाश करने वाले हैं ।३५। सोमवती अमावस्या को यहाँ स्नान करने वालों के कुष्ठ आदि रोगों का विनाश होता हैं, सन्तानहीन को वर्ष के अन्दर ही पुत्र मिल जाता हैं, इस तीर्थ के पूर्व भाग में चन्द्रमा की मूर्ति है, इसकी पूजा और परिक्रमा करने से करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, यहाँ श्राद्ध करने से नरकों में पड़े हुए पितरों का भी उद्धार हो जाता है ।३६, ३७, ३८, ३९। यहाँ स्नान मात्र कर लेने से भी एक हजार कपिला गौओं के दान का फल मिलता है ।४०। स्वाती नक्षत्र से युक्त कार्तिक की अमावस्या का दिन यहाँ स्नान करने वालों को वाजपेय यज्ञ का फल प्रदान करता है ।४१। सोमवती अमावस्या के दिन प्रातःकाल सोमतीर्थ के जल से स्नान-संध्यातर्पण करके पिता का वसुदेवता के स्वरूप में, पितामह का रुद्र के रूप में, प्रपितामह का आदित्य के रूप में ध्यान करके आवाहन और अर्घ्य से रहित पिण्डदान करने वाला अपने पितरों का प्रिय होता है ।४२, ४३। गया में पिण्ड देने से पितरों को जितनी तृप्ति होती है, सोमतीर्थ पर श्राद्ध करने से भी उतनी ही तृप्ति होती है, दोनों जगह का पिण्डदान पितरों के ऋण से मुक्ति दिलाने में भी समान ही है ।४४, ४५। कलियुग में सोमतीर्थ की महिमा छिप जायेगी । हे राजन् ! सोमतीर्थ से दक्षिण कोण में गोतीर्थ है ।४६। गोतीर्थ के दर्शन मात्र से गोदान का फल मिलता है, यहाँ स्नान करके गौओं की परिक्रमा के पुण्य से गोलोक

गोलोकं प्राप्नुयात् तस्मात् पुण्यादेव न संशयः । तस्मादुदीच्यां हे राजन् ! धनुषां तु त्रिसप्ततिः ।४८।
तीर्थमङ्गारकं नाम कुण्डाकारं महोज्ज्वलम् । स्नात्वा चाङ्गारके तीर्थे भवेद्भूयो न गर्भभाक् ॥४९॥
अङ्गारवारयुक्तायां चतुर्थ्यां स्नाति यो नरः । व्याधिभिर्नाभिभूयेत न च दुःखं कदाचन ॥५०॥
अङ्गारतीर्थमासाद्य यदि दैवाद्विपद्यते । पुनः श्मशानशयनं न क्वापि लभते पुमान् ॥५१॥
आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः । तर्पयित्वा पितॄन् देवान् मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥५२॥
तस्य पश्चिमभागे तु तीर्थं राजन् ! सुदर्शनम् । तत्रोपवासस्यैकस्य फलमब्दशताधिकम् ॥५३॥
तत्र जागरणं कृत्वा स्नात्वा चैव सुदर्शने । तदम्बुप्राशनं नृणामपुनर्भवहेतवे ॥५४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः ॥

की प्राप्ति होती है, गांतीर्थ से उत्तर में ७६ धनुष आगे कुण्ड के आकार का उज्ज्वल और निर्मल अङ्गारक तीर्थ है, यहाँ स्नान कर लेने से फिर गर्भ में रहना नहीं पड़ता ।४७, ४८, ४९। मंगलवार चतुर्थी में यहाँ स्नान करने वालों को शारीरिक रोगों का दुःख नहीं उठाना पड़ता ।५०। इस तीर्थ पर आकर यदि मृत्यु हो जाए तो फिर उसे कभी भी कहीं भी मरघट के घाट नहीं उतरना पड़ता ।५१। यहाँ विधिवत् स्नान और तर्पण करने से ब्रह्महत्या का महापाप भी छूट जाता है ।५२। यहाँ से पश्चिम में सुदर्शन तीर्थ है; यहाँ एक दिन के उपवास से सौ वर्षों के उपवासों का फल मिलता है ।५३। रात्रि जागरण करके प्रातःकाल इस तीर्थ में स्नान करना और जल पीना मोक्ष का हेतु है ।५४।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का दशम अध्याय पूर्ण हुआ)

◆

अथ एकादशोऽध्यायः

नारद उवाच—

तस्माद् दक्षिणतस्तात धनुषां तु चतुः शतम्। सर्वपापप्रशमनं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१॥
'प्रयागेति' प्रसिद्धं तत् पञ्चधा परिनिष्ठितम्। पापौघं स्नानदानाभ्यां तथा योगबलेन च ॥२॥
हरन्ति सर्वतीर्थानि प्रयागः स्वबलेन तु। ययातिर्विस्मितः श्रुत्वा मुनिं पप्रच्छ सादरम् ॥३॥

ययातिरुवाच—

रत्नभूतान् पुरे चास्मिन् प्रयागान् परिवर्णय। एतद्विस्तरतो ब्रूहि मम सर्वं महामते ॥४॥

नारद उवाच—

प्रयागाणां च माहात्म्यं कथयिष्यामि ते नृप !। यथा च तेषां विकृतिः प्रादुर्भावोऽभवद्भुवि ॥५॥
रत्नप्रयागमाहात्म्यं प्रथमं कथयामि ते। अस्य तीर्थस्य नामापि श्रुतं जन्मत्रयार्जितम् ॥६॥
वृजिनं हन्ति लोकानां किं पुनः स्नानजं फलम्। तत्तीर्थदर्शनादेव ज्ञानरत्नमवाप्यते ॥७॥
इहागत्य द्विजः कश्चित् तताप परमं तपः। ज्ञानरत्नमवापासावाविर्भूतं स्वयं नृप ॥८॥
तच्च दृष्ट्वा शुभं तीर्थं ज्ञानरत्नसमुद्भवम्। तेनैव नाम्ना तत्तीर्थं विख्यातं पृथिवीतले ॥९॥
गुह्यानां परमं गुह्यं तीर्थानां चिन्तितप्रदम्। कलौ कलुषबुद्धीनां गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१०॥
यथा रत्नं गृहे गुप्तं न कैश्चित् ख्याप्यते बुधैः। गुप्तमस्ति तथैवैतत् दक्षिणे हरिमन्दिरात् ॥११॥
ब्रह्माण्डमध्ये यावन्ति सन्ति तीर्थान्यनेकशः। तेषु सर्वेषु तैः स्नातं यैः स्नातं ज्ञानदीपके ॥१२॥
अर्के मकरगे स्नातं यैरत्र हरिमन्दिरे। अरुणोदयमासाद्य तेषां निःश्रेयसं सदा ॥१३॥

नारद ने कहा—सुदर्शन तीर्थ से ४०० धनुष आगे प्रयाग तीर्थ है। अन्य तीर्थों पर स्नान, दान, योग आदि अन्य साधनों की भी अपेक्षा होती है, प्रयाग तीर्थ तो अपनी महिमा से ही पापों का काम तमाम कर देता है। यह एक ही पाँच रूपों में स्थित है। प्रयाग की महिमा सुनकर राजा ययाति ने आश्चर्य प्रकट करते हुए नारद जी से पूछा।१, २, ३। हे नारद जी ! सम्भल के रत्न इन प्रयागों का विस्तार से वर्णन करने की कृपा करें।४। नारद ने उत्तर दिया—हे राजन् ! प्रयागों की उत्पत्ति, भेद और महिमा मैं आपको सुनाऊँगा।५। प्रथम रत्नप्रयाग की महिमा सुनाता हूँ। इस तीर्थ का नाम लेने से ही तीन जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। स्नान के फल की तो बात ही क्या ? इसके दर्शन से ही ज्ञानरत्न मिलता है।६, ७। किसी ब्राह्मण ने यहाँ आकर घोर तप किया था। उसके हृदय में अपने आप ज्ञानरत्न प्रकट हुआ।८। ज्ञानरत्न की उत्पत्ति का स्थान होने से इस तीर्थ का नाम 'रत्नप्रयाग' है।९। मनोरथों को पूर्ण करने वाला यह तीर्थ मलिन बुद्धि वालों के आगे वर्णन करने योग्य नहीं है।१०। घर में छिपाकर रखे हुए रत्नों के समान हरिमन्दिर से दक्षिण में यह छिपा हुआ है।११। जिन्होंने यहाँ स्नान किया, उन्होंने ब्रह्माण्ड के सभी तीर्थों में स्नान कर लिया।१२। मकरसंक्रान्ति के दिन अरुणोदय के समान यहाँ स्नान करने वालों को मोक्ष मिलता है।१३।

येऽस्मिन् प्रयागे तपसि स्नानं कुर्वन्ति संयताः । शताश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद् ध्रुवम् ।।१४।।
प्रयागे मकरार्के तु यः स्नानं कुरुते नरः । धनधान्यादिसम्पन्नो भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।।१५।।
भुञ्जानः परमानन्दं परं मोक्षमवाप्नुयात् । प्राप्ते माघे मघामिन्दौ स्नानं कार्यं प्रयत्नतः ।।१६।।
प्रयागे प्रातरायान्ति माघे तीर्थानि सर्वतः । तिष्ठन्ति यावन्मध्याह्नं मकरस्थे दिवाकरे ।।१७।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मध्याह्ने स्नानमाचरेत् । अनादिसिद्धे तीर्थेऽस्मिन् यद्वृत्तं तद् ब्रवीम्यहम् ।१८।।
इतिहासं महाश्चर्यं सर्वपापप्रणाशनम् । पुरेह दासिका काचित् तन्त्रीलयविशारदा ।।१९।।
आगता माघमासे सा प्राप्य कृष्णचतुर्दशीम् । स्नात्वा तीर्थं नमस्कृत्य स्वदेशं प्रययौ पुनः ।।२०।।
कालधर्मवशं याता कदाचित् वरदासिका । सुता गन्धर्वराजस्य कीर्तिभूतेर्बभूव सा ।।२१।।
सङ्गीतसौष्ठवान्माघे हरिमन्दिरसेवनात् । प्रसादाच्चास्य तीर्थस्य गन्धर्वाणां कुलेऽजनि ।।२२।।
असाध्या व्याधयो येऽपि बहिरन्तःशरीरगाः । श्रद्धयोदकसंस्पर्शात्ते नश्यन्तीह नान्यथा ।।२३।।
सेवितं येन सततं प्रयागस्य जलं महत् । स बाह्याभ्यन्तरशुचिः नोपसर्पति दुर्गतिम् ।।२४।।
आधिभौतिकतापं च तापं चाप्याधिदैविकम् । आध्यात्मिकं तथा तापं हन्ति ज्ञानप्रदीपकम् ।।२५।।
तस्य पश्चिमतो राजन् प्रयागो वासुकेः स्मृतः । तत्र तप्तं तपो घोरं पुरा वासुकिना नृप ! ।।२६।।
तस्यैव नाम्ना विख्यातः प्रयागोऽयं महाद्युतिः । यः स्नातो नागपञ्चम्यां तीर्थे वासुकिसंज्ञके ।।२७।।
न तस्य विषसंसर्गो भवेत् सर्पसमुद्भवः । कर्तव्या नागपञ्चम्यां यात्रा वर्षासु तत्र वै ।।२८।।
नागाः प्रसन्ना जायन्ते कुले तस्यापि सङ्गतः । कृतोदर्का यस्तत्र न सर्पैरभिभूयते ।।२९।।
तस्य वै दक्षिणे भागे प्रयागः क्षेमकः स्मृतः । तत्रापि साधिता विद्या षण्मासात् सिद्धिमाप्नुयात् ३०
तत्र स्नानं च यः कुर्यात् जन्माष्टम्यां नृपोत्तम । यशस्वी पुत्रपौत्राढ्यो लक्ष्मीवाँश्चापि जायते ।३१।।

माघ के महीने में जो यहाँ संयमपूर्वक स्नान करते हैं, उन्हें सौ अश्वमेधों का फल मिलता है ।१४। मकर संक्रान्ति पर यहाँ स्नान करने वाले लौकिक सुख भोगकर परमानन्द रूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं । माघ के मघा नक्षत्र पर चन्द्रमा की स्थिति में यहाँ प्रयत्न करके भी स्नान करना चाहिए ।१५, १६। मकर राशि पर सूर्य रहते हुए माघ में यहाँ प्रातःकाल ही सब तीर्थ आते हैं और मध्याह्न तक रहते हैं ।१७। इसलिए मध्याह्न में अवश्य स्नान करना चाहिए । अब यहाँ की एक घटना मैं आपको सुनाता हूँ ।१८। यह इतिहास आश्चर्यमय और पापनाशक है । प्राचीन समय में गानविद्याकुशल कोई दासी माघ कृष्ण चतुर्दशी को यहाँ आयी । स्नान करके तीर्थ को प्रणाम करके अपने देश को चली गई ।१९, २०। समयानुसार मरकर वह कीर्तिभूति नाम वाले गन्धर्वराज की पुत्री बनी ।२१। संगीत के प्रेम, माघ में हरिमन्दिर की सेवा और इस तीर्थ की कृपा से उसने गन्धर्वों के कुल में जन्म लिया ।२२। श्रद्धापूर्वक इस तीर्थ के जल का स्पर्श करने से असाध्य रोग भी नहीं रहते ।२३। इस प्रयाग तीर्थ के पवित्र जल का सेवन करने वाला अन्दर और बाहर पवित्र होकर दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ।२४। दैहिक दैविक और भौतिक इन तीनों तापों को यह रत्नप्रयाग तीर्थ समाप्त कर देता है ।२५। रत्नप्रयाग से पश्चिम में वासुकि नाग ने घोर तप किया था ।२६। इसलिए वासुकि के नाम से ही इसकी प्रसिद्धि है, यहाँ नागपञ्चमी के दिन स्नान तर्पण करने वालों पर नाग प्रसन्न रहते हैं और उनके कुल में भी सर्पों का भय नहीं रहता । २७, २८, २९। वासुकि प्रयाग से दक्षिण में क्षेमक प्रयाग है, यहाँ छः मास में विद्या की साधना सिद्ध होती है ।३०। हे राजन् ! जन्माष्टमी के दिन यहाँ स्नान करने वालों को

गन्धर्वेश्वरनामेतः प्रयागो नातिदूरतः। गन्धर्वैस्तोषितो ब्रह्मा यस्मादिह ततस्तथा ॥३२॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वं कोटिगुणं भवेत्। गन्धर्वात् पश्चिमे भागे प्रयागस्तारकेति च ॥३३॥
अत्रत्यमितिवृत्तं यत्तत्त्वामाख्याम्यहं नृप ! ।यच्छ्रुत्वैव नरो घोरे संसारे नैव मज्जति ॥३४॥
अहिच्छत्रे समभवत् सुदामा नामको नृपः। तस्य पुत्रो बभूवैको दुःखदो नाम दुःखदः ॥३५॥
पितर्युपरते राज्यं प्राप्यासावजितेन्द्रियः। जहार नारीः पौराणां प्रसभात् काममोहितः ॥३६॥
असाधवः प्रियास्तस्य साधवस्तस्य न प्रियाः। अदण्ड्यान् दण्डयाञ्चक्रे दण्ड्येष्वासीत् पराङ्मुखः३७।
सदैव मृगयासक्तः सोऽभून्मृगयुसङ्गतः। विवासिता स्वविषयात् सभा सन्मतिदायिनी ॥३८॥
धर्माधिकारिणः शूद्राः ब्राह्मणाः करदीकृताः। परदारेषु सन्तुष्टो निजदारपराङ्मुखः ॥३७॥
राजायमुदितो लोके धूमकेतुरिवापरः। स कदाचिन्मृगयुभिः पापव्यसनतत्परः ॥४०॥
प्रविवेश महारण्ये मृगपृष्ठानुगोऽधमः। एकाकी मृगयोगेन केनचिद् दुःखदोऽभवत् ॥४१॥
दैवव्यपाश्रयाद्धावन् मृगोऽत्रैव समागतः। नृपोऽपि सहसात्रैव प्रयागे तारके स्थितः ॥४२॥
अश्वादपतत् पाषाणे कालधर्ममुपेयिवान्। विधूय सर्वपापानि प्राप्तो लोकं सनातनम् ॥४३॥
इदं प्रयागमाहात्म्यं यः श्रोष्यति समाहितः। आजन्मसंचितात्पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥४४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः ॥

यश, लक्ष्मी और पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति होती है।३१। इसके समीप हीं गन्धर्वेश्वर प्रयाग है, यहाँ गन्धर्वों ने ब्रह्माजी को प्रसन्न किया था। इसलिये गन्धर्वों के नाम से ही इसकी प्रसिद्धि है।३२। यहाँ के स्नान-दान आदि का करोड़ गुना फल है, यहाँ से पश्चिम में तारक प्रयाग है।३३। यहाँ की एक घटना मैं तुम्हें सुनाता हूँ इसको सुनकर ही फिर संसार में नहीं आना पड़ता।३४। अहिच्छत्र देश में सुदामा नाम का राजा था उसका एक पुत्र सभी को दुःख देने के कारण दुःखद नाम से प्रसिद्ध हुआ।३५। पिता के मरने पर राजगद्दी मिलते ही कामातुर दुःखद नागरिकों की स्त्रियों पर बलात्कार करने लगा।३६। उसको दुर्जनों से प्रेम था, सज्जनों से नहीं, अपराधियों को दण्ड न देकर वह निरपराधियों को दण्ड देता था।३७। शिकारियों के साथ शिकार खेलता था, उचित सम्मति देने वाले मंत्रियों को उसने देशनिकाला दे दिया था।३८। धर्मनिर्णय का अधिकार उसने शूद्रों को सौंपा था, ब्राह्मणों से कर लेता था, अपनी स्त्रियों को छोड़कर परायी स्त्रियों में आसक्त था।३९। यह राजा क्या था. प्रजा के अशुभों का सूचक पुच्छल तारा था, एक समय यह पापी शिकारियों के साथ किसी घोर वन में घुस गया, किसी मृग के पीछे पड़कर वह वहाँ अकेला रह गया।४०, ४१। दौड़ता हुआ मृग और उसका पीछा करता हुआ राजा यहाँ तारक प्रयाग पर आ गये, दैवयोग से से राजा दुःखद घोड़े की पीठ से पत्थर पर गिरकर मर गया और मरते ही दिव्यलोक में चला गया।४२, ४३। तारक प्रयाग में मरने से ऐसे दुष्ट राजा की भी सद्गति हुई, ऐसी इस तारक प्रयाग की महिमा को सावधान होकर सुनने वाला भी जन्म भर के पापों से मुक्त हो जाता है।४४।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का एकादश अध्याय पूर्ण हुआ।)

●

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच—

प्रयागाद् दक्षिणे कूले मृत्युतोर्थं नृपोत्तम। तत्रापि सन्तर्प्य पितृन् विष्णुलोके महीयते ॥१॥
श्रद्धया विहितश्राद्धो मुच्यते पैतृकादृणात्। मृत्युतीर्थे नरः स्नात्वा मृत्युं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥२॥
स्वयं तीर्त्वा भवाम्भोधेस्तारयेत् स्वपितृनपि। प्रतिपद्दर्शयोर्भौमयोगे यः श्राद्धकृन्नरः ॥३॥
मृत्युतीर्थं समासाद्य गयाश्राद्धेन किन्ततः। अमायां चैत्रकृष्णस्य जागर्त्युपवसत्यपि ॥४॥
प्रातः स्नात्यपमृत्यूनां भरं तस्य न कुत्रचित्। मृत्युतीर्थस्य माहात्म्यं कलौ कोऽप्येव वेत्स्यति ॥५॥
श्रद्धावान् यस्तु पुण्यात्मा स सर्वं वेत्स्यति ध्रुवम्। तद्वारिसेवनाच्चैव तथा तदवलोकनात् ॥६॥
गर्भवासं न चाप्नोति संसारे दुःखसङ्कुले। अन्या तीर्थत्रयी श्रेष्ठा मृत्युतीर्थस्य दक्षिणे ॥७॥
एतद्रहस्यं वक्ष्यामि न वाच्यं यत्र कुत्रचित्। अभक्तेषु सदा गोप्यं न गोप्यं भक्तिमज्जने ॥८॥
श्रेष्ठायां पुष्करत्रय्यां स्नात्वा श्रद्धान्वितो नरः। ध्यायन् दामोदरं देवं तर्पयेत् स्वपितामहान् ॥९॥
शतं समाः सुतृप्तास्ते सम्प्रयच्छन्ति वाञ्छितम्। दामोदरस्य कृपया वैकुण्ठे स निवत्स्यति ॥१०॥
तत्र स्नात्वा विधानेन कार्तिक्यां पुष्करोत्तमे। राधया सहितं देवं पूजयेन्मधुसूदनम् ॥११॥
समस्तमर्चितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम्। ऊर्जाष्टम्यां च कर्त्तव्या तीर्थयात्रा नृपोत्तम ! ॥१२॥
अष्टाधिकाः शतं येन कृतास्तीर्थपरिक्रमाः। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपवती मही ॥१३॥

नारद ने कहा—हे राजन् ! प्रयाग से दक्षिण में मृत्युतीर्थ है, यहाँ भी स्नान तर्पण करने से विष्णुलोक में प्रतिष्ठा होती है ।१। यहाँ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋण से मुक्त होता है, यहाँ स्नान तर्पण करके मृत्युदेवता की परिक्रमा करने वाला अपने आपको और अपने पितरों को भी भवसागर से पार करता है, प्रतिपदा तथा अमावस्या में भौमवार का योग होने पर श्राद्ध करने से गया श्राद्ध का फल यहीं मिलता है, चैत्र कृष्ण अमावस्या में उपवास और रात्रि जागरण करके प्रातः स्नान करने वालों की अपमृत्थु नहीं होती, कलियुग में मृत्युतीर्थ की महिमा को कोई ही जान सकेगा ।२, ३, ४, ५। श्रद्धा रखने वाला सब कुछ जान सकेगा, इस तीर्थ के जल का सेवन और दर्शन कर लेने पर गर्भवास का दुःख नहीं उठाना पड़ता, मृत्युतीर्थ के दक्षिण में तीन और भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं ।६, ७। इन तीर्थों का रहस्य मैं तुम्हें सुनाऊँगा, उसे तुम भक्तों को सुनाना अभक्तों से छिपाना ।८। इन तीनों श्रेष्ठ पुष्कर तीर्थों में श्रद्धापूर्वक स्नान करके दामोदर भगवान् का ध्यान करता हुआ पितरों का तर्पण करे ।९। यहाँ के तर्पण से सैकड़ों वर्षों तक तृप्त हुए पितर तर्पणकर्त्ता के मनोरथ पूर्ण करते हैं और दामोदर की कृपा से तर्पणकर्ता वैकुण्ठ में रहता हे ।१०। कार्तिक पूर्णिमा के दिन यहाँ स्नान करके राधामाधव का पूजन करे ।११। राधामाधव का यह पूजन समस्त त्रिलोकी का पूजन है । कार्तिक शुक्ल अष्टमी को इस तीर्थ पर आना चाहिए ।१२। पुष्कर तीर्थ की १०८ परिक्रमाएँ सम्पूर्ण

श्राद्धकर्तात्र विधिवत् पितृणामनृणो भवेत्। सर्वे मनोरथास्तस्य सिद्ध्यन्तीह न संशयः ॥१४॥
प्रत्येकादशि यः कुर्याद्रात्रौ जागरणं सुधीः। कृष्णपक्षे शुक्लपक्षे शयनीं च प्रबोधिनीम् ॥१५॥
प्राप्य जित्वारिषड्वर्गं रागद्वेषविवर्जितः। प्राप्नोति परमां सिद्धिं हरिमन्दिरसेवकः ॥१६॥
प्रातः समर्च्य विश्वेशं भोजयित्वा द्विजोत्तमान्। दत्वा गाः काञ्चनं भूमिं न भूयो भूमिभाग्भवेत् १७
कृत्वा तत्र वृषोत्सर्गं वित्तशाठ्यविवर्जितः। सम्यग् व्रतफलं धीमान् प्राप्नोत्येव न संशय ॥१८॥
अर्वागेवास्य तीर्थस्य तीर्थं पैतामहं मतम्। ब्रह्मावर्ताभिधं राजन्! ब्रह्मलोकगतिप्रदम् ॥१९॥
तत्र श्राद्धविधानेन तर्पयित्वा पितामहान्। नरकेष्वपि घोरेषु पतितान् पुनरुद्धरेत् ॥२०॥
ब्रह्मावर्तसमीपे तु कृतं कर्म शुभाशुभम्। परमक्षयतामेति शुभमेव ततश्चरेत् ॥२१॥
वैशाखस्य तृतीयायां स्नानं कृत्वा विधानतः। ब्रह्मतेजोऽभिवृद्धिं च कीर्तिं च लभते भुवि ॥२२॥
ब्रह्मावर्त्तात्ततो याम्यां नर्मदातीर्थमुत्तमम्। नाम्नैव शिवभक्तानां परमां प्रीतिमावहेत् ॥२४॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कृत्वा संध्यां विधानतः। दत्वा दानं यथाशक्ति शिवलोके महीयते ॥२५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वक्लेशविवर्जितः। संध्याकाल-क्रियालोपपातकैर्नाभिभूयते ॥२६॥
तत्र पिण्डान् विनिर्याप्य दत्वा गां काञ्चनादिकम्। तर्पयित्वा पितृगणान् नत्वा च हरिमन्दिरम् २७।
शतसाम्वत्सरीं तृप्तिं पितृभ्यः स समर्पयेत्। गच्छेत् स्वपूर्वजैः सार्धं शिवलोकं न संशयः ॥२८॥
नर्मदायां महाराज! स्नातव्यं सिंहगे रवौ। फलं सहस्रगुणितं तीर्थराजाप्लुतेरपि ॥२९॥
धर्मकूपो दिशि प्राच्यां नर्मदायाः सकाशतः। कलावधर्मबहुले धर्मवृद्धिकरः परः ॥३०॥

पृथ्वी की परिक्रमा के तुल्य है।१३। यहाँ श्राद्ध करने वाला पितरों के ऋण से मुक्त होता है, इच्छाएँ भी सब उसकी पूर्ण होती हैं।१४। हरिमन्दिर—सम्भल का भक्त काम क्रोध को जीतकर रागद्वेष से दूर रहकर प्रत्येक एकादशी को रात्रि में जागरण करे, आषाढ़ शुक्ल पक्ष की हरिशयनी और कार्तिक शुक्ल पक्ष की प्रबोधिनी एकादशी को विशेष सावधानी से व्रत रखने वाला परमसिद्धि को प्राप्त होता हे।१५, १६। भक्ति भावना से प्रातः भगवान् का पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति गौ, स्वर्ण, पृथ्वी का दान करने वाला फिर मृत्युलोक में नहीं आता।१७। उदारता के साथ जो यहाँ पितरों के निमित्त से साँड छोड़ता है और एकादशी व्रत का उद्यापन करता है, उसका व्रतानुष्ठान पूर्ण होता है।१८। पुष्कर तीर्थ के कुछ पीछे ब्रह्मावर्त तीर्थ है, ब्रह्मलोक में पहुंचने वाला यह ब्रह्माजी का तीर्थ है।१९। यहाँ श्राद्ध करने वाला घोर नरकों में पड़े हुए पितरों को भी तार देता है।२०। यहाँ किये हुए पुण्य पाप अक्षय होते हैं। इसलिये यहाँ प्रयत्नपूर्वक शुभ कर्म ही करें।२१। यहाँ स्नान करने से सौ जन्मों के पाप छूट जाते हैं, इस तीर्थ का दर्शन ब्रह्महत्या का प्रायश्चित है।२२। वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन स्नान करने से ब्रह्मतेज की और कीर्ति की प्राप्ति होती है।३३। ब्रह्मावर्त से दक्षिण में नर्मदातीर्थ है, इसके नाम से ही शिवभक्तों की प्रसन्नता होती है।२४। इस तीर्थ में स्नान-संध्या करने और यथाशक्ति दान से शिवलोक में प्रतिष्ठा होती है।२५। सभी पापों और दुःखों से रहित होकर सन्ध्याकाल और सन्ध्या के लोप का भी प्रायश्चित्त हो जाता है।२६। यहाँ पितरों के लिए पिण्ड देकर और तर्पण करके यथाशक्ति गौ-सुवर्ण आदि का दान करके अपने पूर्वजों को सौ वर्ष तक की तृप्ति देकर स्वयं भी उनके साथ शिवलोक में निवास करता है।२७, २८। सिंह राशि पर सूर्य के रहते हुए यहाँ नर्मदा में स्नान करने का फल तीर्थराज के स्नान के फल से भी हजारगुना है।२९। कलियुग मे अधर्म

धृतमौनव्रतो यस्तु कूपेऽस्मिन् स्नानमाचरेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुण्यं प्राप्नोति शाश्वतम् ।।३१।।
पितृणां ध्यानमात्रेण तृप्तिः स्यादत्र भूयसी । तीर्थस्यास्य प्रभावेण मुच्यते पैतृकादृणात् ।।३२।।
अत्र यो भोजयेद्विप्रान् ज्ञानिनोऽपि तपस्विनः । ग्रासे ग्रासे भवेत्तस्य वाजपेयफलं महत् ।।३३।।
कृतश्रद्धाविधानस्तु तस्मिँस्तीर्थेऽगहारिणि । ब्राह्मणान् भोजयित्वा च ब्रह्मलोकं नयेत् पितृन् ।।३४।।
भक्त्या चात्र नमस्कृत्य ब्राह्मणान् बोधपारगान् । प्राप्नोति तारकं ज्ञानं यस्माज्ज्ञानात् प्रमुच्यते ।३५।
तस्मात् प्राच्यां स्थिता राजन् ! गोह्रदाः पञ्च चोत्तमाः नारायणेन पञ्चामी ह्रदा विख्यापिता भुवि।
नन्दा सुनन्दा सुरभिः शीला शुभ्रास्तु धेनवः । एतासां पयसां पूरैः ह्रदा पञ्चाभवन् पुरा ।।३७।।
ततो देवाज्ञया सर्वे स्नातास्तत्र दिवौकस । तान् दृष्ट्वा पितरः सर्वेऽप्यागतास्तृप्तिकाम्यया ।।३८।।
अग्निष्वात्ताः पितृगणा आज्यपाः सोमपास्तथा । अन्येऽपि दिव्याः पितरस्तृप्ता हरिमपूजयन् ।३९।।

पितरस्तुष्टुवुः--

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तानामभयप्रद ! । तीर्थेभ्य एभ्यः सर्वेभ्यो जाता नस्तृप्तिरक्षया ।।४०।।
इति दिव्यपितृणां तच्छ्रुत्वा वाक्यं हरिस्तदा । शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ।।४१।।
शृण्वन्तु पितरः सर्वे शृण्वन्तु च पितामहाः । अत्र पञ्चह्रदे तीर्थे नन्दादिक्षीरसम्भृते ।।४२।।
ये तु निर्वापयिष्यन्ति कार्तिके धेनुपञ्चके । तेषां पितृणां संतृप्तिः भविष्यति सदाऽक्षया ।।४३।।
महातृप्तिकरीमन्यामपि वच्मि विशेषताम् । ऊर्जे सोमसमायुक्ता कुहूश्चेत् स्यात् कदाचन ।।४४।।
दिव्यन्तरिक्षे भूमौ वा यानि तीर्थानि सर्वशः । तान्यत्रायान्त्युपस्थातुं दर्शं सोमसमन्वितम् ।।४५।।
सूर्येन्दुवारे ये चात्र पितृणां तृप्तिकामुकाः । ब्राह्मणान् भोजयिष्यन्ति तेषां श्राद्धमनन्तकम् ।।४६।।

की अधिकता होने पर भी धर्म की वृद्धि करने वाला धर्मकूप तीर्थ नर्मदा तीर्थ से पूर्व दिशा में है ।३०। यहाँ मौनी होकर स्नान करने से सभी पापो से मुक्ति और पुण्यों की प्राप्ति होती है ।३२। इस तीर्थ का प्रभाव है कि यहाँ पितरों का ध्यान कर लेने से ही उनकी पूर्ण तृप्ति हो जाती है, और यह ध्यान करने वाला भी पितरों के ऋण से मुक्त होता हैं ।३२। ज्ञानी और तपस्वी ब्राह्मण जव यहाँ भोजन करते हैं, तो उनके ग्रास-ग्रास पर भोजन कराने वाले को वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ।३३। इस पापनाशक तीर्थ पर पितरों का श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचा देता है ।३४। ज्ञानसागर के पार पहुँचे हुए ब्राह्मणों को यहाँ भक्तिभावना से प्रणाम करने वाले को उस ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो संसार समुद्र से पार लगाने वाला है ।३५। यहाँ से पूर्व में पाँच तालाव प्राचीन काल में वने थे ।३७। तव नारायण की आज्ञा से सब देवताओं ने यहाँ स्नान किया, यह देखकर पितरों के गण भी यहाँ आये ।३८। अग्निष्वात्त, आज्यपा, सोमपा आदि दिव्य पितरों का समुदाय यहाँ आ कर नारायण के पूजन में तत्पर हुआ ।३९। पितरों ने स्तुति की—भक्तों को अभय देने वाले हे नारायण ! इन तीर्थों से हमको अक्षय तृप्ति मिली है ।४०। दिव्य पितरों की स्तुति को सुनकर भगवान् ने कहा ।४१। हे पितृगणों ! आप लोग ध्यान से सुनें । नन्दा आदि पाँच गौओं के दूध से भरे हुए इस पञ्चगोह्रद तीर्थ में जो अपने पितरों को पिण्डदानादि से तृप्त करेंगे—उनके पितरों को अक्षय तृप्ति प्राप्त होगी ।४२, ४३। पितरों को पूर्ण तृप्त करने वाली एक विशेष बात और भी सुनो । कार्तिक में सोमवती अमावास्या के दिन इस तिथि का अभिनन्दन करने के लिये त्रिलोकी के तीर्थ यहाँ आते हैं ।४४, ३५। अपने पितरों को तृप्त रखने की इच्छा वाले जो यहाँ रविवार या सोमवार को श्राद्ध करके ब्रह्म-

तृप्त्यै पितृणामप्येकां दास्यन्ति कपिलां तु ये। तेषां पितृगणो नूनं वसेत् क्षीरोदरोधसि ॥४७॥
वृषोत्सर्गः कृतो यैस्तु तीर्थे पञ्चह्लदे शुभे। अश्वमेधपुरोडाशैः पितरस्तैः सुतर्पिताः ॥४८॥
गर्भस्रावोऽभवद्येषां येऽदन्तजनना मृताः। तेषां तृप्तिर्भवेन्नूनं तीर्थे पञ्चह्लदे परा ॥४९॥
अप्राप्तमौञ्जीबन्धा ये ये चादारपरिग्रहाः। अग्नौ दग्धा अदग्धा वा तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥५०॥
पिशाचत्वमपि प्राप्ता और्ध्वदैहिकवर्जिताः। तेऽप्यूर्ध्वगतिमेष्यन्ति तृप्ताः पञ्चह्लदे शुभे ॥५१॥
मध्येक्षेत्रमिदं तीर्थमाग्नेय्यां दिशि संस्थितम्। हरिमन्दिरतः क्रोशे मम सान्निध्यदं परम् ॥५२॥
इति दत्वा वरान् देवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्। तेऽपि देवाश्च पितरः स्वं स्वं धाम पुनर्ययुः ॥५३॥
मया ते कथितं सर्वं पुण्यं पञ्चह्लदं नृप! यस्य श्रवणमात्रेण महापातकनाशनम् ॥५४॥
पठित्वा पाठयित्वा तु हरेः सायुज्यमाप्नुयात्। श्राद्धकाले विशेषेण पठनीयं प्रयत्नतः ॥५५॥
अक्षयं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृमुक्तिकरं परम्। श्राद्धकर्तुश्च सौभाग्यवर्धनं सद्गतिप्रदम् ॥५६॥
इदं पञ्चह्लदाख्यानं पठित्वा हरिमन्दिरे। प्रत्यहं वर्षमात्रेणानपत्यः पुत्रवान् भवेत् ॥५७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः ॥

भोज करावेंगे उन्हें अनन्त फल प्राप्त होगा।४६। अपने पितरों की तृप्ति के लिए जो यहाँ एक कपिला गौ का दान करेंगे उनके पितरों का क्षीरसागर के तट पर निवास होगा।४७। पञ्चह्लद तीर्थ पर जो अपने पितरों के लिये साँड छोड़ते हैं उन्होंने अश्वमेध यज्ञ की हवि से उन्हें तृप्त किया है।४८। गर्भ गिर जाने से जो मरे हैं, दाँत निकलने से पूर्व ही जो मर गये हैं, यहाँ के तर्पण से वे भी तृप्त होते हैं।४९। यज्ञोपवीत संस्कार से या विवाह से पूर्व ही जो मर गये हैं, मरने पर होने वाले संस्कार जिनके नहीं हुए हैं. पशु-पक्षी आदि बन गये हैं, भूत-प्रेत बन गए हैं, वे सब इस तीर्थ के प्रभाव से ऊर्ध्वगति प्राप्त करते हैं।५०-५१। हरिमन्दिर से एक कोस पर सम्भल के ठीक मध्य में यह तीर्थ अपने सेवकों को मेरे धाम में पहुँचाने वाला है।५२। यह वरदान देकर भगवान् अदृश्य हो गये, देवता तथा पितर भी अपने-अपने धाम को चले गये।५३। यह पञ्चह्लद का पवित्र कथानक मैंने तुम्हें सुनाया, इसके सुनने मात्र से महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।५४। इस अध्याय के पढ़ने पढ़ाने वालों को मोक्ष मिलता है।५५। श्राद्ध के समय इसके पढ़ने से श्राद्ध का फल अक्षय हो जाता है, श्राद्धकर्ता के सौभाग्य की वृद्धि और सद्गति होती है।५६। सम्भल में इस तीर्थ की महिमा को एक वर्ष तक प्रतिदिन पढ़ने वाला सन्तानहीन भी पुत्रवान् होता है।५७।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का द्वादश अध्याय पूर्ण हुआ)

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ययातिरुवाच—

श्रुत्वा नारद ! तृप्तोऽस्मि तव वक्त्रेरितां कथाम्। भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामि किमप्यन्यत् कथानकम् ॥

स्कन्द उवाच—

निशम्यैनमिमं प्रश्नं राज्ञो ब्रह्माङ्गसम्भवः। प्रत्युवाच नमस्कृत्य हरिं कमललोचनम् ॥२॥
शृणु राजन् ! कथां दिव्यां महापातकनाशिनीम्। शम्भलेश्वरतोऽधस्तात् विमलातीर्थमुत्तमम् ॥३॥
पश्चाद्भविष्यद्गङ्गेति नाम्नेदं ख्यातिमेष्यति। तत्त्वं नामान्तरप्राप्तेः कारणं शृणु भूपते ॥४॥
अनपत्यो द्विजः कश्चिदागत्य विमलातटे। आराधयामास हरिं सर्वाघौघविनाशनम् ॥५॥
शुष्कस्नायुनिबद्धास्थिसञ्चयो निश्चलाकृतिः। शेषेणैवायुषो ह्यस्य प्राणा अस्थिषु शिश्यिरे ॥६॥
निःश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवनः। तं तथाभूतमालोक्य देवी देवं व्यजिज्ञपत् ॥७॥
वरेण छन्दाय विभो ! निजभक्तं तपस्विनम्। तीव्रैस्तपोभिः शुष्काङ्गं त्वय्येवैकाग्रतां गतम् ॥८॥
इति लक्ष्म्या वचः श्रुत्वा हरिः साक्षाज्जगत्पतिः। आरुह्य गरुडं देवो देव्या सह समभ्यगात् ॥९॥
समाधिसङ्कोचितनेत्रपद्मं हस्तेन पस्पर्श दयार्द्रचित्तः।
विप्रोऽपि चोन्मीलितलोचनः सन् इतस्ततश्चालयति स्म नेत्रे ॥१०॥

राजा ययाति ने नारद जी से फिर प्रार्थना की—हे नारद जी ! हरिमन्दिर के सम्बन्ध में आपने अनेक कथायें सुनायीं, मैं भी सुनकर तृप्त हुआ हूँ, फिर भी और कुछ सुनना चाहता हूँ, आप कृपा करें।१। राजा के इस प्रश्न को सुनकर ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ने कमललोचन भगवान् हरि को प्रणाम करके कहा।२। हे राजन् ! महापापों का नाश करने वाली एक और भी कथा सुनिये। शम्भलेश्वर के पीछे विमला तीर्थ है, बाद में इसी को भविष्यगंगा कहेंगे, इस नाम परिवर्तन का कारण सुनो।३, ४। इस विमला तीर्थ के तट पर आकर कोई सन्तानहीन ब्राह्मण पापों के समूह का नाश करने वाले भगवान् हरि का आराधन करने लगा।५। इसकी सूखीं हुई नसों और नाड़ियों से हड्डियाँ जकड़ी हुई थीं, हिलना डुलना बन्द था, प्रारब्ध के अनुसार इसकी आयु अभी शेष थी, इसलिये हड्डियों में प्राणों का संचार हो रहा था।६। साँसों की अत्यन्त मन्दगति से ही इसके जीवित होने का अनुमान लगाया जा रहा था. ऐसी स्थिति में इसको देखकर लक्ष्मीजी नारायण से बोलीं।७। हे प्रभो ! आप अपने इस भक्त को वरदान दीजिये, तीव्र तपस्या से इसका सब शरीर सूख गया है, एकाग्र चित से वह आप ही का भजन कर रहा है।८। यह सुनकर लक्ष्मीजी को भी साथ लेकर गरुड पर विराजमान भगवान् वहाँ पहुँचे।९। उसे देखकर भगवान् को भी दया आई, उसकी समाधि लगी हुई थी, नेत्र बन्द ये, भगवान् ने अपने हाथ से उसका स्पर्श किया, आँखें उसकी खुलीं और

इयेष चोत्थातुमथापि वीक्षितुं परन्तु सामर्थ्यमसौ न लब्धवान् ।
निरीक्ष्य तच्चेष्टितमस्य भार्गवी ददावभीष्टं मनसैव तद्धितम्॥११॥
लब्ध्वा च तत्तत्क्षणमेव सक्षमो ददर्श नारायणमद्भुतप्रभम् ।
दयादृशा दर्शनशक्तिदायिनीमवालुलोकेऽपि च लोकमातरम् ॥१२॥
उद्यत्सहस्रांशुसहस्रतेजसो हरेः पुरस्तात् कथमप्यवस्थितः ।
रोमाञ्चितः प्रीतिभराश्रुलोचनो जगाद हर्षाकुलगद्गदाक्षरम् ॥१३॥
ॐ नमः पुण्डरीकाक्ष ! बाह्याभ्यन्तरपावन । नमामि ते पदद्वन्द्वं सर्वद्वन्द्वनिवारकम् ॥१४॥
यं स्तोतुं नाधिगच्छन्ति वाचो वाचस्पतेरपि । तमीष्टे क इह स्तोतुं त्वामीशं मादृशोऽल्पधीः ।१५॥
नेति नेतीति यत्रोक्त्वाप्याम्नाया मौनमासते । मनोगिरामतीतं त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् १६।
तस्मान्मुकुन्द मधुसूदन माधवेति नारायणेति नरकार्णवतारणेति ।
दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति जिह्वा निरन्तरमियं भजताद् भवन्तम् ॥१७॥
यस्य निःश्वसितं वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ।
तस्य देवस्य महिमा कथं गीयेत केनचित् ॥१८॥
स्तोता त्वमेव दनुजेन्द्ररिपो ! स्तुतिस्त्वम् स्तुत्यस्त्वमेव सकलं विकलं त्वमेव ।
त्वत्तो न किञ्चिदपि दृश्यमिहास्ति भिन्नं तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो १९।
इति स्तुत्वा हृषीकेशं स ऋषिस्तापसोत्तमः । तस्थौ तूष्णीं ततो विष्णुरुवाच वरदो मुनिम् ॥२०॥
हे तापस ! महाभाग ! महतां तपसां निधे । वरं वरय मत्तस्त्वं तवादेयं न किञ्चन ॥२१॥

तापस उवाच—

यदि प्रीतोऽसि भगवन् वैकुण्ठेश ! जगत्पते ! । तद्देहि कमलाकान्त ! यदिह प्रार्थयाम्यहम् ॥२२॥

वह उन्हें देखने लगा ।१०। वह उठना और देखना चाहता था, लक्ष्मी ने उसकी इच्छा के अनुसार उसे वह सामर्थ्य दे दी ।११। उसी क्षण उसने नारायण का दर्शन किया और दयावश दर्शन शक्ति को देने वाली लक्ष्मीजी को भी देखा ।१२। सहस्रों सूर्यों के समान तेजस्वी भगवान् के सम्मुख किसी प्रकार खड़े होकर लड़खड़ाती वाणी में उसने कहा, प्रसन्नता से भर जाने के कारण उसकी आँखों में आँसू थे, शरीर में रोमाञ्च हो गया, स्वर लहरी भी विकृत हो गई थी । १३। हे कमललोचन ! शरीर के अन्दर और बाहर जो भी कुछ है, उस सबको आप पवित्र कर देने वाले हैं, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को दूर हटाने वाले आपके चरण-युगल को मेरा प्रणाम है ।१४। बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं, वेद भी "नेति नेति" कह कर चुप हो रहे हैं, तब मुझ जैसा अल्पबुद्धि मन और वाणी के अविषय आप की स्तुति कैसे कर सकता है ।१५, १६। इसलिये यह मेरी जिह्वा निरन्तर आपके मुकुन्द माधव आदि नामों को जपती रहे ।१७। साङ्गोपाङ्ग चारों वेद जिनके निःश्वास हैं, उनकी महिमा कोई कैसे गा सकता है ।१८। हे भगवन् ! दीनबन्धो ! अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार स्तुति करने वाले, स्तुति किये जाने वाले और स्तुति भी आपकी हैं, समष्टि के रूप में जो कुछ दीख रहा है, वह सब कुछ आप ही हैं, आप से भिन्न कुछ नहीं है, इसलिये आप ही एकमात्र मेरे रक्षक हैं ।१९। इस प्रकार वह तपस्वी ऋषि स्तुति पढ़ कर चुप हो गया, तब भगवान् ने उससे कहा ।२०। हे तापस ! तुम बड़े भाग्यवान् हो, तुम्हारी जो इच्छा हो सो माँग लो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें न दी जा सके ।२१। तपस्वी ने कहा—हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ।२२। हे प्रभो !

देहि पुत्रं मम विभो ! वेदवेदाङ्गपारगम् । यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि ।।२३।।
इहैव गङ्गा विमला तिष्ठत्वेषा जगत्पते ! । तेन त्वा प्रार्थयाम्येवं कृपां कुरु कृपानिधे ! ।।२४।।

हरिरुवाच—

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्ये बृहस्पतिः । एकराशौ भविष्यन्ति तदा गङ्गा भविष्यति ।।२५।।
गृहेऽपि विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य तपोनिधेः । अर्ककुण्डस्योत्तरतोऽवतरिष्याम्यहं स्वयम् ।।२६।।
इहैव ग्राममध्ये च तदा गङ्गा भविष्यति । अस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।२७।।
भविष्यगङ्गासंस्पर्शादश्वमेधफलं भवेत् । विमलैव भविष्यन्ती गङ्गेत्याख्यास्यते भुवि ।।२८।।
गुरुपुष्यसिताष्टम्यां व्यतीपातो यदा भवेत् । तस्मिन् पुण्यतमे काले स्नातव्यमिह यत्नतः ।।२९।।
तदात्र श्राद्धकरणात् कोटिगोदानजं फलम् । अक्षयं फलमाप्नोति व्रतैर्दानैस्तपोजपैः ।।३०।।
त एव धन्या लोकेऽस्मिन् कृतकृत्यास्त एव हि । भविष्यगङ्गां सम्प्राप्य प्राणा यैर्मह्यमर्पिताः ।।३१।।
भविष्यगङ्गागमनोद्यतमालोक्य यात्रिणम् । जन्मान्तरार्जितस्तस्य वेपते पापसञ्चयः ।।३२।।
यं यं काममभिध्यायेत्तं तं प्राप्नोति नान्यथा । सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ३३।
भविष्यगङ्गां सन्त्यज्य योऽन्यस्मात् काममिच्छति । स एव दुःखभाग् लोके सत्यं सत्यं हि तापस !
गङ्गायामिह यः स्नाति ब्रह्मचारी समाहितः । विधूतपापो भवति वाजिमेधं च विन्दति ।।३५।।
पतितान्नरके गङ्गा भविष्यन्त्युद्धरेद्ध्रुवम् । ब्रह्मलोकस्तु लोकानां सर्वेषामुत्तमो यथा ।।३६।।
सरसां सरितां वापि वरिष्ठा जाह्नवी तथा । सैव गङ्गात्र भविता यदा कल्किर्भवाम्यहम् ।।३७।।
तस्मिन् काले विष्णुयशा भविष्यति कलौ भवान् । तत्राहं ते गमिष्यामि पुत्रत्वं तपसां निधे ।।३८।।

वेद वेदाङ्गपारगामी पुत्र को मैं चाहता हूँ, यदि मैं इस योग्य हूँ तो ऐसा पुत्र मुझे दीजिये ।२३। मेरी यह एक और भी प्रार्थना है कि श्रीगंगाजी इस विमला तीर्थ में ही आकर प्रवाहित हों ।२४। **श्रीहरि बोले**—चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति जब पुष्य नक्षत्र पर आकर एक साथ एक ही राशि में प्रवेश करेंगे, तभी श्रीगंगाजी यहाँ वहेंगी ।२५। तपोनिधि विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के यहाँ सूर्यकुण्ड से उत्तर में मैं अवतार लूँगा ।२६। यहाँ इस ग्राम के मध्य में ही यह विमला गंगा बनकर बहेगी, इसलिए अभी से इसको भविष्यगङ्गा कहा करेंगे, इसके स्पर्श से अश्वमेध का फल मिलता है ।२७, २८। किसी भी मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी में गुरुवार, पुष्यनक्षत्र और व्यतीपात का योग हो, तब यहाँ प्रयत्न करके भी स्नान करना चाहिए ।२९। उस समय यहाँ श्राद्ध करने से कोटिगोदान का फल प्राप्त होता है, उस समय जो भी व्रत, दान, तप, जप किया जाय उसका फल अक्षय होता है ।३०। इस लोक में वे धन्य हैं और कृतार्थ हैं, जिन्होंने यहाँ आकर मेरे लिए अपने प्राण अर्पण किये हैं ।३१। भविष्य गंगा पर पहुँचने की तैयारी करते यात्री को देखकर उसके जन्मान्तरों का संचित पाप काँप उठता है ।३२। जिस-जिस फल को भी कोई चाहता है, वह उसे अवश्य मिलता है, सकाम को स्वर्ग की और निष्काम को मोक्ष की प्राप्ति होती है ।३३। भविष्यगङ्गा को छोड़कर जो किसी और से कुछ चाहता है, वह निश्चय ही दुःख का भागी होता है ।३४। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला एकाग्रचित्त से जो यहाँ स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर अश्वमेध का फल पाता है ।३५। यह भविष्यगङ्गा नरक में पड़े हुओं का भी उद्धार करती है, सर्व लोकों में उत्तम ब्रह्मलोक के समान सभी सरोवरों और नदियों में गङ्गा उत्तम है, वही मेरे कल्कि अवतार के समय यहाँ बहेगी ।३६-३७। उस समय कलियुग के चतुर्थ चरण की समाप्ति पर तुम्हीं विष्णुयशा ब्राह्मण बनोगे और मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।३८। यह वरदान देकर भगवान् अदृश्य

इति दत्वा वरान् देवस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः। सोऽपि विप्रो वरं प्राप्य जगाम निजमन्दिरम् ॥३९॥
इदं पवित्रमाख्यानं यः शृणोति समाहितः। आजन्मसंचितात् पापान्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥४०॥
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं सम्यगर्जितम्। भविष्यगङ्गानाम्नैव तत्क्षणात् क्षयमाव्रजेत् ॥४१॥

नारद उवाच—

ब्रह्मघ्नो मद्यपः स्वर्णस्तेयी च गुरुतल्पगः। तत्संयोगी भ्रूणहन्ता मातृहा पितृहा तथा ॥४२॥
विश्वासघाती गरदः कृतघ्नो मित्रघातुकः। अग्निदो गोवधकरो गुरुद्रव्यापहारकः ॥४३॥
महापातकयुक्तोऽपि संयुक्तोऽप्युपपातकैः। मुच्यते तत्क्षणादेव मृतश्चेद्धरिमन्दिरे ॥४४॥
ततो विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसंवृतः। दिव्याभरणसम्पन्नो दिव्यभोगसमन्वितः ॥४५॥
नन्दनादिवने स्वैरं देववच्च स मोदते। यो नरः कुरुते श्राद्धं निकषा हरिमन्दिरम् ॥४६॥
यावन्ति तत्र सिक्थानि यावन्तोऽम्बुकणास्तथा। तावन्त्येव हि वर्षाणि मोदन्ते तत्पितामहाः ॥४७॥
यथा प्रीणन्ति पितरो गयायां पिण्डदानतः। तथैव तृप्तिमायान्ति हरिमन्दिरपार्श्वतः ॥४८॥
ययाते ! किं बहूक्तेन शृणु मे परमं वचः। संशयो नात्र कर्तव्यः सन्दिग्धं निष्फलं भवेत् ॥४९॥
स्नात्वा भविष्यगंगायां दृष्ट्वा च हरिमन्दिरम्। स कीकटेष्वपि मृतो न पुनर्गर्भमाविशेत् ॥५०॥
पुरीषु च यथा काशी श्रेष्ठा विश्वेश्वरप्रिया। तथा पुरेषु च श्रेष्ठं सदैव हरिमन्दिरम् ॥५१॥
एतत्पुरं नृपश्रेष्ठ ! सदैव हरिवल्लभम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सेवनीयं सदा नृभिः ॥५२॥
शृणु राजन् महाभाग ! कथां पापप्रणाशिनीम्। गङ्गाया दक्षिणे चास्या गोमतीतीर्थमुत्तमम् ॥५३॥

हो गये, वह ब्राह्मण भी अपने स्थान को चला गया।३९। श्रद्धासहित एकाग्रचित से जो इस पवित्र कथा को सुनता है, वह जन्म भर कमाये हुए पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है।४०। भविष्यगङ्गा का नाम लेने ही से सहस्रों जन्मों के संचित पाप तत्क्षण क्षीण हो जाते हैं।४१। नारद ने कहा—ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरुस्त्री गमन—ये चार महापाप हैं और इन चारों महापापियों से सम्बन्ध रखना भी महापाप है। गर्भ गिराना, माता-पिता की हत्या, विश्वासघात, विष देना, उपकार न मानना, गोहत्या, गुरु का धन हरण करना ये उपपातक हैं, इन सब पापों का करने वाला भी यदि हरिमन्दिर सम्भल में मर जाय तो इन पापों से मुक्त हो जाये।४२, ४३, ४४' फिर वह दिव्य वस्त्र, आभूषण धारण किये हुए, सैकड़ों अप्सराओं से भरे हुए विमान में बैठकर देवताओं के नन्दन आदि वनों में विहार करता है और दिव्य भोगों को भोगता है। यहाँ अपने पितरों का श्राद्ध करते समय जितने अन्न कण और जल कण उपयोग में आते हैं, उतने ही वर्षों तक उसके पितरों की तृप्ति होती है।४५, ४६, ४७। गया में पिण्ड देने से जैसी पितरों की तृप्ति होती है, वैसी ही सम्भल में पिण्डदान से होती है।४८। हे राजन् ययाते ! अधिक क्या कहें, सार बात सुनो, संशय नहीं करना चाहिए, संशय से सब निष्फल हो जाता है।४९। भविष्यगंगा में नहाकर, हरिमन्दिर का का दर्शन करके कीकट (मृत्यु के लिए निषिद्ध देश) में भी मरने पर फिर गर्भ में नहीं जाना पड़ता।५०। पुरियों में जैसे काशी शङ्कर भगवान् को प्रिय हैं, पुरों में सम्भल भी शङ्कर भगवान् को उतना ही प्रिय है।५१। हे श्रेष्ठ राजन् ! यह सम्भल जितना शङ्कर भगवान् को प्रिय हैं, उतना ही विष्णु भगवान् को भी प्रिय है, इसलिए प्रयत्न करके भी सम्भल का सेवन करना उचित है।५२। हे राजन् ! अब एक और पापनाशिनी कथा सुनिये, भविष्य

तस्योत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया । प्रागेव विमलातीर्थात् प्राकट्यं प्राप गोमती ।।५४।।
भविष्यगङ्गागोमत्योः सङ्गमो मोक्षकारणम् । देहत्यागोऽत्र वै दानं देहत्यागोऽत्र वै तपः ।।५५।।
देहत्यागोऽत्र वै योगो गोमत्याः सङ्गमे शुभे । पापं स्वं हेलया त्यक्त्वा गच्छेद्विष्णोः परं पदम् ।५६।
इत्यर्थे कथयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । आश्चर्यकारि परमं गोमतीभक्तिवर्द्धनम् ।।६७।।
पुष्पभद्रातटे कश्चित् सर्वबन्धुसमन्वितः । वणिङ् नाम्ना विश्वपालः पितृभक्तिसमन्वितः ।।५८।।
पुण्यमार्गार्जितधनो धनैः सन्तोषितद्विजः । समन्वितोऽपि सम्पत्त्या विनयानतकंधरः ।।५९।।
गुणाकरोऽपि गुणिषु ह्रीणः स्वगुणवर्णने । रूपसम्पदुदारोऽपि परदारपराङ्मुखः ।।६०।।
अदरिद्रोऽपि मेधावी सोऽभूत् पापदरिद्रधीः । तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित् कालपर्ययात् ।।६१।।
जननी निधनं प्राप्ता जरया भृशमातुरा । यया तु यौवनं प्राप्य स्वपतिः परिवञ्चितः ।।६२।।
दिनत्रिचतुरस्थायि या नारी प्राप्य यौवनम् । भर्तारं वञ्चयेन्मोहात्साऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।।६३।।
विश्वपालोऽपि धर्मात्मा मातृभक्तिपरायणः । मातुरस्थीनि गङ्गायां समर्पयितुमुद्यतः ।।६४।।
पञ्चगव्येन संस्नाप्य ततः पञ्चामृतेन च । ततः सुरभिवस्त्रेण माञ्जिष्ठेन च वाससा ।।६५।।
बद्ध्वा ताम्रमये पात्रे रक्षित्वा तानि सादरम् । पाथेयसहितो गङ्गां जगाम मनसा स्मरन् ।।६६।।
अस्पृष्टहीनजातिः स पदातिः स्थण्डिलेशयः । मध्येमार्गं परिश्रान्तो भारं वोढुं न चक्षमे ।।६७।।
भारवाहकमादाय तस्मै दत्वोचितां भृतिम् । स ययावन्यमार्गेण शीघ्रं प्राप्तश्च जाह्नवीम् ।।६८।।
प्राप्यान्तरं भारमध्यात् स लोभी भारवाहकः । ताम्रपात्रे धनं ज्ञात्वा युक्त्या तत्पात्रमग्रहीत् ।६९।।

गङ्गा के दक्षिण भाग में गोमती तीर्थ है ।५३। विश्वकल्याण की इच्छा से मैं तुम्हें वताता हूँ कि गोमती विमला से भी पूर्व प्रकट हुई है ।५४। भविष्यगंगा और गोमती का सङ्गम मोक्ष का हेतु है, यहाँ देह के छूट जाने मात्र से दान का और तप का फल मिल जाता है ।५५। गोमती के सङ्गम में देह के छूट जाने से योग का फल मिल जाता है । यहाँ मरने पर सभी पापों के छूट जाने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है ।५६। यहाँ का एक वड़ा आश्चर्यजनक पुराना इतिहास है, इसके सुनने से गोमतीतीर्थ के प्रति भक्ति वढ़ती है ।५७। पुष्पभद्रा नदी के तट पर कोई विश्वपाल नाम का वैश्य रहता था, वह अपने माता-पिता का भक्त था ।५८। वह धनी होने पर भी नम्र था । पुण्यमार्गों से धन कमाकर उसने ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया था, गुणी होकर भी अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जित होता था, सुन्दर होने पर भी वह परायी स्त्रियों को नहीं देखता था, दरिद्रता के लिए ही उसके यहाँ दरिद्रता थी, इस प्रकार रहते हुए समयानुसार उसकी बुढ़िया माँ मर गई, वह अपनी युवावस्था में अपने पति को धोखा दिया करती थी ।५९, ६०, ६१, ६२। जो स्त्री ३-४ दिन टिकने वाली युवावस्था को पाकर अपने पति को ठगती है, वह अक्षय नरकों में जाती है ।६३। माता का भक्त धर्मात्मा विश्वपाल अपनी माता की हड्डियों को गंगा में अर्पण करने की तैयारी करने लगा ।६४। उसने प्रथम पञ्चगव्य से उन हड्डियों को स्नान कराया, फिर पञ्चामृत से स्नान कराकर मंजीठ से रंगे हुए सुगन्धित वस्त्र में लपेटकर उन्हें तांवे के बर्तन में रख लिया, फिर यात्रा के योग्य वस्तुओं को साथ लेकर वह गंगाजी का स्मरण करता हुआ चल पड़ा ।६५, ६६। हीन लोगों के स्पर्श से वचता हुआ वह पैरों चलकर मार्ग में पृथ्वी पर ही शयन करता हुआ इतना थक गया था कि बोझ लेकर चलने की सामर्थ्य उसमें न रही ।६७। उचित मूल्य पर किसी बोझा ले जाने वाले को नियुक्त कर वह वैश्य किसी और मार्ग से शीघ्र चलकर गंगाजी पर आ पहुँचा ।६८। बोझ ले जाने वाले ने अवसर पाकर ताम्रपात्र में धन समझकर उसको युक्ति से निकाल लिया ।६९। फिर वैसे ही ठीक बाँधकर वह बोझा उसने

भारं तथैव सन्धाय स तस्मै वणिजे ददौ। आपृच्छ्य च नमस्कृत्य प्रतस्थे त्वरया गृहम् ॥७०॥
तस्मिन् गते विश्वपालः कृत्वावश्यकमैक्षत। सम्भारं न तु तन्मध्ये ताम्रपात्रं ददर्श सः ॥७१॥
हा ! हेत्यताडयद्वक्षश्चक्रन्द बहुशो भृशम्। अकृत्वा जाह्नवीस्नानं पृष्ठतोऽनुससार तम् ॥७२॥
दृष्ट्वास्थिनिचयं पात्रे भारिकोऽपि स विव्यथे। प्रक्षिप्य तानि तत्रैव विमना गृहमाययौ ॥७३॥
विश्वपालो गृहं प्राप्य भारवाहस्य निःश्वसन्। उच्चैराक्रन्दमाक्रन्दमाजुहाव मुहुर्मुहुः ॥७४॥
दृष्ट्वाथ चैलशकलं तृणकुट्यन्तरे तदा। गृहीवा किञ्चिदाश्वस्य तत्पत्नीं परिपृष्टवान् ॥७५॥
सत्यं ब्रूहि न भेतव्यं दास्याम्यन्यद्धनं बहु। श्रीमति ! क्वास्ति ते भर्ता मातुरस्थीनि मेऽर्पय ॥७६॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य लज्जितो भारवाहकः। पुरस्ताद् विश्वपालस्य तस्थावानतकन्धरः ॥७७॥
न्यवेदयच्च तद्वृत्तं याथातथ्येन भारिकः। जगामान्वेष्टुमेतेन सह यत्राक्षिपद् भुवि ॥७८॥
चिरमन्वेषमाणोऽपि नावापास्थीनि तानि सः। पश्चाद्धताशः स्वगृहं प्रययौ भारवाहकः ॥७९॥
वैश्यस्तु बहु बभ्राम लिप्सयास्थ्नामितस्ततः। न समासेदिवान् किन्तु तल्लक्ष्मापि स कुत्रचित् ।८०।
क्षुत्क्षामः शुष्ककण्ठौष्ठो विललापातिदुःखितः ! क्व सन्त्यस्थीनि मे मातुः केन नीतानि हा ! कथम्।
जीवेयं तानि गङ्गायामर्पणीयानि वा कथम् ! कथं वा मृत्युरेतस्माद् दुःखान्मां मोचयेदपि।८२।
इत्येवं चिन्तयन् मर्तुमुद्यतः स परिभ्रमन्। विमलायाश्च गोमत्याः सङ्गमस्थलमाप्तवान् ॥८३॥
तत्र स्नात्वैव शुश्राव वाणीमाकाशगामसौ। शृणु भो वैश्यदायाद ! माता ते स्वर्गति गता ॥८४॥
तत्र धर्मात्मनः पुण्यैरत्रायातः स भारिकः। धनालाभेन कुपितश्चिक्षेपास्थीनि सङ्गमे ॥८५॥

विश्वपाल को सौंप दिया और उससे विदा लेकर उसको प्रणाम करके शीघ्रतातूर्वंक अपने घर की ओर चल पड़ा ।७०। उसके चले जाने पर किसी आवश्यक कार्य से निवृत्त होकर जब उसने अपना सामान देखा तो उसमें ताम्रपात्र नहीं था ।७१। अब तो छाती पीटने लगा और हाय-हाय करके चिल्लाता हुआ बिना गंगा नहाए उस भारवाहक के मार्ग पर चल पढ़ा ।७२। भारवाहक भी ताम्रपात्र में हड्डियाँ देखकर दुःखी हुआ और उन्हें वहीं फेंककर अपने घर चला गया ।७३। विश्वपाल भी उस भारवाहक के घर पहुँचकर चिल्ला-चिल्ला कर उसे बुलाने लगा ।७४। इतने में ही विश्वपाल को फूँस की कुटी में उर्सा हुआ हड्डियों वाला कपड़ा दिखायी दिया, उसे लेकर उसने भारवाहक की स्त्री से पूछा ।७५। हे श्रीमति ! तुम्हारे पति कहाँ हैं ? मेरी माता की हड्डियाँ मुझे दे दो, सच बोलो, डरो मत, मैं तुम्हें और भी बहुत धन दूँगा ।७६। विश्वपाल के इन वाक्यों को सुनकर वह भारवाहक गर्दन झुकाये हुए उसके सामने आकर खड़ा हो गया ।७७। सब बात ठीक-ठीक बताकर वह भारवाहक विश्वपाल के साथ उस स्थान को चला, जहाँ उसने वे हड्डियां फेंक दी थीं ।७८। किन्तु बहुत समय तक ढूँढने पर भी जब हड्डियाँ न मिलीं तो वह भारवाहक निराश होकर अपने घर को चला गया ।७९। विश्वपाल तो फिर भी उन हड्डियों के मिलने की आशा से इधर-उधर घूमता ही रहा किन्तु उनका चिह्न तक भी कहीं नहीं दिखाई दिया ।८०। अन्त में अत्यन्त दुःखी होकर वह विश्वपाल विलाप करने लगा। भूख से और प्यास से उसका गला और होंठ सूख गये थे, हाय ! अब मैं कैसे जीवित रहूँ ! अब मैं अपनी माता की हड्डियाँ गंगा में कैसे अर्पण करूँ, वे कहाँ हैं ! उन्हें कौन ले गया, मृत्यु देवता ही अब मुझे इस दुःख से छुड़ावें ।८१, ८२। इस प्रकार सोचता हुआ मरने के लिए तत्पर होकर घूमता हुआ वह विमला और गोमती के सङ्गम में आ पहुँचा ।८३। सङ्गम में स्नान करते ही उसने आकाशवाणी सुनी, हे वैश्यपुत्र ! सुन, तेरी माता स्वर्ग में है ।८४। तुझ धर्मात्मा के पुण्यों से हीं वह भारवाहक इधर आया, धन के न मिलने से क्रोध में आकर उसने तेरी

मातापि त्वादृशं पुत्रं लेभे पुण्यैः पुराकृतैः। तव तस्याश्च पुण्यानां सङ्गमोऽत्रास्ति सङ्गमे ॥८६॥
तदस्थ्नां पातने हेतुरिति बुद्ध्वा शुचं त्यज। जन्मन्यस्मिन् कृतैः पापैर्मुक्ताभूज्जननी तव ॥८७॥
अत्रत्यजलसंस्पर्शो दहत्येनांसि भूरिशः। निवासस्त्वत्र गोमत्यां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥८८॥
गोमतीमवगाहार्थं गच्छतस्तु पदे-पदे। निराशानि व्रजन्त्येव पापान्यस्य शरीरतः ॥८९॥
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्लोभमोहादिवर्जितः। व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गोमतीमेति पुण्यवान् ॥९०॥
तार्क्ष्येक्षणाद्यथा सर्पाः मेघा वातहता यथा। तत्त्वज्ञानाद्यथा मोहः सिंहं दृष्ट्वा यथा मृगाः ॥९१॥
सूर्योदये तमांसीव रोगा धन्वन्तरेर्यथा। पापानि विलयं यान्ति गोमतीसेवनात्तथा ॥९२॥
किमष्टाङ्गेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः। हरिमन्दिरसेवैव ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥९३॥
श्रद्धा धर्मपदं शुद्धं श्रद्धा ज्ञानं परं तपः। श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया सम्प्रसीदति ॥९४॥
धेनुं च गोमतीतीरे सुशीलां च पयस्विनीम्। वासोरत्नैरलंकृत्य ब्राह्मणाय ददाति यः ॥९५॥
यावन्ति तस्या रोमाणि मातृभक्त ! भवन्ति वै। तावद्वर्षसहस्राणि स स्वर्गसुखभाग्भवेत् ॥९६॥
इत्युक्त्वान्तर्हितां वाणीं स वैश्यो हृदयङ्गमाम्। विसिष्मिये सुखं लेभे शृण्वन्निव पुनः पुनः ॥९७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥

माता की अस्थियाँ यहाँ सङ्गम में फेंक दीं।८५। पूर्वजन्म में किये हुए पुण्यों के प्रभाव से ही तेरी माता को तुझ जैसा पुत्र मिला, तेरे और तेरी माता के पुण्य मिलकर उस भारवाहक को यहाँ गोमती और भविष्यगंगा के सङ्गम में ले आये, यहाँ अस्थियों के गिर जाने से तेरी माता के इस जन्म के सव पाप छूट गये हैं।८६, ८७। यहाँ के जल का स्पर्श ही पाप समूहों के जलाने वाला है, गोमती के तट का निवास ब्रह्मज्ञान का कारण है।८८। स्नान के लिए गोमती को जाने वाले के शरीर से पद-पद पर पाप निराश होकर निकलते चले जाते हैं।८९। पूर्वजन्म के पुण्यों के प्रभाव से ही कोई धर्मात्मा लोभ, मोह से छूटकर दिघ्नों को रगड़ता हुआ गोमती पर आता है।९०। गरुड जी के दर्शन से सर्पों के समान, वायु के वेग से मेधों के समान, तत्त्वज्ञान से मोह के समान, सिह को देखकर मृगा के समान, सूर्योदय होने पर अन्धकार के समान धन्वतरि भगवान् की कृपा से रोगों के समान गोमतीतीर्थ का सेवन करने से पापों का विलय होता है।९१, ९२। अष्टाङ्गयोग, तप और यज्ञों का परिश्रम झेलने की कोई अपेक्षा नहीं है, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए हरिमन्दिर की सेवा ही पर्याप्त है।९३। श्रद्धा ही धर्म का परम स्थान है ज्ञान; तप, स्वर्ग, मोक्ष सब कुछ श्रद्धा ही है। श्रद्धा ही परमानन्द है।९४। हे माता के भक्त ! विश्वपाल वैश्य ! । गोमती के तट पर किसी योग्य ब्राह्मण के लिए वस्त्राभूषणों से सजाकर दूध देने वाली और सुशील गौ का जो दान करता है, गौ के रोमों की संख्यानुसार उतने ही वर्षों तक वह स्वर्ग में रहता है।९५, ९६। इतना कहकर आकाशवाणी चुप हो गयी, किन्तु आकाशवाणी के यह शब्द उस वैश्य के हृदय में वैठ गये थे, वह उन्हें फिर भी बार-बार सुन सा रहा था, विस्मय के साथ सुख भी उसको अपार हो रहा था।९७।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का त्रयोदश अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

नारद उवाच—

श्रृणु राजन् ! कथामेतां सर्वपातकघातिनीम् । अशेषविघ्नशमनीं सर्वश्रेयोऽभिवर्द्धिनीम् ॥१॥
गोमत्या दक्षिणे भागे पवित्रं पापनाशनम् । तीर्थं गोदावरीनाम्ना प्रसिद्धं हरिमन्दिरे ॥२॥
किं स्नात्वा बहुतीर्थेषु किं कृत्वा दुष्करं तपः । गोदावर्यां यदि स्नाताः कुतो गर्भमयं ततः ॥३॥
कृतसन्ध्यादिनियमः सन्तर्प्यात्र पितामहान् । मुक्तः समस्तपापेभ्यो नेक्षते भास्करेः पुरीम् ॥४॥
गोदावरीपूर्वं भागे भारतीतीर्थमुत्तमम् । कृतोदकक्रियस्तत्र नरस्तरति दुर्गतिम् ॥५॥
मनुष्याः कर्मभिर्बद्धाः कथं स्युर्मोक्षगामिनः । सञ्चिन्त्यैतद्धरिस्तीर्थं शम्भले निरमापयत् ॥६॥
एतत्तीर्थप्रभावं हि हरिर्जानाति नेतरः । ब्रह्मस्तवं जपन्नत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥
श्रावणस्य चतुर्दश्यामुपोष्यात्र यथाविधि । रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः स्नात्वा विधानतः ॥८॥
प्राप्नुवन्त्यमलं ज्ञानं यत्र कुत्रापि चेन्मृताः । पञ्चरात्रं स्थिताश्चात्र देवीं पश्यन्ति भारतीम् ॥९॥
भारत्युत्तरदिग्भागे ततः कूपो रसोदकः । आषण्मासं पयः पीत्वा ज्ञानवान् जायते नरः ॥१०॥
याम्यां दिश्यस्य कूपस्य रेवाकुण्डं मनोरमम् । असङ्ख्याता गताः सिद्धिं तीर्थस्यैतस्य सेवनात् ।११।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि तेषु स्नानेन यत्फलम् । तत्फलं प्राप्नुयान्मर्त्यः स्नात्वा रेवामहाम्भसि ।१२।
रेवातीर्थे महाक्षेत्रे यत्र साक्षाद् वसेद्धरिः । तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति ॥१३॥

नारद बोले—हे राजन् ! सभी पातकों की हत्या करने वाली, विघ्नों का शेष न रहने देने वाली, कल्याण के साधनों को जुटाने वाली और एक कथा सुनिये ।१। गोमती के दक्षिण में गोदावरी तीर्थ है, हरिमन्दिर-सम्भल में यह पापनाशक पवित्र तीर्थ प्रसिद्ध है ।२। बहुत तीर्थों में स्नान करने की और कठोर तप करने की कोई आवश्यकता नहीं है, गोदावरी में स्नान कर लेने वालों को गर्भवास का कोई भय नहीं रहता ।३। यहाँ सन्ध्या तर्पण करके समस्त पापों से मुक्त हुआ फिर यमराज की पुरी का दर्शन नहीं करता ।४। गोदावरी से पूर्व में भारती तीर्थ है, यहाँ स्नान, सन्ध्या, तर्पण कर लेने वालों की दुर्गति नहीं होती ।५। कर्मों से बँधे हुए मनुष्यों को मोक्ष कैसे हो ? यह सोचकर ही भगवान् विष्णु ने यह तीर्थ बनवाया है ।६। भगवान् विष्णु ही इस तीर्थ की महिमा को समझते हैं, यहाँ वेदपाठ और गायत्री जपने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।७। श्रावण मास की चतुर्दशी में यहाँ उपवास, रात्रिजागरण, प्रातः स्नान का नियम लेकर पाँच रात्रियाँ बिताने पर भारती सरस्वती देवी का दर्शन हो जाने से निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है, फिर कहीं भी मरने पर पुनर्जन्म नहीं होता ।८, ९। भारती से उत्तर में रसोदक कूप है, छह महीने तक नियमपूर्वक इसका जल पीने से ज्ञान प्राप्त होता है ।१०। रसोदक कूप के दक्षिण में रेवाकुण्ड है, इस रेवा तीर्थ के सेवन से असंख्य लोगों को सिद्धि मिली है ।११। यहाँ स्नान कर लेने से सभी तीर्थों के स्नान का फल मिल जाता है ।१२।

रेवातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च हरिमन्दिरम् । मुच्यते कलुषैः सर्वैरपि जन्मशतार्जितैः ॥१४॥
आश्वयुक्कृष्णपञ्चम्यां ब्राह्मणान् पञ्च भोजयेत् । तांस्तथा तर्पयेत् सम्यक् यथा ते दद्युराशिषः ।
श्रावणस्य तृतीयायां स्नात्वा रेवाह्रदे शुभे । सप्तकृत्वः परिक्रम्य याति ब्रह्म सनातनम् ॥१६॥
प्रतिमासं तृतीयायां बुधवारो यदा भवेत् । द्रष्टुमायान्ति तीर्थानि तदा श्रीहरिमन्दिरम् ॥१७॥
अत्याश्चर्यकरं चान्यत् पावनं पापनाशनम् । रेवातीर्थस्य माहाम्त्यं शृणु श्रेयोविवर्धनम् ॥१८॥
पूजनीयापूजनीयनामानौ भाग्यशालिनौ । कौचिच्चटकजातीयौ न्यूषतुर्हरिमन्दिरे ॥१९॥
प्रातः सायं च मध्याह्ने कुर्वन्नित्यं प्रदक्षिणम् । उड्डीयमानं युगलं परितो हरिमन्दिरम् ॥२०॥
रजः प्रासादसँल्लग्नं पक्षाभ्यां मार्जयच्च तत् । चञ्चूर्यमाणं व्यचरत् पिबद्रेवाजलं शुचि ॥२१॥
अथ देवालयस्कन्धे गवाक्षान्तर्गतौ च तौ । श्येनेन केनचिद्दृष्टौ दम्पती प्रीतिसंयुतौ ॥२२॥
अवतीर्याम्बरात् सद्यो गृहे तस्मिन् विवेश सः । ततो विलोकयामास तदागमविनिर्गमौ ॥२३॥
पतत्रिणोरिह स्थाने विशेयं केन कर्मणा । कथं युगपदेवैतौ मम ग्राह्यौ भविष्यतः ॥२४॥
दुर्बलोऽप्याकलयितुं सहसारिर्न शक्यते । दुर्गस्थो नाभिभूयेत विपक्षः केनचित्क्वचित् ॥२५॥
चिन्तयन्तं विलोक्यैनं जिघृक्षुं चटकप्रिया । उवाच वचनं साध्वी पतिशुश्रूषणे रता ॥२६॥
प्रिय ! प्राणेश्वर ! प्राज्ञ ! सर्वकालसुखावह ! । किं त्वया दृश्यते नायमावयोः प्रबलो रिपुः ॥२७॥
पूजनीयावचः श्रुत्वा पूजनीयः स तत्पतिः । सावज्ञं तत्र का चिन्तेत्युवाच पुरुषोचितम् ॥२८॥

विष्णु भगवान् यहाँ प्रत्यक्ष हैं, इस महाक्षेत्र में श्राद्ध के वाद गया में जाना आवश्यक नहीं है ।१३। यहाँ स्नान और हरिमन्दिर-दर्शन करके मनुष्य सैंकड़ों जन्मों के पापों से भी मुक्त हो जाता है ।१४। आश्विन कृष्ण पञ्चमी में पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा आदि से इस प्रकार सन्तुष्ट करे कि वे स्वयं शुभाशीर्वाद दें ।१५। श्रावण मास की तृतीया के दिन रेवातीर्थ में स्नान और इस तीर्थ की सात परिक्रमा कर लेने से सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।१६। किसी भी महीने की तृतीया में बुधवार का योग होने पर श्री हरिमन्दिर सम्भल का दर्शन करने के लिए सभी तीर्थ यहाँ आते हैं ।१७। अत्यन्त आश्चर्यजनक पवित्रतासम्पादक पापनाशक कल्याणवर्धक रेवा तीर्थ का और भी माहात्म्य सुनिये ।१८। पूजनीया और पूजनीय नाम वाले कोई भाग्यशाली चिड़िया और चिरौंटा हरिमन्दिर में रहते थे ।१९। चिड़िया चिरौंटे का वह जोड़ा दिन भर हरिमन्दिर के चारों ओर उड़ उड़ कर परिक्रमा लगाता हुआ पंखों से मन्दिर की धूल उड़ाता हुआ रेवा का पवित्र जल पीता हुआ विचरता रहता था ।२०, २१। एक वार देवालय की खिड़की में प्रसन्न वैठे हुए इन दोनों पर किसी बाज की दृष्टि पड़ गई ।२२। तत्क्षण आकाश से उतर कर वह देवालय में घुस गया और दोनों के निकलने के मार्ग को देखने लगा ।३३। सोचने लगा कि एक साथ इन दोनों को कैसे पकड़ूँ ? किस उपाय से इनके पास पहुँचू ? दुर्ग में सुरक्षित वैठे हुए दुर्बल शत्रु पर भी सहसा आक्रमण नहीं किया जा सकता ।२४, २५। ऐसा सोचते हुए पकड़ने को तत्पर उस वाज को देखकर सदा पति के अनुकूल रहने वाली चिड़िया अपने पति से वोली ।२६। हे प्रिय ! आप मेरे प्राणों के ईश्वर हैं, मुझे हर समय आप से सुख ही मिलता है, आप बहुत समझदार भी हैं, हम दोनों के प्रबल शत्रु इस वाज को क्या आप नहीं देख रहे हैं ।२७। पूजनीया की वात सुनकर उसका पति पूजनीय उपेक्षा दिखाता हुआ पुरुष जाति के योग्य वचन वोला कि मुझे क्या

कति नाम न सन्तीह सुभगे ! व्योमचारिणः। कति वा न विशन्तीह विश्रान्त्यै देवमन्दिरे ॥२९॥
तेभ्यो यदि हि भेतव्यं दुःखमेव भवेद् वृथा । रमस्व त्वं मया सार्धं त्यज चिन्तामिमां शुभे ॥३०॥
अस्य श्येनवराकस्य गणनापि न मे हृदि। किं करिष्यत्यसौ भद्रे ! मम व्योमविहारिणः ॥३१॥
इत्थं प्रियेरितं वाक्यं श्रुत्वा सा चटकप्रिया। मौनमालम्ब्य पश्यन्ती तस्थौ तच्चरणाम्बुजम् ॥३२॥
अन्येद्युः पुनरायातो बुभुक्षुः स शशादनः। प्रियया पुनरुक्तोऽपि चटकोऽनादरं दधौ ॥३३॥
दिनेष्वेवमतीतेषु चटकः साहसप्रियः। केनचित् कालयोगेन श्येनस्य वशमाययौ ॥३४॥
पादाभ्यां चटकं बद्ध्वा चञ्च्वा तां चटकामपि। भक्षणस्थानमन्वेष्टुं श्येनो व्योम्न्युदडीयत ।३५॥
संस्थितो दक्षिणे द्वारे समया हरिमन्दिरम्। क्षुधितस्तृषितः श्येनो भक्षयामास तावुभौ ॥३६॥
रेवातटे समुत्सृज्यास्थीनि श्येनः सुखं ययौ। मुक्तिक्षेत्रप्रभावेण तौ गतावुत्तमां गतिम् ॥३७॥
मन्दारदामतनयो नाम्ना परिमलालयः। बभूवावन्त्यधिपतिर्नानाविद्याविचक्षणः ॥३८॥
हिमालयोपत्यकासु सोमदीपस्य मन्दिरे। पूजनीयापि सा जाता नाम्ना रेवतिका शुभा ॥३९॥
सा तु बाल्ये व्यतिक्रान्ते किञ्चित्प्रकटयौवना। स्वकीयं पितरं दृष्ट्वा हरिमन्दिरमस्मरत् ॥४०॥
क्षणादुद्बुद्धसंस्कारा हरिमन्दिरमस्मरत्। हरेराराधनामेव निश्चिक्ये क्षेमकारणम् ॥४१॥
देशकालौचितीं बुद्ध्वा सखीद्वयसमन्विता। रहस्युवाच पितरमाज्ञप्तुं हरिभक्तये ॥४२॥
समस्तपुण्यनिलयः समस्तार्थप्रसाधकः। निवासः शम्भलग्रामे पितः ! पुण्योदयो महान् ॥४३॥
तस्मादहं तपः कर्तुं गन्तुमिच्छामि शम्भलम्। प्रीत्या पूर्णे मया सार्धं सख्यावेते गमिष्यतः ॥४४॥

चिन्ता है।२८। हे सौभाग्यवती ! आकाश में उड़ते-उड़ते थक कर कितने पक्षी इस देवमन्दिर में विश्राम नहीं लेते।२९। यदि इनसे डरते रहेंगे तो यौवन दुःखमय हो जाएगा, इसलिये इस चिन्ता को छोड़ो, मेरे साथ सानन्द रहो।३०। हे शुभ लक्षणों वाली प्रिये ! यह वेचारा बाज मेरा क्या कर सकता है, मैं भी उड़ना जानता हूँ।३१। अपने पति के इन वाक्यों को सुनकर पतिप्राणा वह चिड़िया अपने पति के चरण कमल को निहारती हुई चुप हो गई।३२। अगले दिन वह भूखा बाज फिर आ गया, चिड़िया के समझाने पर भी वह चिरौटा उपेक्षा करता रहा।३३। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद वह चिरौटा बाज के पञ्जों में फँस गया।३४। पैरों में चिरौटे को और चोंच में चिड़िया को जकड़ कर खाने की जगह ढूँढने के लिए वह बाज आकाश में उड़ने लगा।३५। हरिमन्दिर के दक्षिण द्वार के समीप वैठकर उस भूखे प्यासे बाज ने दोनों को खा लिया।३६। उनकीं हड्डियों को रेवा के तट पर फेंक कर बाज तो आकाश में उड़ गया और मुक्तिक्षेत्र के प्रभाव से इन दोनों को उत्तम गति प्राप्त बुई।३७। मन्दारदाम का पुत्र परिमलालय नाम से प्रसिद्ध यह चिरौंटा अवन्ती देश का राजा बना और अनेक विद्याओं में पारंगत हुआ।३८। हिमालय की तलहटी के किसी गांव में सोमदीप राजा के घर पूजनीया ने भी जन्म लिया, वहाँ उसका रेवतिका नाम पड़ा।३९। बचपन बीतने पर युवावस्था में पदार्पण करते ही उसने अपने पिता को भजन-पूजा करते देखा, तत्क्षण पिछले संस्कारों के जागते ही उसको हरिमन्दिर की स्मृति हुई, अव उसने कल्याण का कारण समझ कर हरिभजन का निश्चय किया।४०, ४१। देश-काल देखकर दो सखियों को साथ लेकर उसने एकान्त में अपने पिता से हरिभक्ति के लिए आज्ञा देने की प्रार्थना की।४२। हे पिताजी ! बड़े पुण्यों का उदय होने पर ही सम्भल ग्राम में निवास होता हे, पुण्यों का उदय होने से सभी मनोरथ यहाँ पूर्ण होते हैं।४३। इसलिये मैं तपस्या करने के लिये सम्भल जाना

श्रुत्वा रेवतिकावाक्यं प्रससाद पिता भृशम् । पुत्रीमाज्ञप्तवान् गन्तुमन्यच्चान्वशिषद् बहु ॥४५॥
तिस्रस्ताः कन्यकाः प्रीताः श्रीहरिं द्रष्टुमुत्सुकाः । पितुः शासनमादाय शीघ्रं शम्भलमभ्यगुः ॥४६॥
अल्पाहाराः फलाहारा निराहारा दिने दिने । रेवाजले त्रिषवणं कुर्वन्त्यश्चिरमाश्रिताः ॥४७॥
प्रत्यग्रै स्तुलसीपत्रैः कुसुमैश्च सुगन्धिभिः । सुविचित्राणि माल्यानि परिगुम्फ्यार्पयन् विभुम् ॥४८॥
तिस्रोऽपि गानं गायन्त्यो नृत्यन्त्यो भावविह्वलाः । प्रावर्तयन्नश्रुनदीः पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥४९॥
एकदा माधवे मासि तृतीयायामुपोषिताः । रात्रौ जागरणं कृत्वा नृत्य-गीत-कथादिभिः ॥५०॥
प्रातश्चतुर्थ्यां रेवायां स्नात्वा तीरे व्यवस्थिताः । बबन्धुः परमात्मानं हृदये वृत्तिरश्मिभिः ।५१॥
तावत् प्रत्यक्षतां यातो हरिः कमललोचनः । अतसीपुष्पसङ्काशो मुकुटेन च मण्डितः ॥५२॥
पीतवासाश्चतुर्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः । बभूवुरवलोक्यैव सम्भ्रमापन्नमानसाः ॥५३॥
ववन्दिरेऽथ ता बाला ज्ञात्वा लक्ष्मीश्वरं हरिम् । तुष्टुवुश्च प्रहृष्टाङ्गाः प्रह्वीचक्रुः शिरांसि च ।५४।
जय भक्तजनाधीश ! चय भक्तभयापह ! । सत्तास्फूर्तिप्रदानेन जय सर्वावभासक ! ॥५५॥
विधिः सर्वविधिज्ञोऽपि न त्वां स्तोतुं विचक्षणः । त्वत्स्तुतौ कुण्ठिता नाथ ! वाचो वाचस्पतेरपि ।
वदन्ति वेदाः सर्वज्ञं तं त्वामीश ! यथार्थतः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥५७॥
चतुर्भुज ! नमस्तुभ्यं त्रिविष्टप ! नमोऽस्तु ते । इत्युक्त्वा शिरसा भूमौ प्रणिपेतुः कुमारिकाः ॥५८॥
अथोत्थाप्य कुमारीस्ताः प्रोवाच गरुडध्वजः । मन्दारदाम्नः पुत्रोऽस्ति नाम्ना परिमलालयः ।५९॥

चाहती हूँ, ये मेरी दोनों सखियाँ भी चलने को उत्कण्ठित हैं ।४४। पुत्री के इन वाक्यों को सुनकर पिता ने वहुत प्रसन्न होकर जाने की आज्ञा दे दी और भी अन्यान्य आवश्यक उपदेश दिये ।४५। श्री हरि के दर्शनों की उत्कट उत्कण्ठा से तीनों कन्याएँ पिता की आज्ञा लेकर शीघ्र ही सम्भल में आ पहुँची ।४६। प्रतिदिन रेवा के जल में तीनों काल स्नान करती हुईं क्रमश. अल्पाहार, फलाहार और फिर निराहार रहने लगीं ।४७। नवीन तुलसीपत्र और नवीन सुगन्ध वाले विविध पुष्पों से मालाएँ गूँथकर भगवान् के लिए अर्पण करती थीं ।४८। भक्तिभाव में विभोर होकर तीनों कन्याओं के शरीर रोमाञ्चित हो जाते थे और वे गाती नाचती आंसुओं की नदी को वहाया करती थीं ।४९। एक वार वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन उन्होंने उपवास किया, रात्रि में नृत्य-गीत कथा-भजन करते हुए जागरण किया, प्रातः चतुर्थी को रेवा में स्नान करके वहीं किनारे पर वैठ गईं और प्रेम की रस्सी से भगवान् को बाँध कर हृदय में विठा लिया ।५०, ५१। इतने ही में श्रीहरि उनके सम्मुख प्रकट हुए, अलसी के फूल के समान उनका श्रीविग्रह था, कमल दल के समान मधुर विशाल नेत्र थे, माथे पर मुकुट था, चार भुजाएँ थीं, कानों में मकराकृति कुण्डल जगमगा रहे थे, ये कन्याएँ श्रीहरि का दर्शन करके प्रथम तो आश्चर्य से चकित हो उठीं ।५२, ५३। तत्काल ही सावधान होकर, सिर झुकाकर लक्ष्मीपति भगवान् की स्तुति करने लगीं ।५४। भक्तों का भय भगाने वाले प्रभो ! आपकी जय हो, अपने भक्तजनों के सर्वस्व ! आपकी जय हो, अपनी पादनख प्रभा से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को प्रकाशित करने वाले ! आपकी जय हो ।५५। हे नाथ ! ब्रह्मा और बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ हैं ।५६। हे परमेश्वर ! वेद भी आपको सर्वज्ञ कहकर आपके स्वरूप का निरूपण करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। आपको अनेक बार नमस्कार है ।५७। हे चतुर्भुज ! हे स्वर्गाधिपते ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करती हुईं कन्याओं ने पृथ्वी पर अपना माथा टेक दिया ।५८। गरुडध्वज भगवान् ने उन्हें उठा कर कहा कि मन्दारदाम का पुत्र परिमलालय अभी यहाँ आने वाला

सर्वासामेव युष्माकं स एव भविता पतिः। सोऽप्यत्रायास्यति क्षिप्रं भवतीः परिणेष्यति ॥६०॥
अवन्त्यधिपतेस्तस्यानुगामिन्यः पतिव्रताः। सम्प्राप्स्यथ महोदारान् भोगानत्रैहलौकिकान् ॥६१॥
अस्मिँस्तीर्थजले स्वच्छे पञ्चम्यां शुक्रवासरे। सूर्ये चानुदिते स्नान्त्यो लप्स्यध्वे सुन्दरान् सुतान्।
तेषु राज्यं व्यवस्थाप्य पत्या धर्मात्मना सह। निर्विण्णाः कामभोगेषु तेषु मोक्षमवाप्स्यथ ॥६३॥
प्रसिद्धं तव नाम्नैव तीर्थमेतद् भविष्यति। चटका पूजनीया त्वमिहाभूः पूर्वजन्मनि।
चटकः पूजनीयस्ते पतिः परिमलालयः ॥६४॥
श्येनो हत्वा युवामत्र तीर्थेऽस्थीनि व्यसर्जयत्। युवाभ्यां तन्महिम्नैव प्राप्तेयं गतिरुत्तमा ॥६५॥
रेवा नाम्ना त्वमधुना राजकन्या बहुश्रुता ॥६६॥
रेवां सम्बोध्य भगवानित्युक्त्वान्तर्धिमाययौ। समागतश्च त्वरितं नृपः परिमलालयः ॥६७॥
कौमारकेऽप्यसौ विष्णुभक्तः परिमलालयः। नियमाँश्चापि जग्राह दुरारक्षाननात्मभिः ॥६८॥
पाणीन् जग्राह सर्वासाम् भोगांश्च बुभुजेऽखिलान्। पुत्रानासाद्य समये राज्यं तेभ्यः समादिशत् ।६९।
पत्नीभिस्तिसृभिः साधँ शम्भले हरिमन्दिरे। तपांसि तेपे लेभे चाप्युत्तमं वैष्णवं पदम् ॥७०॥
शम्भलग्राममाहात्म्यख्यापिकां यः कथामिमाम्।
शृणोत्याख्याति वा प्रेम्णा न पुनर्मर्त्यतामियात् ॥७१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥

है, उसी के साथ तुम तीनों का विवाह होगा ।५९' ६०। अवन्ती देश के उस राजा की आज्ञा में रह कर पतिव्रत को धारण किये हुए तुम्हें इस लोक के सर्वसुख प्राप्त होंगे ।६१। शुक्रवार पञ्चमी को सूर्योदय से पूर्व रेवातीर्थ के स्वच्छ जल मे स्नान करते रहने से तुम्हें सुन्दर पुत्रों की प्राप्ति होगी ।६२। उन पुत्रों पर राज्य का भार सौंपकर सांसारिक भोगों से विरक्त होकर फिर तुम सव आवागमन से छूट जाओगे ।६३। पूर्वजन्म में तू यहाँ हरिमन्दिर में रहने वाली एक चिड़िया थी, पूजनीया तेरा नाम था, पूजनीय नाम का तेरा पति चिरौंटा ही अव परिमलालय है ।६४। किसी बाज ने तुम दोनों को यहां मार कर तुम्हारी अस्थियाँ इस तीर्थ में डाल दीं। इस तीर्थ की महिमा से ही तुम दोनों को यह गति प्राप्त हुई है ।६५। अब इस जन्म में रेवा नाम से तुम विख्यात हो इसलिये तुम्हारे नाम से ही इस तीर्थ की प्रसिद्धि होगी ।६६। रेवा को यह सव वता कर भगवान् अदृश्य हो गये और वह राजा परिमलालय भी तुरन्त वहाँ आ गया ।६७। यह परिमलालय वचपन से ही विष्णुभक्त था, उन कठोर नियमों का पालन करता था जिन्हें साधारण लोग नहीं निभा सकते थे ।६८। इन तीनों कन्याओं के साथ उसने अपना विवाह किया। संसार के सभी सुख भोग कर समयानुसार पुत्रों को भी प्राप्त कर राज्य का भार भी उन पर सौंप दिया ।६९। हरिमन्दिर-सम्भल में अपनी तीनों रानियों के साथ उसने तप किया और विष्णु लोक के परम पद को प्राप्त किया ।७०। सम्भल ग्राम की इस महिमा को प्रेम से सुनने सुनाने वाले मनुष्य फिर मृत्युलोक में नहीं आते ।७१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का चतुर्दश अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

रेवाया दक्षिणे भागे धनुषां नवतीरितः। गोपालसंज्ञकं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
वंशवृद्धिकरं तीर्थं दक्षिणस्यां दिशि स्थितम्। योगक्षेमं सदा कुर्याद् हरिमन्दिरवासिनाम् ॥२॥
मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यां षष्ठ्यां वा शुक्रवासरे। विधाय वार्षिकीं यात्रां नरः पापैः प्रमुच्यते ॥३॥
कृतानि यानि पापानि नरैः संवत्सरावधि। नश्यन्ति क्षणतस्तानि वंशगोपालसेवनात् ॥४॥
स्नात्वा गोपालतीर्थेऽस्मिन् सन्तर्प्य पितृदेवताः। श्राद्धं विधाय विधिवत् पितॄणां तृप्तिमावहेत् ।५॥
अत्रेतिहासो यो वृत्तस्तं निशामय भूपते। विप्रोऽग्निदत्तो नाम्ना वै कश्चिदात्रेयवंशजः ॥६॥
आसीच्चारुशुभाचारः सर्वातिथिजनप्रियः। भार्याऽस्य सुषुवे कन्यां मूलर्क्षे प्रथमे पदे ॥७॥
वृषे स्थितोऽभवद्भौमस्तथा केन्द्रे बृहस्पतिः। ववृधे सा गृहे पित्रोः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥८॥
सुरूपा विनयाचारा पित्रोः प्रीतिविवर्द्धिनी। सुलक्षणेति नाम्नास्याः प्रसिद्धिः शुभलक्षणैः ॥९॥
विवाहयोग्यां तां ज्ञात्वा योग्यं वरमवेक्षितुम्। चिन्तयन्नेव पञ्चत्वं प्राप्तः कालवशं गतः ॥१०॥
तस्याः पतिव्रता माता पत्या सह दिवं ययौ। सुलक्षणातिदुःखार्ता बभूवैकाकिनी गृहे ॥११॥
धृत्या कथञ्चिदात्मानं संस्तभ्य सह बान्धवैः। समीचीनतया पित्रोरकरोदौर्ध्वदैहिकम् ॥१२॥
अथानाथा निमज्जन्ती दुस्तरे शोकसागरे। न च पारमपश्यन्ती शुशोच विललाप च ॥१३॥

रेवा से दक्षिण में ९० धनुष आगे वंशगोपाल तीर्थ हे यह भोग और मोक्ष दोनों का देने वाला है। सम्भल निवासियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला यह तीर्थ सम्भल के दक्षिण भाग में है, यह गोपाल तीर्थ वंशवृद्धि का हेतु है, इसलिए वंशगोपाल नाम से अधिक प्रसिद्ध है।२। अगहन शुक्ल पञ्चमी अथवा षष्ठी को शुक्रवार का योग होने पर वार्षिकी (प्रतिवर्ष) यात्रा करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।३। साल भर तक किये गये सभी पाप वंशगोपाल का सेवन करने से दूर होते हैं।४। इस गोपाल तीर्थ में स्नान करके तर्पण श्राद्ध करने से पितर तुष्ट होते हैं।५। हे राजन्! यहाँ का एक इतिहास भी आप सुनिये, अत्रि गोत्र का कोई अग्निदत्त ब्राह्मण था, सदाचारी और अतिथि सेवक था। मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में उसकी स्त्री ने एक कन्या को जन्म दिया। उस समय वृषराशि पर मंगल थे और केन्द्र में वृहस्पति थे। शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान वह बड़ी होने लगी।६, ७, ८। वह कन्या सुन्दर विनम्र और सुशीला थी, गृहकार्य में तत्पर और प्रसन्नचित्त रहती थी, माता पिता के प्रेम में वृद्धि करती थी। शुभ लक्षणों के कारण उसका नाम सुलक्षणा था।९। विवाह योग्य समझकर योग्य वर के अन्वेषण की चिन्ता में ही सुलक्षणा के पिता की मृत्यु हो गई।१०। उसकी पतिव्रता माता अपने पति के साथ सती हो गई। अब दुखिया सुलक्षणा घर में अकेली रह गई।११। किसी प्रकार धीरज रखकर सुलक्षणा ने बान्धवों की सहायता से माता पिता के मरणोत्तर किये जाने वाले सभी संस्कार अच्छी तरह सम्पादन किये।१२। इसके बाद शोक सागर

कथमेकाकिनी पित्रा मात्रा हीना भवाम्बुधौ। निमग्ना यापयिष्यामि जीवितं सुखवर्जितम् ॥१४॥
न कस्मैचिद्वरायाहं पितृभ्यां प्रतिपादिता। सर्वाभिलषितं स्त्रीत्वं धिगिदं पापबन्धनम् ॥१५॥
न चादत्ता कथं स्वैरमहं कंचित् वरं वृणे। इति सञ्चिन्तयन्ती सा रूपौदार्यगुणान्विता ॥१६॥
युवभिर्बहुभिर्नित्यं प्रार्थितापि मुहुर्मुहुः। तत्तदभ्यर्थनं नैव स्वीचकार दृढव्रता ॥१७॥
भगवानेव मां दद्यात् कस्मैचिच्चेद्वरं भवेत्। इति निश्चित्य सा बाला गोपालं शरणं ययौ ॥१८॥
हृदि बालमुकुन्दस्य ध्यायन्ती चरणाम्बुजम्। तपश्चक्रे विशालाक्षी हरिमन्दिरसन्निधौ ॥१९॥
तत्र प्रत्यहमागत्य क्रीडन् कश्चन बालकः। तृणपर्णादिकं किञ्चित् सायमस्यै प्रयच्छति ॥२०॥
तत्तीर्थोपात्तपानीयमानीयास्यै समार्पयत्। द्वादशेऽह्नि कृताहारा सा तु नैनमवैक्षत ॥२१॥
गते बहुतिथे काले बालकः स चतुर्भुजः। समाधिमीलिताक्षीं तामुवाच वरदो हरिः ॥२२॥
सुलक्षणे! प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय सुव्रते। चिरं खिन्नासि तपसा कस्तवास्ति मनोरथः ॥२३॥
हरेः सापि गिरं श्रुत्वा सुखपीयूषवर्षिणीम्। महासन्तापशमनीमुदमीलयदक्षिणी ॥२४॥
हरिं प्रत्यक्षमालोक्य वरदानोत्सुकं पुरः। लक्ष्मीं च वामभागस्थां प्रणनाम कृतांजलिः ॥२५॥
सर्वज्ञस्यास्य पुरतो वक्तुं शक्तिर्न मे मनाक्। त्रपापरवशा चाहं न याचिष्ये मनीषितम् ॥२६॥
परामृश्य मनस्येतत् प्राह विष्णुं सुमध्यमा। जानात्येव भवान् सर्वं किं ब्रवाणि कृपानिधे ॥२७॥
इति वाक्यं निशम्येशो लक्ष्म्या सस्मितमीक्षितः। सुलक्षणायां नितरां तुतोष प्रणतार्तिहा ॥२८॥

में डूबी हुई वह उसमें से निकलने का उपाय न सूझने पर विलाप करने लगी।१३। माता पिता के विना इस भवसागर में गोते खाती हुई मैं अकेली किस तरह अपना जीवन बिताऊँगी, अब मुझे सुख मिलने की आशा नहीं है।१४। माता पिता मेरा विवाह भी न कर पाए और चले गये, स्त्री शरीर को धिक्कार है कि इस पर सब कुदृष्टि डालते हैं, यह पापों की जड़ है।१५। जब मेरे माता पिता ने ही मुझे किसी के लिए नहीं सौंपा, तो मैं स्वेच्छा से किसी का वरण कैसे करूँ। इस दृढ़ निश्चय से उसने किसी भी पुरुष की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया।१६, १७। भगवान् ही किसी योग्य वर के लिए मुझे दें तो ठीक हो, ऐसा निश्चय करके वह इस गोपाल तीर्थ की शरण में आई।१८। विशाल नेत्रों वाली उस कन्या ने बालमुकुन्द के चरण कमलों को अपने हृदय में बिठा कर हरिमन्दिर के देवताओं को साक्षी बना कर कठिन तप आरम्भ किया।१९। प्रतिदिन सांयकाल खेलता हुआ कोई बालक इसके पास आकर फूल, पत्ते, दूर्वा, कुश आदि रख जाया करता था।२०। गोपाल तीर्थ का जल भी वह उसके पास रख जाया करता था। किन्तु यह कन्या तो १२ दिन तक नेत्रों को मूँदे हुए ध्यान मग्न रहती थी। १२वें दिन थोड़ा आहार करती थी इसलिए इस बालक को नहीं देख पाई।२१। इस प्रकार बहुत समय बीतने पर वह बालक भी चतुर्भुज श्री हरि के रूप में इसको वर देने के लिए प्रकट होकर समाधि में मुँदे हुए नेत्रों वाली इस कन्या से बोला।२२। हे सुलक्षणे! मैं तेरे कठोर नियमों को देखकर बहुत प्रसन्न हूँ, बहुत समय से तप करते हुए तेरा शरीर अब बहुत क्षीण हो गया है, तू क्या चाहती है। बड़े भारी शोक सन्ताप के शमन करने वाली अमृत बरसाने वाली सुखमयी श्रीहरि की वाणी को सुनकर उसने नेत्र खोले।२४। वरदान के लिए उत्सुक श्रीहरि को और उनके वाम भाग में लक्ष्मी जी को देख कर उसने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।२५। अपना मनोरथ प्रकट करते समय लज्जा भी मुझको आकर घेर रही है, सर्वज्ञ के आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।२६। मन से यह सब विचार कर उसने भगवान् से कहा कि हे कृपानिधे! आप सब कुछ जानते हैं, मैं अपने मुख से क्या कहूँ।२७। सुलक्षणा के इन वाक्यों

शुचिस्मितामवोचच्च वाचं सत्यामभीत्सिताम् । भवती यज्ञदत्तस्य ब्राह्मणस्य शतायुषः ।
शुभलक्षणयुक्तस्य धर्मपत्नी भविष्यति ॥२६॥
प्रेर्यमाणो मयाप्येष सायंकाले समेष्यति । स ते भविष्यति पतिरस्मिन् ग्रामे न संशयः ॥३०॥
भोगान् भुक्त्वा महोदारान् पुत्रान् प्राप्य महोत्तमान् । विस्तार्य विपुलां कीर्तिमन्ते मद्धाम यास्यथः ।
इति दत्वा वरान् देवस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः । सापि कन्या पतिं लेभे यज्ञदत्तं तपोनिधिम् ॥३२॥
तस्मात् सा सुषुवे पुत्रांस्त्रीन् हुताशनसन्निभान् । अतीवरूपसम्पन्नान् समस्तशुभलक्षणान् ॥३३॥
धर्ममार्गेण सम्प्राप्तान् भोगान् भुक्त्वा शतायुषौ । दम्पती पुनरेवान्ते ययतुः श्रीहरेः पदम् ॥३४॥
गोपालतीर्थमाहात्म्यं हरेः सान्निध्यकारकम् । मया ते कथितं सर्वमत्याश्चर्यकरं परम् ॥३५॥
अपत्यहीनः पुरुषः स्नायान्मासद्वयं यदि । तीर्थस्यास्य प्रभावेण पुत्रवान् भवति ध्रुवम् ॥३६॥
व्याधिभिर्नाभिभूयेत न दारिद्र्येण बाध्यते । महारोगाश्च नश्यन्ति स्नानेनात्रारुणोदये ॥३७॥
अस्मिंस्तीर्थवरे शुक्लपञ्चम्यां शुक्रवासरे । सूर्ये चानुदिते स्नातुर्वंशवृद्धिसुखं भवेत् ॥३८॥
सेवनादस्य तीर्थस्य वन्ध्या पुत्रवती भवेत् । कदाचिदपि नाप्नोति कष्टमिष्टवियोगजम् ॥३९॥
सेविका अस्य तीर्थस्य नार्यः सौभाग्यमाप्नुयुः । ददाति सर्वभक्तेभ्योऽभीष्टमत्र हरिः सदा ॥४०॥
श्रुत्वैतत्तीर्थमाहात्म्यं पञ्चम्यां शुक्रवासरे । नाकालमृत्युर्भवति यमलोकं न पश्यति ॥४१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥

को सुनकर तथा लक्ष्मी जी की प्रसन्नता को भी जानकर भक्तों का कष्ट निवारण करने वाले भगवान् बहुत प्रसन्न हुए ।२८। और उसके मन को भी प्रसन्न करने वाली पवित्र मुस्कान की स्वच्छता से सुशोभित वाणी बोले कि सर्वशुभलक्षण सम्पन्न दीर्घजीवी यज्ञदत्त ब्राह्मण की तुम धर्मपत्नी बनोगी ।२६। मेरी प्रेरणा से वह आज सांयकाल तक यहाँ सम्भल ग्राम में आ लेगा और वही तुम्हारा पति होगा ।३०। सब प्रकार के सुख भोगकर पुत्रों को प्राप्त कर अपनी कीर्ति फैलाकर अन्त में तुम दोनों पति पत्नी मेरे धाम में आओगे ।३१। इस प्रकार वरदान देकर भगवान् अदृश्य हो गये और उस कन्या को भी पति के रूप में यज्ञदत्त की प्राप्ति हुई ।३२। अग्नि के समान तेजस्वी तीन पुत्रों को उसने जन्म दिया, जो कि अत्यन्त सुन्दर और सभी शुभलक्षणों से सम्पन्न थे ।३३। धममार्ग से प्राप्त होने वाले भोगों को भोगकर वे दोनों स्त्री पुरुष श्रीहरि के धाम को चले गये ।३४। श्रीहरि के समीप पहुँचाने वाली गोपाल तीर्थ की आश्चर्यजनक महिमा मेंने आप को सुनाई ।३५। सन्तानहीन पुरुष दो महीने नियमपूर्वक यहाँ स्नान कर लेने पर अवश्य ही पुत्रवान् होता है ।३६। अरुणोदय के समय यहाँ नित्य स्नान करने वालों को रोग, महारोग और दरिद्रता नहीं सताती ।३७। किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में शुक्रवार का योग होने पर सूर्योदय से पूर्व ही यहाँ स्नान करने वालों को वंशवृद्धि का सुख प्राप्त होता है ।३८। इस तीर्थ का सेवन करने वाली वन्ध्या भी पुत्रवती होकर प्रियजनों के वियोग का कष्ट भी नहीं उठाती है ।३६। इस तीर्थ का सेवन करने वाली स्त्रियों का सौभाग्य बना रहता है, भगवान् गोपाल ही इस तीर्थ के भक्तों की इच्छा पूर्ण करते हैं ।४०। शुक्रवार पञ्चमी को इस तीर्थ की महिमा सुनकर अकाल मृत्यु नहीं होती और न यमलोक का दर्शन होता है ।४१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का पञ्चदश अध्याय पूर्ण हुआ)

अथ षोडशोऽध्यायः

आनन्दाख्यं सरः ख्यातमुत्तरे हरिमन्दिरात्। तत्रत्यमितिवृत्तं त्वां श्रावयाम्युत्तमोत्तमम् ॥१॥
पुरा दशार्णविषये द्विजो लवणविक्रयी। सन्ध्यास्नानविहीनश्च वेदाक्षरविवर्जितः ॥२॥
वाहीकनामा नाम्नैव विप्रः सूत्रपरिग्रहः। गंगाया उत्तरे कोणे क्षुत्क्षामः संगवर्जितः ॥३॥
व्याघ्रेण घातितस्तत्र नरमांसप्रियेण सः। तस्य वामपदं गृध्रो गृहीत्वोदपतन्नभः ॥४॥
मांसाशिनान्यगृध्रेण तस्य युद्धमवर्तत। न्यपतच्च सरस्यस्मिन् पादो गृध्रमुखात्तदा ॥५॥
यस्मिन् क्षणे स वाहीको व्याघ्रेण विनिपातितः। तस्मिन्नेव क्षणे बद्धः सपाशैर्यमकिंकरैः ॥६॥
कशाभिस्ताड्यमानोऽयमाप्लुतो रक्तधारया। रुधिरौघं वमन्नीतो यमदूतैर्यमाग्रतः ॥७॥
वैवस्वतेन पृष्टोऽथ चित्रगुप्तो विचित्रधीः। सर्वदा सर्वजन्तूनां यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ॥८॥
चित्रगुप्त ! समायातो वाहीकः कर्मबन्धनः। धर्माधर्मौ विचार्यास्य समक्षं प्रकटीकुरु ॥९॥

चित्रगुप्त उवाच—

गर्भाधानादिसंस्कारा नाभूवन्नस्य षोडश। षोडशाब्देष्वतीतेषु विवाहसमयेऽभवत्।
सूत्रधारणमात्रोऽस्य मौञ्जीबन्धः कथञ्चन ॥१०॥
वृषली रक्षिता तेन त्यक्ता पत्नी पतिव्रता। अभूदेष दुराचारः परदारपरायणः ॥११॥
जननी बहुशोऽनेन पद्भ्यां दुष्टेन ताडिता। प्रवर्तयन् सतां मार्गे बहुधा भर्त्सितः पिता ॥१२॥

हरिमन्दिर से उत्तर में आनन्द सरोवर है, वहाँ का उत्तमोत्तम इतिहास मैं आपको सुनाता हूँ।१। पूर्वकाल में दशार्ण देश का रहने वाला एक ब्राह्मण लवण बेचता था, वेदों का नाम भी उसने नहीं सुना था, सन्ध्या स्नान का फिर क्या काम।२। नाम मात्र का वह ब्राह्मण वाहीक नाम से प्रसिद्ध था, जनेऊ पहने रहता था। एक बार गंगा से उत्तर में कहीं वह भूखा अकेला पड़ा हुआ था। नरमांस के प्रेमी किसी व्याघ्र ने उसे मार दिया। कोई गिद्ध उसका बायाँ पैर लेकर उड़ गया।३, ४। मांसभोजी किसी दूसरे गिद्ध से उसका युद्ध छिड़ गया और उसके मुँह से उस ब्राह्मण का पैर इस आनन्द सरोवर में आकर गिरा।५। व्याघ्र ने जिस क्षण में उस वाहीक को मारा था उसी क्षण यमदूतों ने उसे पाशों से बाँध लिया।६। कोड़ों की मार से उसका शरीर लहूलुहान हो गया था, मुँह से खून उगलते हुए इसको यमदूतों ने यमराज के आगे ले जाकर खड़ा कर दिया।७। उसी समय यमराज ने सभी प्राणियों के अच्छे बुरे कर्मों के ज्ञाता विचित्र बुद्धि वाले चित्रगुप्त से पूछा।८। हे चित्रगुप्त ! कर्मों के बन्धन में बँधा हुआ वाहीक उपस्थित है, इसके सामने ही इसके पापों और पुण्यों का वर्णन करो।९। चित्रगुप्त ने कहा—सोलह साल बीतने पर विवाह के समय इसने जनेऊ तो पहन लिया था किन्तु गर्भाधान आदि सोलह संस्कार इसके नहीं हुए।१०। अपनी पतिव्रता पत्नी को त्याग कर इसने शूद्र स्त्री को घर में रख लिया था, यह दुराचारी पराई स्त्रियों में आसक्त था।११। इस दुष्ट ने अपनी माता को पैरों से मारा है, सन्मार्ग की शिक्षा देने वाले पिता को भी इसने कई बार धमकाया है।१२।

विषं भक्षितवानेषोऽनेकधा कलहप्रियः। दग्धोऽसौ नाग्निना सौरे ! श्वभिश्च कवलीकृतः ।१३॥
लाक्षालवणमांसानां पयसां दधिसर्पिषाम्। विषलोहायुधानां च दासीगोवाजिनामपि ॥१४॥
विक्रेतासौ सदा मूढो देवपितृपराङ्मुखः। शूद्रान्नपरिपुष्टाङ्गो पर्वण्यपि च मैथुनी ॥१५॥
किं बहूक्तेन भगवान् पातको मूर्तिमानयम्। प्राप्यतां क्रमशः सर्वा नारक्यस्तीव्रवेदनाः ॥१६॥
धर्मराजः समाकर्ण्य चित्रगुप्तमुखादिदम्। वाहीकं निरयान्नेतुं किङ्करान् समुपादिशत् ॥१७॥
निन्युस्ते तत्र तं यत्र श्रूयते पापिनां महान्। रोमहर्षण आक्रन्दो दूरादेव भयावहः ॥१८॥
यातनास्वतितीव्रासु यदैवायं निपातितः। हाहाकारं प्रकुर्वाणो निष्ठुरैर्यमकिङ्करैः ॥१९॥
तदैव पुण्यफलदे आनन्दाम्भसि निर्मले। पातितं चास्थि गृध्रेण वाहीकस्य द्विजन्मनः ॥२०॥
हरेर्विमानं तत्कालमागतं रणयद्दिशः। सेवितं दिव्यपुरुषैर्दिव्यस्त्रीशतसङ्कुलम् ॥२१॥
आरुह्य देवयानं स दिव्यवेषधरो द्विजः। वीज्यमानोऽप्सरोवृन्दैः दिव्यमाल्यानुलेपनः ॥२२॥
जगाम स्वर्गभवनं भुक्त्वा तत्र चिरं सुखम्। जगाम शम्भलग्रामे भद्रनाम भवन्नृपः ॥२३॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादभूज्जातिस्मरोऽपि सः। पुत्रे राज्यं समारोप्य तताप परमं तपः ॥२४॥
शिशिरे जलमध्यस्थो वर्षास्वासारषाडभूत्। तपर्तावावृतश्चासीत् समन्तात् पञ्चवह्निभिः ।२५॥
पादाग्राङ्गुष्ठभूमिस्पृक् बहुकालं स तस्थिवान्। दधार प्राणान् कृच्छ्रेण वायुनापि च वारिणा २६
ततो भद्रस्य तपसा सन्तुष्टो भगवान् हरिः। तपस्विने वरं दातुं सलक्ष्मीकः समाययौ ॥२७॥

हे सूर्यपुत्र ! अग्नि में दाहसंस्कार भी इसका नहीं हुआ, कुत्तों ने घसीट-२ कर इसका शव खाया है ।१३। लाख, नमक, मांस, दूध, दही, घी, विष, लोहा, आयुध, दासी, गौ, घोड़े आदि बेचने के अयोग्य वस्तुएँ हमेशा बेचा करता था, इस महामूढ़ ने कभी देवताओं और पितरों का नाम नहीं लिया, शूद्रों का अन्न खाकर पला है और पर्व के दिनों में भी स्त्रियों के साथ सहवास करता था ।१४, १५। अधिक क्या कहें, यह मूर्तिमान पाप ही है, सभी नरकों की तीव्र वेदना इसको मिलनी चाहिए। चित्रगुप्त के द्वारा यह सब सुन कर धर्मराज ने वाहीक को नरकों में ले जाने के लिए अपने सेवकों को आज्ञा दे दी ।१७। यमदूत उसको वहाँ ले गये जहाँ रोंगटे खड़े करने वाली पापियों के चिल्लाने की भयङ्कर आवाज दूर से ही सुनाई पड़ रही थी ।१८। कठोर हृदय यमदूतों ने इस वाहीक को जैसे ही नरक यातनाएँ देनी आरम्भ कीं वैसे ही उस क्षण उसका पैर इस आनन्द सरोवर में गिद्ध की चोंच से गिरा ।१९, २०। उसी समय विष्णु भगवान् का विमान वहाँ आ पहुँचा। विमान की घरघराहट से दिशाएँ भर गईं। दिव्य पुरुषों और दिव्य स्त्रियों से यह विमान भरा हुआ था ।२१। वही वाहीक ब्राह्मण दिव्य वेष और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए दिव्य गन्ध और चन्दनों से अनुलिप्त उस विमान में बैठ कर स्वर्ग को चल दिया। देवाङ्गनाएँ उस पर चँवर ढुला रही थीं, बहुत समय तक स्वर्ग का सुख भोग कर फिर इसने सम्भल ग्राम में आकर जन्म लिया और यह भद्र नाम से विख्यात एक राजा हुआ ।२३। इस आनन्द सरोवर तीर्थ की महिमा से उसे पूर्व जन्म की याद बनी रही, इस लिए अपने राज्य का भार पुत्र पर सौंप कर इस भद्र नाम वाले राजा ने घोर तप किया ।२४। सर्दियों में जल के मध्य में खड़े होकर वर्षाकाल में उछए में रह कर गर्मियों में पाँच अग्नियों से घिर कर इसने घोर तप किया २५। पैर के अँगूठे से ही भूमि का स्पर्श करते हुए बहुत समय तक जल से और वायु से ही प्राणों को कठिनाई से धारण किये रहा ।२६। तदन्तर उस भद्र की तपस्या से सन्तुष्ट हुए भगवान विष्णु लक्ष्मी जी को साथ लेकर

वटः सुन्दरशाखाढ्यो विस्तृतो बहुयोजनम् । तदधःस्थायिनं वीक्ष्य भद्रं स्थाणुमिवाचलम् ॥२८॥
भानुमन्तमिवाकाशे ज्वलन्तं स्वेन तेजसा । प्रत्युवाच जगन्नाथो वरं ब्रूहि तपोनिधे ! ॥२६॥
विलोक्य भद्रो मेधावी भगवन्तमुपस्थितम् । तुष्टावेष्टस्य लाभेन तुष्टो हृष्टतनूरुहः ॥३०॥

नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः कारणवर्जिताय ।
नमो नमः कार्ममयाय तुभ्यं नमो नमः कार्यविभिन्नरूप ॥३१॥
अपारपाराय भवाब्धिपारप्रदाय तुभ्यं हरये नमो नमः ।
अनीश्वरस्त्वं जगदीश्वरस्त्वं गुणात्मकस्त्वं गुणवर्जितस्त्वम् ।३२।

यदि तुष्टो मम विभो ! यदि देयो वरो मम । अस्मिंस्तीर्थे सदा देव ! सान्निध्यं तेऽस्तु सर्वदा ।३३।
विप्रोक्तमिति राजेन्द्र ! समाकर्ण्य हरिस्तदा । उवाच वचनं चैनं "तथास्तु द्विजसत्तम" ॥३४॥
अत्र मे मन्दिरं रम्यं विश्वकर्मा करिष्यति । यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ॥३५॥
अहमत्र निवत्स्यामि त्वद्भक्त्या नृपसत्तम ! । अस्याराधनतः पुसां न दूरं ब्रह्मणः पदम् ॥३६॥
तवैव नाम्ना विख्यातं भूयाद् भद्राश्रमं नृप ! मोक्षं लप्सीष्ट सर्वोऽपि भद्राश्रमविलोकनात् ॥३७॥
गायत्र्या नियुतावृत्त्वा यत्फलं समवाप्यते । तत्फलं लभते नूनं दृष्ट्वा भद्राश्रमं नरः ॥३८॥
तवाश्रमसमीपे तु यदा मत्स्या समेष्यति । तदा पुण्यतमः कालो वाजिमेधफलप्रदः ॥३९॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तीर्थानि सरितस्तथा । समायास्यन्ति सर्वाणि भद्राश्रमसरोवरे ॥४०॥
पुण्या भद्राश्रमोत्पत्तिः पुण्या भद्रकथा पुनः । निवासः शम्भलग्रामे पूर्वपुण्यैरवाप्यते ॥४१॥

वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए तपस्वी भद्र के आश्रम में आए ।२७। दूर तक शाखाओं से फैले वटवृक्ष के नीचे ठूँठ के समान बैठे हुए भद्र को देख कर ।२८। आकाश में सूर्य के समान अपने तेज से जाज्वल्यमान भद्र से भगवान् ने वर माँगने को कहा ।२९। लक्ष्मी नारायण को देख कर बुद्धिमान् भद्र इष्ट वस्तु के मिलने से सन्तुष्ट तथा रोमाञ्चित होकर स्तुति करने लगा ।३०। कार्य-कारणस्वरूप और कार्य-कारणभाव से बहुत दूर आपकी महिमा को प्रणाम है ।३१। आप अपार हैं और भवसागर से पार लगाने वाले हैं । आप जगदीश्वर भी हैं और जगत् का तीनों कालों में अत्यन्ताभाव होने के कारण जीव तथा ईश्वर भी नहीं हैं, आप त्रिगुणात्मक भी हैं और गुणातीत भी हैं ।३२। हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देने के योग्य समझ रहे हैं तो इस तीर्थ में सर्वदा निवास करें ।३३। हे राजेन्द्र ययाते ! भद्र की बात सुनकर भगवान् ने स्वीकृति दे दी ।३४। मेरी आज्ञा से विश्वकर्मा ही यहाँ मेरा मन्दिर बनावेंगे, जिसके दर्शनों से ही पाप कटा करेंगे ।३५। हे राजन् ! तुम्हारी भक्ति के वश में हुआ मैं यहाँ अवश्य निवास करूँगा, हरिमन्दिर की आराधना करने वालों के लिए ब्रह्म का पद दूर नहीं है ।३६। हे राजन् ! तुम्हारे नाम से ही इस तीर्थ का भद्राश्रम नाम विख्यात हो और इसके दर्शनों से सभी को मोक्ष मिले ।३७। नियुत=एक लाख गायत्री जप का फल भद्राश्रम के दर्शनों से ही मिल जाता है ।३८। मत्स्योदरी नदी जब इस भद्राश्रम में आकर मिलेगी तब वह समय यहाँ अश्वमेध का फल देने वाला है ।३९। अष्टमी और चौदस को सभी तीर्थ और सभी नदियाँ यहाँ भद्राश्रम सरोवर में आया करेंगी ।४०। भद्राश्रम की उत्पत्ति की पुण्य कथा, और भद्रभूपति की कथा, सम्भल ग्राम का निवास, यह सब

भद्रविप्रस्तुतिं यस्तु हरेरग्रे पठिष्यति । समृद्धकामः सर्वत्र मोक्षलक्ष्मीं स लप्स्यते ।।४२।।
वस्तव्यं शम्भलग्रामे द्रष्टव्यं हरिमन्दिरम् । श्रोतव्यमिदमाख्यानं ध्यातव्यो जगतां पतिः ।।४३।।
दुर्लभं मानुषं जन्म चतुर्वर्गैकसाधनम् । सार्थकीकर्तुमिच्छन्तः श्रद्धां रक्षन्तु शम्भले ।।४४।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः ।।

पूर्वपुण्यों से प्राप्त होता है ।४१। भद्र की की हुई स्तुति को जो श्री हरि के सम्मुख पढ़ेगा उसे मोक्ष और लक्ष्मी दोनों मिलेंगे ।४२। सम्भल ग्राम में रहना, हरिमन्दिर का दर्शन करना, इस इतिहास का सुनना और भगवान् का ध्यान मानव जीवन को सफल करने के लिए अत्यावश्यक है ।४३। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देने वाले इस मनुष्य शरीर को सार्थक करने के लिए सम्भल ग्राम में श्रद्धा रखनी चाहिये ।४४।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का षोडश अध्याय पूर्ण हुआ)

अथ सप्तदशोऽध्यायः

नारद उवाच—

भद्राश्रमात् पूर्वतस्तु त्रयोदशधनुर्मितम् । सर्वपापप्रशमनमत्रिकाश्रममुत्तमम् ॥१॥
अत्रात्रिणा तपस्तप्तं वर्षाणामेकविंशतिम् । देवेनैव वरो दत्तस्तस्मै पूर्वं युगान्तरे ॥२॥
प्रसिद्धं तव नाम्नैव तीर्थमेतद्भविष्यति। त्वत्तीर्थसेवी पुरुषो न भविष्यति शोकभाक् ॥३॥
तर्पयित्वा पितॄनत्र पिण्डान्निर्वाप्य शक्तितः। शतसाम्वत्सरीं तृप्ति पितॄणां कुरुते बुधः ॥४॥
देवखातं ततः पूर्वे धनुषां तु शतत्रयम् । तत्र स्नात्वा विधानेन पितॄन् सन्तर्प्य पूजयेत् ॥५॥
चराचरार्चनफलं भवेद् देवार्चनादिह। हरिमन्दिरमालोक्य ज्ञानवान् जायते नरः ॥६॥
देवतीर्थात् प्रतीच्यां तु धनुषामेकविंशतिम्। विष्णुतीर्थं महाराज ! विष्णुना निर्मितं पुरा ॥७॥
विष्णुतीर्थकृतस्नानो यश्च विष्णुं प्रपूजयेत्। कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥८॥
तत्र पिण्डान् विनिर्वाप्य पितॄणामनृणो भवेत्। कृत्वा तत्र वृषोत्सर्गं लभते फलमुत्तमम् ॥९॥
विष्णुतीर्थसमीपे तु कृतं कर्म शुभाशुभम्। परामक्षयतामेति शुभमेव ततश्चरेत् ॥१०॥
विष्णुतीर्थात् प्रतीच्यां तु तीर्थं भागीरथीस्मृतम्। तत्र स्नात्वा नरः सम्यक् मुच्यते ब्रह्महत्यया।
तस्मिँस्तीर्थे कृतस्नानः कृतपिण्डोदकक्रियः। ब्राह्मणान् भोजयित्वा च ब्रह्मलोके नयेत् पितॄन् ।१२।
तत्र त्रिसन्ध्यं तीर्थं च तस्मादुत्तरतो नृप ! तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कृत्वा सन्ध्यां विधानतः ॥१३॥

नारदजी ने कहा—भद्राश्रम से पूर्व में १३ धनुष पर अत्रिकाश्रम है, यह भी सर्वपापनाशक उत्तम सरोवर है।१। ब्रह्मऋषि अत्रि ने पिछले युग में यहाँ २१ वर्ष तक तप किया था, भगवान् ने उन्हें वरदान दिया था, कि यह तीर्थ तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध हांगा और इसका सेवक पुरुष शोकमुक्त रहेगा।२, ३। यहाँ पितरों का तर्पण और शक्ति के अनुसार पिण्डदान करने वाला बुद्धिमान पुरुष सौ वर्ष तक पितरों की तृप्ति करता है।४। अत्रिकाश्रम से पूर्व में ३०० धनुष पर देवखात तीर्थ है, यहाँ भी विधिपूर्वक स्नान-तर्पण और पूजन करें।५। यहाँ की देव पूजा चराचर की पूजा का फल देने वाली है, हरिमन्दिर के दर्शनों से ज्ञान का उदय होता है।६। देवतीर्थ से पश्चिम में २१ धनुप दूर विष्णुतीर्थ है, विष्णु भगवान् ने ही पूर्वकाल में इस तीर्थ का निर्माण कराया है।७। विष्णुतीर्थ में स्नान करके विष्णु का पूजन करने वाला कोटि जन्म के पापों से मुक्त हो जाता है।८। यहाँ पितरों के लिये पिण्ड देकर और उनके निमित्त साँड छोड़ने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है।९। विष्णु तीर्थ के समीप किया हुआ अच्छा-बुरा कर्म अक्षय होता है, इसलिये शुभ कर्म ही करना चाहिये।१०। विष्णु तीर्थ से पश्चिम में ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति दिलाने वाला भागीरथी-तीर्थ है।११। इस तीर्थ में स्नान करके पितरों के निमित्त तर्पण, पिण्डदान ओर ब्रह्मभोज कराने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचा देता है।१२। भागीरथी से उत्तर में त्रिसन्ध्य तीर्थ है। इसमें स्नान कर

त्र्यय्यावर्तनजं पुण्यं प्राप्य पापविर्वाजितः। गच्छेत् स्वपूर्वजैः सार्द्धं शिवलोकं नृपोत्तम ! ॥१४॥
प्रतीच्यां दिशि चैतस्मात् मलहानिः सरोवरः। अपि ब्रह्माण्डगोलस्य नाभिरेष शुभोदयः ॥१५॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैरत्र स्नातो न लिप्यते। श्राद्धतर्पणकर्ता च ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥१६॥
मनोविद्याधरसुता नाम्ना मलयगन्धिनी। क्रीडन्ती पितुराक्रोडे दुर्धरेणावलोकिता ॥१७॥
जिहीर्षुदर्शं तद्रक्षो कन्या क्रूरेण चक्षुषा। दग्धं स्वेनैव पापेन भस्मसादकरोत् क्षणात् ॥१८॥
मलहानेश्च निकटे स्थिता मलयगन्धिनी। आराधयामास तदा गौरीं सर्वप्रयत्नतः ॥१९॥
प्रातः स्नात्वा विधानेन नित्यमभ्यर्च्य पार्वतीम्। जजाप परमं मंत्रं सा कन्या पतिकाम्यया ॥२०॥
ॐ नमो विश्वविधायिनि ह्लां ह्लीं ह्लूं नमः। पतिं मह्यं प्रयच्छाशु दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते।
मनोविद्याधरसुता दुर्गादेवीं दयावतीभ्। आराधयन्ती भावेन तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥२१॥
विद्याधरसुताभावं जानन्ती हृष्टमानसा। प्रोवाच वरदा देवी गौरी रुद्रप्रिया सती ॥२२॥
विष्णुभक्तो युवा धीमान् पुत्रि ! त्वां परिणेष्यति। आतृतीयातिथिं तस्य प्रतीक्षायां स्थिरा भव।
तव नाम्नैव विख्यातमिदं तीर्थं भविष्यति। दत्वा वरानिमान् देवी तत्रैवादृश्यतां ययौ ॥२४॥
सापि देव्या वरं श्रुत्वा स्थिता तत्रैव सुन्दरी। तृतीयायामाजगाम मित्रजिन्नामको नृपः ॥२५॥
स राजा गिरिजादेशात् तामुदूह्य यथाविधि। नगरीं कम्पिलां प्राप्तः संयुक्तः कान्तयानया ॥२६॥
भोगान् भुक्त्वैतया सार्धं स भौमान् स्वभुजार्जितान्। प्राप चान्ते हरेर्धाम न निवृत्तिर्यतो भवेत्।२७।

लेने से सन्ध्यालोप और सन्ध्याकाल के लोप का प्रायश्चित हो जाता है।१३। ने नृपोत्तम ! साथ ही वेदों के पाठ का पुण्य प्राप्त करके निष्पाप होकर अपने पूर्वजों के साथ शिवलोक को चला जाता हे।१४। त्रिसन्ध्या से पश्चिम में मलहानि तीर्थ है, यहाँ शुभ कर्मों के फल प्रकट होते हैं, यह तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक की नाभि है।१५। यहाँ स्नान करने वाला भी ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त होता है, यहाँ श्राद्ध तर्पण करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक में ले जाता है।१६। मनोविद्याधर की पुत्री मलयगन्धिनी अपने पिता की गोद में खेल रही थी। दुर्धर नाम के राक्षस ने उसको देख लिया, कन्या ने भी उसको देख कर जान लिया कि यह मेरा हरण करना चाहता है, यह पापी अपने पाप से ही मर चुका था, किन्तु कन्या ने भी अपनी क्रूर दृष्टि से देख कर इसे भस्म कर दिया।१७, १८। तभी से इस मलहानि तीर्थ के निकट उस मलयगन्धिनी ने बड़े प्रयत्न से भगवती गौरी का आराधन आरम्भ कर दिया।१९। विधिपूर्वक प्रातः स्नान करके पति प्राप्ति की कामना को लेकर वह कन्या नित्य नियम से पार्वती जी का पूजन करती हुई इस मंत्र का जप करने लगी।२०। मनोविद्याधर की पुत्री मलयगन्धिनी भक्ति भावना से भावित होकर दयामयी दुर्गा देवी की आराधना के लिए कठोर तप करने लगी।२१। विद्याधर की पुत्री मलयगन्धिनी के अभिप्राय को समझती हुई पार्वती प्रसन्न होकर वरदान के लिए उससे बोली।२२। हे पुत्रि ! तृतीया तक तेरा विवाह हो जाएगा, विष्णुभक्त और बुद्धिमान् युवा पति तुझे मिलेगा। तब तक तू प्रतीक्षा कर, यह तीर्थ भी तेरे ही नाम से विख्यात होगा। यह कह कर भगवती वहीं अदृश्य हो गईं।२३, २४। मलयगन्धिनी भी इस वरदान को सुनकर वहीं प्रतीक्षा में स्थिर रही, तृतीया के दिन मित्रजित् नाम का राजा वहाँ आया।२५। पार्वतीजी की प्रेरणा से इस राजा ने इसके साथ शास्त्र विधि के अनुसार विवाह किया और इसे अपने साथ लेकर अपनी कम्पिला नाम की नगरी को चला गया।२६। अपने भुजवल से उपार्जित भूमिलोक के सुख भोग कर अन्त में अपनी इस कान्ता के साथ ही हरि के उस धाम में चला गया,

मलहानेः प्रतीच्यां तु शरद्वीपं नराधिप ! स्नात्वात्र सन्तर्प्य पितृन् श्राद्धं कुर्याद् विधानतः ॥२८॥
जातिस्मरो भवेन्मर्त्यो शरद्वीपस्य सेवनात् । "स्वर्गद्वारमिति" ख्यातमेतस्मिन् हरिमन्दिरे ॥२९॥
एका गोधात्र मरणं प्राप्ता कालवशान्नृप ! कीटांश्चरन्ती क्षुधया ग्रस्ता कङ्केन केनचित् ॥३०॥
माहात्म्येनास्य तीर्थस्य गृहे विप्रस्य कस्यचित् । जातिस्मरा सा कन्याभूच्छुभलक्षणलक्षिता ॥३१॥
जानन्ती तीर्थमाहात्म्यमत्रैव पुनरागता । देहचिन्तां तृणीकृत्य तपस्येव मनो दधे ॥३२॥
वैशाखस्य तृतीयायां निराहारतया स्थिता । नाम्ना पुण्यवती पुण्यस्वरूपा सा दिवं ययौ ॥३३॥
अनेनैव शरीरेण पार्थिवेन समन्विता । ज्योतिर्मयी पुनर्भूत्वा ज्योतिष्येव लयं गता ॥३४॥
तिष्ठेयुः पञ्चरात्रं ये शरद्वीपे समागताः । ते तामद्यापि पश्यन्ति कन्यां कनकविग्रहाम् ॥३५॥
अतः परं मोक्षतीर्थं यत्र ज्ञानमवाप्यते । तत्तीर्थसेवनान्नृणां गर्भवासो न विद्यते ॥३६॥
नैःश्रेयसीं यः सम्पत्तिं ददाति स्मरणादपि । इहापि च नृपः कश्चित् पत्न्या सार्धं दिवं गतः ॥३७॥
पत्न्या सह नृपः कश्चिदिहायातः कदाचन । मध्याह्ने निर्जने कञ्चित् ददर्शैकं तपोधनम् ॥३८॥
अतीव जीर्णवपुषं परिपिङ्गलमूर्द्धजम् । मूर्तिमन्तमिव प्रांशुं धर्मं जनमनोहरम् ॥३९॥
चक्षुर्भ्यां निर्निमेषाभ्यां ध्यायन्तं हरिमव्ययम् । प्रतीक्षमाणो निःशब्दं प्रतीक्ष्यं दूरत. स्थितः ॥४०॥
व्युत्थितं समयेनैनं विलोक्योपगतः शनैः । प्रणम्य मूर्ध्ना पप्रच्छ को भवानिति किं न्विदम् ॥४१॥
तपस्वी प्रत्युवाचास्य दृष्ट्वा तेजोमयं वपुः । प्रश्नपद्धतिमाकर्ण्य शिष्टाचारानुगामपि ॥४२॥

जहाँ से फिर लौटते नहीं ।२७। मलहानि तीर्थ से पश्चिम में शरद्वीप तीर्थ है, इस में स्नान-तर्पण और श्राद्ध करना चाहिए ।२८। इस शरद्वीप तीर्थ के सेवकों को पिछले जन्मों की स्मृति होती है, हरिमन्दिर में यह स्थान स्वर्गद्वार कहा जाता है ।२९। हे नृप ! शरद्वीप तीर्थ के तट पर भूख में कीड़ों को खाती हुई किसी गोह को देवयोग से किसी गिद्ध ने खा लिया और वह मर गई ।३०। इस शरद्वीप तीर्थ की महिमा से पिछले जन्म का स्मरण करती हुई वह किसी ब्राह्मण के घर जन्म लेकर शुभलक्षणों वाली कन्या हुई ।३१। उसको इस तीर्थ की महिमा का ज्ञान था, इसलिए उसने फिर यहीं आकर शरीर की चिन्ता छोड़ कर कठिन तप किया ।३२। निराहार रह कर तप करती हुई वह साक्षात् पुण्यों की मूर्ति पुण्यवती नाम वाली कन्या वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन सशरीर स्वर्ग को चल पड़ी, अन्त में ज्योति बनकर ब्रह्मज्योति में लीन हो गई ।३३-३४। जो यहाँ शरद्वीप में आकर पाँच दिन निवास करते हैं, वे आज भी सुवर्ण के समान कान्ति वाली उस कन्या का दर्शन करते हैं ।३५। इस के आगे मोक्षतीर्थ है, इस का सेवन करने वालों को ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है कि जिससे फिर गर्भवास का दुःख नहीं उठाना पड़ता ।३६। यह तीर्थ अपना स्मरण करने वालों के लिए भी मोक्ष के साधन जुटा देता है, यहाँ एक राजा अपनी स्त्री के साथ मोक्ष को प्राप्त हुआ था । ।३७। कोई राजा अपनी पत्नी के साथ मध्याह्न में यहाँ आया, उसने इस निर्जन स्थान में किसी तपस्वी को देखा ।३८। उनके शरीर पर बुढ़ापा पूर्ण रूप से छाया हुआ था, पीली जटाएँ थी, लम्बा कद था, मूर्तिमान् धर्म ही के समान देखने वालों का मन चुरा रहे थे, अपलक नेत्रों से बैठे भगवान् के ध्यान में मग्न थे, इन पूजनीय महात्मा की प्रतीक्षा में राजा दूर ही चुप खड़ा हो गया अपने समयानुसार जब वे उठे तब राजा ने नम्रतापूर्वक उनके पास पहुँचकर सिर झुकाकर प्रणाण किया और पूछा कि आप कौन हैं ? यह स्थान कौन है और आप यहाँ क्या कर रहे हैं ।३९, ४०, ४१। इस राजा का तेजस्वी रूप देखकर और साथ ही नम्रता से भरे हुए प्रश्न सुनकर तपस्वी ने उत्तर दिया ।४२।

दाक्षिणात्योऽस्म्यहं राजन्नागतो भार्यया सह। ध्यायाम्यत्र हरिं नित्यं प्रार्थयामि न किञ्चन ।४३॥
हरिणा स्वयमाज्ञप्तो विश्वकर्मा प्रजापतिः। प्रासादस्यास्य निर्माता तेनेदं हरिमन्दिरम् ॥४४॥
मध्येपुरमयं श्रीमान् प्रासादो देवनिर्मितः। तस्मादस्य पुरस्यापि नामस्ति हरिमन्दिरम् ॥४५॥
मोक्षतीर्थमिदं तावत् प्राश्यास्य जलमुत्तमम्। मोक्षं पुरस्तात् पश्यामि त्वमप्यस्य जलं पिब ॥४६॥
एवमस्त्विति तत् पीत्वाऽहिर्यथा त्यक्तकञ्चुकः। कोशपञ्चकमुन्मुच्य स्वरूपस्थोऽभवन्नृपः ॥४७॥
जाताश्चर्योऽथ नृपतिः पुनरेवाभ्यभाषत। कः प्रभावो हि भगवन्! एष ज्ञानोदयो यतः ॥४८॥
मोक्षतीर्थप्रभावोऽयं राजन्! इत्यब्रवीन्मुनिः। अयोध्यादिपुरीभ्योऽपि मोक्षतीर्थं महत्तरम् ॥४९॥
नित्यं यत्र हरेर्वासः शम्भले हरिमन्दिरे। महापापौघविध्वंसि तत्रेदं तीर्थमुत्तमम् ॥५०॥
पत्न्या सहैव राजापि जीवन्मुक्तपदं गतः। न्यवात्सीत् शम्भले तावद् यावत् शेषस्तदायुषः ॥५१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥

राजन् मैं दक्षिण देश का रहने वाला हूँ, मेरी स्त्री भी मेरे साथ है, कोई इच्छा न लेकर मैं यहाँ भगवान् के ध्यान में लगा रहता हूँ ।४३। श्रीहरि ने प्रजापति विश्वकर्मा से इस महल को बनवाया, इसलिए इस महल का नाम हरिमन्दिर है ।४४। पुर के ठीक मध्य में देवताओं ने इस विशाल सम्पत्तिशाली मन्दिर को बनाया है, इसलिए इस पुर का भी नाम हरिमन्दिर है ।४५। जहाँ मैं रहता हूँ, यह मोक्ष तीर्थ है, इसका जल पीने से ही मुझ को मोक्ष स्पष्ट दीख रहा है, तुन भी रानी के साथ इस तीर्थ का जल पियो ।४६। अच्छा ! कहकर राजा ने मोक्षतीर्थ का जल पिया और पीते ही पाँचों कोशों से अलग अपने स्वरूप को देखकर उसमें स्थित हो गया । जैसे साँप कैंचुली को छोड़कर फिर उस से अलग हो जासा है ।४७। राजा ने फिर आश्चर्य से पूछा कि हे भगवान् ! मुझ में इस ज्ञान के उदय का क्या कारण है ? ।४९। मुनि ने कहा कि हे राजन् ! यह मोक्षतीर्थ का प्रभाव है, अयोध्या आदि सातों पुरियों से भी बढ़ कर यह मोक्षतीर्थ है ।४९। जिस हरिमन्दिर— सम्भल में श्रीहरि का नित्य निवास है, उसी हरिमन्दिर—सम्भल में यह उत्तम मोक्षतीर्थ है ।५०। जीवनमुक्ति का पद प्राप्त कर वह राजा अपनी रानी के साथ तब तक सम्भल में ही रहा जब तक कि उसकी आयु का शेष रहा ।५१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का सप्तदश अध्याय पूर्ण हुआ ।)

●

अथ अष्टादशोऽध्यायः

नारद उवाच—

तद्दक्षिणे चक्रतीर्थं पुण्यराशिविवर्द्धनम् । स्नानार्थं श्रीहरेः पूर्वं तच्चक्रस्पर्शनिःसृतम् ॥१॥
स्नानं कृत्वा ह्रदे तत्र दृष्ट्वा च हरिमन्दिरम् । विष्णुलोकमवाप्नोति त्यक्त्वा संसारगह्वरम् ॥२॥
भरद्वाजस्य तनयो रैभ्यो नाम्ना महातपाः । आसीद् विद्याव्रतस्नातश्चिन्तयन् जागतीं गतिम् ॥३॥
संसारे दुःखबाहुल्यं चाञ्चल्यं जीविते तथा । निश्चिन्वानो महाबुद्धिर्निर्जगाम गृहाद्बहिः ॥४॥
प्रत्याश्रमं प्रतिनगं प्रत्यपः प्रतिकाननम् । प्रतितीर्थं प्रतिग्रामं स बभ्राम तपोनिधिः ॥५॥
कदाचिद् दैवयोगेन हरिमन्दिरमाययौ । वगाह्य चक्रतीर्थाप्सु ननाम भुवनेश्वरम् ॥६॥
दृष्ट्वा हृष्टमनाश्चासीच्चेतः स्थैर्यमवाप सः । एतावत्यामटाट्यायां क्वचिदप्यन्वभून्न यत् ॥७॥
ददर्श चाश्रमे तत्र चक्रतीर्थस्य सन्निधौ । योगाचार्यं ज्ञाननिधिं कौत्सं च स महामुनिम् ॥८॥
प्रणम्यैनमयं रैभ्यस्तपसा क्लिष्टविग्रहम् । वार्द्धकेन समाक्रान्तमप्याक्रान्तं स्वतेजसा ॥९॥
तस्थौ सङ्केतितस्थाने विनयानतकन्धरः । पप्रच्छेति च तं कौत्सः कस्त्वं कस्मादिहागतः ? ॥१०॥
पृष्टः स एवं मुनिना करुणापूर्णया दृशा । पृष्टश्चेति स मूर्धानमानत्य पुनरब्रवीत् ॥११॥
नमो ज्ञाननिधे ! तुभ्यं नाज्ञातं तव किञ्चन । चेष्टितं निजचित्तस्य तथापि कथयाम्यहम् ॥१२॥

नारद जी ने कहा—मोक्षतीर्थ से दक्षिण में पुण्यों की वृद्धि करने वाला चक्रतीर्थ है, जो किसी समय श्रीहरि के स्नान के लिए उन्हीं के चक्र सुदर्शन के स्पर्श से प्रकट हुआ है ।१। इस सरोवर में स्नान करके हरिमन्दिर का दर्शन करने वाला संसार रूपी गहन गुफा में से निकल कर विष्णुलोक को चला जाता है ।२। महर्षि भरद्वाज का महातपस्वी पुत्र रैभ्य ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्ण रीति से पालन करके साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या में पारंगत हो चुका था, उसने संसार की स्थिति पर विचार करना आरम्भ किया ।३। संसार के दुःखों की अधिकता और जीवन की चञ्चलता का निश्चय करके बड़ा बुद्धिमान् वह रैभ्य घर से बाहर चला गया ।४। आश्रम, पर्वत, जलाशय, वन, तीर्थ, ग्राम आदि ऐसा कोई स्थान नहीं था, जहाँ वह न गया हो ।५। किसी समय दैवयोग से हरिमन्दिर-सम्भल में आने का भी अवसर उसे मिला । यहाँ उसने चक्रतीर्थ के जल में स्नान किया और भुवनेश्वर को प्रणाम किया ।६। भुवनेश्वर का दर्शन करके उसका मन बहुत प्रसन्न हुआ । इतना भ्रमण करने पर भी ऐसी प्रसन्नता उसको कहीं नहीं मिली ।७। चक्रतीर्थ के समीप ही वहाँ आश्रम में महामुनि कौत्स का उसने दर्शन किया, वे योगानुशासन के आचार्य और ज्ञाननिधि थे ।८। रैभ्य ने उनको प्रणाम किया उनका शरीर तपस्या और वृद्धावस्था से यद्यपि दुर्बल था, किन्तु फिर भी तप के तेज से चमचमा रहा था । उनका संकेत पाकर यह रैभ्य सिर झुकाकर बैठ गया । तब उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ? ।९, १०। इस प्रकार जब महामुनि कौत्स ने उससे पूछा और दयामयी दृष्टि से उसे देखा तब उसने अपना मस्तक झुकाकर फिर कहा ।११। हे ज्ञाननिधे ! आपको नमस्कार है । आप सब कुछ जानते

क्षणभङ्गुरतामस्य संसारस्य विलोकयन्। न लभे कुत्रचिच्छर्म भूरि भूमण्डले भ्रमन् ॥१३॥
अहं ब्राह्मणदायादो वेदशास्त्रकृतादरः। शुश्रूषिताश्च गुरवो मयि तेऽपि च सिस्निहुः ॥१४॥
स्नातं बहुतीर्थेषु काननेष्वपि चाभ्रमम्। शिखराणि गिरीन्द्राणामवाप्याध्युषितानि च ॥१५॥
यथाशक्ति तपस्तप्तं बहुभिर्नियमैर्यमैः। आराधिता मया देवास्तैस्तैर्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ॥१६॥
बह्व्यो निशाः श्मशानेषु जपताप्यतिवाहिताः। परं किञ्चित् क्वचिन्नैकं फलमासादितं मया ।१७॥
इदानीं त्वामनुप्राप्य महीं पर्यटता मया। स्थैर्यं किञ्चिदिव प्राप्तं तन्मे सिद्धिकरं भवेत् ॥१८॥
लब्धो ब्राह्मणदेहोऽयं निष्फलो न यथा भवेत्। तथा भवद्भिः कर्त्तव्या कृपा मय्यप्यकिञ्चने ।१९॥
रैभ्यस्याभ्यर्थनं श्रुत्वा कौत्सो ज्ञानवतां वरः। प्रत्यक्षदृष्टं प्रोवाच महदाश्चर्यमुत्तमम् ॥२०॥
सर्वेषां शृण्वतां तत्र शिष्याणां स्थिरचेतसाम्। मुमुक्षूणां भवाम्भोधेश्च तीर्थफलं महत् ॥२१॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं यथा ते कथयाम्यहम्। तथा श्रद्धाधनो भूत्वा सावधानमनाः शृणु ॥२२॥
हरिमन्दिरमेवेदं प्रथमं सर्वसिद्धिदम्। नैतस्मादधिकं किञ्चित् स्थानं ब्रह्माण्डगोलके ॥२३॥
शूलहस्तः सदा रुद्रो गणकोटिसमावृतः। रक्षत्यहर्निशं क्षेत्रं श्रीहरेः प्रियकाम्यया ॥२४॥
चन्द्रेश्वरः पूर्वतोऽस्य पश्चिमे भुवनेश्वरः। दक्षिणे ज्ञानदाता च भगवान् शम्भलेश्वरः ॥२५॥
श्रीहरेर्मध्यभागोऽस्य निवासस्थानमुत्तमम्। ततोऽयं शम्भलग्रामो हरिमन्दिरमुच्यते ॥२६॥
रागबीजसमुद्भूतः संसारविटपो महान्। अत्र ज्ञानकुठारेण छिन्नः सन् न प्ररोहति ॥२७॥
चक्रतीर्थं समुत्पन्नं चक्रादेव हरेर्यतः। नामोच्चारणमात्रेण तस्मात् श्रेयोविधायकम् ॥२८॥

हैं, तो भी मैं अपने मन की बात आपको सुनाता हूँ ।१२। इस संसार की क्षणभङ्गुरता को देखकर शान्ति के अन्वेषण में बहुत भ्रमण करने पर भी मुझे अभी शान्ति नहीं मिली है ।१३। ब्राह्मणों के कुल में मेरा जन्म है, वेदों शास्त्रों में आदरपूर्वक परिश्रम भी किया है, गुरुजनों की सेवा की है, उनका भी मुझ पर स्नेह रहा है ।१४। अनेक तीर्थों में स्नान किया है, अनेक वनों में भी विचरा हूँ, पर्वतों की चोटियों पर भी निवास किया है ।१५। नियमानुसार यथाशक्ति तप भी किया है, भिन्न-भिन्न मंत्रों से अनेकानेक देवताओं की आराधनाएँ भी की हैं ।१६। श्मशानों में भी मंत्रजप करते हुएं बहुत रातें बिताई हैं, परन्तु मुझे अभी तक कहीं कोई फल नहीं मिला है ।१७। इतना भ्रमण करने के बाद आज आपके दर्शनमात्र से ही मेरे मन को कुछ एकाग्रता प्राप्त हुई है; सम्भव है मेरा मनोरथ सिद्ध हो ।१८। जिस प्रकार यह मेरा ब्राह्मण शरीर निष्फल न हो, मुझ दीन हीन पर आप ऐसी कृपा अवश्य करें ।१९। ज्ञानवानों में श्रेष्ठ कौत्स ने रैभ्य की इस प्रार्थना को सुनकर आँखों देखी आश्चर्यमयी घटना सुनाई ।२०। भवसागर से पार होने की इच्छा वाले, एकाग्र होकर सुनने वाले, सभी शिष्यों को सुनाते हुए कौत्स ने चक्रतीर्थ के महान् फल का वर्णन किया ।२१। हे रैभ्य ! चक्रतीर्थ की जो महिमा मैं तुम्हें सुनाता हूँ, उसे तुम सावधान होकर श्रद्धापूर्वक सुनो ।२२। प्रथम तो यह हरिमन्दिर सम्भल ही सर्वसिद्धियों के देने वाला है। ब्रह्माण्ड भर में इससे बढ़कर कोई स्थान नहीं है ।२३। करोड़ों गणों से घिरे हुए भगवान् शंकर ही त्रिशूल लिये हुए इस क्षेत्र की रक्षा करते हैं, यह सम्भल भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है, विष्णु शंकर को प्रिय हैं ।२४। सम्भल के पूर्व द्वार पर चन्द्रेश्वर, पश्चिम में भुवनेश्वर, दक्षिण में ज्ञान के दाता भगवान् शम्भलेश्वर हैं ।२५। सम्भल का मध्यभाग श्रीहरि का निवास स्थान है, इसलिये यह सम्भल हरिमन्दिर कहा जाता है ।२६। यह संसार एक बहुत बड़ा वृक्ष हैं, राग इसका बीज है। इसके काटने वाला ज्ञान ही एकमात्र कुठार है ! इसका काटा हुआ यह वृक्ष फिर नहीं उगता।

मोहनिद्राप्रसुप्तानां परमोद्बोधकारकः। चक्रतीर्थोपदेशोऽयं महापापौघनाशनः ॥२९॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा स रैभ्यो द्विजसत्तमः। महिम्ना चक्रतीर्थस्य परां शान्तिमुपेयिवान् ॥३०॥
रैभ्याख्यानमिदं पुण्यं यः श्रोष्यति समाहितः। श्रद्धाधनः स पुण्यात्मा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये अष्टादशोऽध्यायः ॥

इस क्षेत्र मे पापों का नाश हो जाने से ज्ञान का उदय होता है। इसलिये इस सम्भल की समता कोई और स्थान नहीं कर सकता।२७। यह चक्रतीर्थ श्रीहरि के चक्र से ही उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसका नाम ले लेने से ही मोक्ष मिल जाता है।२८। चक्रतीर्थ की महिमा का यह उपदेश मोहनिद्रा में सोये हुए प्राणियो के पापों का नाश करके उन्हें ऐसा जगाता है कि वे फिर नहीं सोते।२९। कौत्स के वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनकर वह रैभ्य चक्रतीर्थ के प्रभाव से परम शान्ति-मोक्ष को प्राप्त हुआ।३०। जो भी कोई पुण्यात्मा श्रद्धा से इस चक्रतीर्थ की महिमा को सुनेगा, वह भी सब पापों से मुक्त होगा।३१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का अष्टादश अध्याय पूर्ण हुआ)

◆

अथैकोनविंशोऽध्यायः

नारद उवाच—

अस्ति तीर्थं रत्नयुग्मं पश्चिमे भुवनेश्वरात् । अस्मिंस्तीर्थे परां सिद्धि प्रापुः सिद्धाः सहस्रशः ।।१।।
इह पूर्वं द्विमणिना विष्णुभक्तेन भूतले । पुण्यार्जितैर्महारत्नैः रत्नयुग्मं विनिर्मितम् ।।२।।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन हरिमन्दिरमेकदा । सम्प्राप्तो द्विमणिः शून्ये हतो भिल्लेन केनचित् ।।३।।
सहजात् तल्ललाटस्थात् रत्नयुग्मादसुस्रुवन् । सहस्रशो वारिधाराः गाहमाना भुवस्तलम् ।।४।।
तस्मिन् दिव्यप्रवाहेऽसौ भिल्लोऽपि निधनं गतः । क्षेत्रस्यास्य प्रभावेण प्राप्तवान् परमां गतिम् ।।
रत्नयुग्ममिदं तीर्थं ततः ख्यातं महीतले । तत्र स्नानं च दानं च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।६।।
नानारत्नानि लभ्यन्ते तीर्थादस्मान्नृपोत्तम ! । स्त्रीरत्नपुत्ररत्नानि स्वर्गमोक्षादिकान्यपि ।।७।।
रत्नयुग्मे नरः स्नात्वा मृतो देशान्तरेष्वपि । न स स्वर्गादिहागच्छेत् कल्पकोटिशतैरपि ।।८।।
आश्वयुक्कृष्णनवमीमुपोष्य निशि जागरात् । सन्निधावस्य तीर्थस्य कृष्णसान्निध्यमाप्नुयात् ।।९।।
अनूढो लभते सत्यं कन्यारत्नं कुलोचितम् । कन्यापीदं समाकर्ण्य पतिं प्राप्नोति सुन्दरम् ।।१०।।
माहात्म्यमस्य तीर्थस्य शृण्वतां प्रीतिवर्धनम् । गोपनीयं प्रयत्नेन कलिकल्मषचेतसाम् ।।११।।
तस्माद् दक्षिणतश्चैव धनुषां नवतिं परम् । पुष्पदन्ताभिधं राजन् ! तीर्थं परमपावनम् ।।१२।।

नारदजी फिर कहने लगे—भुवनेश्वर से पश्चिम में रत्नयुग्म तीर्थ है। इस तीर्थ पर हजारों लोग सिद्धि को प्राप्त कर सिद्ध हुए हैं ।१। विष्णुभक्त द्विमणि यहाँ कभी प्राचीन समय में पुण्यों से प्राप्त हुए महारत्नों से इस तीर्थ को बनवा गया था ।२। किसी समय यह द्विमणि तीर्थयात्रा के निमित्त हरिमन्दिर-सम्भल में आया, किसी भील ने कहीं शून्य स्थान में उसको अकेला पाकर मार डाला ।३। उसके मस्तक में जन्मजात दो रत्नों से हजारों जल की धाराएँ छूट पड़ीं और पृथ्वी पर फैल गईं ।४। उस दिव्य जल के प्रवाह में वह भील भी डूब कर मर गया और इस क्षेत्र के प्रभाव से परम गति को प्राप्त हुआ ।५। इसलिये इस तीर्थ का नाम रत्नयुग्म है। यहाँ स्नान-दान आदि का करोड़ों गुणा फल मिलता है ।६। हे राजन् ! इस तीर्थ की कृपा से स्त्रीरत्न, पुत्ररत्न, स्वर्ग, मोक्ष आदि विविध रत्नों की प्राप्ति होती है ।७। यहाँ स्नान करके कहीं भी मरने पर स्वर्ग में गया हुआ मनुष्य कोटि कल्पों तक भी फिर नहीं लौटता ।८। असौज के कृष्ण पक्ष की नवमी के दिन इस तीर्थ की सन्निधि में व्रत ओर रात्रि जागरण से कृष्ण का सामीप्य मिलता है ।९। इस तीर्थ की महिमा को सुनकर अपने कुल के योग्य कन्यारत्न की प्राप्ति होती है और कन्या भी इस माहात्म्य को सुनकर सुन्दर पति को प्राप्त करती है ।१०। श्रोताओं को प्रसन्न रखने वाली इस तीर्थ की महिमा उन लोगों को नहीं सुनानी चाहिये, मैले मन के कारण जिन्हें विश्वास नहीं ।११। हे राजन् ! रत्नयुग्म तीर्थ से ९० धनुष आगे परम पवित्र पुष्पदन्त तीर्थ है ।१२। यहाँ स्नान करने से गर्भ गिराने का पाप छूट जाता है। यहाँ श्राद्ध करने वालों के

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या मुच्यते भ्रूणहत्यया । तत्र श्राद्धकृतां पुंसां तुष्येयु प्रपितामहाः ॥१३॥
स्नानमत्रानपत्यस्य वंशवृद्धिकरं परम् । नारी वा पुरुषो वापि स्नात्वाप्नोतीप्सितं फलम् ॥१४॥
नवम्यां पुष्ययुक्तायामत्र स्नानं महाफलम् । रममाणाः पुष्पदन्ते यान्ति विश्वस्य मान्यताम् ।१५॥
पितृन् पिण्डैः समभ्यर्च्य सम्यक् श्राद्धविधानतः । कृतकृत्यो भवेज्जन्तुः सर्वकामफलं भवेत् ॥१६॥
यस्तु मासं भवेद्धीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः । जन्ममृत्युभयं त्यक्त्वा स याति परमां गतिम् ॥१७॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यात् ब्रह्महत्या निवर्तते । गर्भवासं न लभते मृतश्चेदिह कालतः ॥१८॥
शतत्रयं च धनुषां पश्चिमे हरिमन्दिराद् । सर्वपापप्रशमनं तीर्थं वै कर्ममोचनम् ॥१९॥
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या कृत्वा च पितृतर्पणम् । न जातु जायते मातुर्जठरे धूतकल्मषः ॥२०॥
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामुपोषणपरायणः । कृत्वा जागरणं रात्रौ गीतनृत्यकथादिभिः ॥२१॥
गौरीमाराधयेद्भक्त्या कुमारीश्च प्रपूजयेत् । होमं कृत्वा विधानेन तिलाज्याहुतिभिस्तदा ॥२२॥
एकं गोमिथुनं दत्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । श्रद्धया समलंकृत्य भूषणैर्द्विजदम्पती ॥२३॥
भोजयित्वा च तीर्थाय कुर्यात् कर्मसमर्पणम् । कुर्वतः पारणामेवं दुर्भगत्वं निवर्तते ॥२४॥
त्रिकालं स्नाति यो भक्त्या तीर्थेऽस्मिन् कर्ममोचने । पुत्रपौत्रवतीं सिद्धिं प्राप्यान्ते याति निर्वृतिम् ।
गुप्तसंज्ञमितस्तीर्थं प्रतीच्यां कर्ममोचनात् । तस्मिंस्तीर्थे च यद्वृत्तं तन्निशामय भूपते ॥२६॥
पुत्रीं प्रभावतीं नाम विप्रस्य हरिशर्मणः । स्वपन्तीमेव तां रात्रौ कोऽपि विद्याधरोऽहरत् ॥२७॥
मध्येमार्गं निशीथेऽसाववाप हरिमन्दिरम् । रक्षसा तौ हतो तत्र पतितौ गुप्तसंज्ञके ॥२८॥

पितर प्रसन्न रहते हैं ।१३। यहाँ स्नान करने से निःसन्तान के भी वंश की वृद्धि होती है । यहाँ स्नान करने वाले स्त्री-पुरुषों का मनोरथ पूर्ण होता है ।१४। पुष्य नक्षत्र वाली नवमी के दिन यहाँ का स्नान महाफल मुक्ति का दाता है । यहाँ रमण करने वाले मनुष्य विश्वमान्य होते हैं ।१५। यहाँ श्राद्ध पद्धति के अनुसार पितरों को पिण्ड देकर सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाने से प्राणी कृतार्थ हो जाता है ।१६। यहाँ एक मास पर्यन्त अल्पाहार करता हुआ ब्रह्मचारी जन्म मृत्यु के भय से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त होता है ।१७। इस क्षेत्र की महिमा से ब्रह्महत्या का पाप कट जाता है, यहाँ समयानुसार मृत्यु हो जाने पर फिर गर्भ में नहीं जाना पड़ता ।१८। हरिमन्दिर से पश्चिम में ३०० धनुष आगे सभी पापों का नाश करने वाला कर्ममोचन तीर्थ है ।१९। यहाँ भक्तिभावना से स्नान तर्पण करके पापों का नाश हो जाने से फिर माता के उदर में नहीं जाना पड़ता ।२०। चैत्र के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन व्रत रखकर रात्रि में गौरी की आराधना के लिए गाते, बजाते, नाचते, कथा आदि करते हुए तिल-घृत आदि की आहुतियाँ देकर विधिपूर्वक हवन करते हुए जागरण करे, फिर कन्याओं का विशिष्ट पूजन करे और किसी बड़े कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को एक गौ और एक बैल का दान करे । सपत्नीक ब्राह्मण को वस्त्र आभूषण आदि से सजाकर भोजन कराकर यह सब किया हुआ कर्म कर्ममोचन तीर्थ के देवता के लिए अर्पण करे, फिर स्वयं भोजन करे तो दुर्भाग्य नहीं रहता ।२१, २२, २३, २४। इस कर्ममोचन तीर्थ में नियमपूर्वक तीनों काल स्नान से पुत्र पौत्र आदि का सुख भोग कर अन्त में मोक्ष मिलता है ।२५। इस कर्ममोचन तीर्थ से पश्चिम में गुप्त तीर्थ है, वहाँ की घटना सुनो ।२६। हरिशर्मा नाम के किसी ब्राह्मण की रात्रि में सोती हुई प्रभावती नाम को पुत्री को कोई विद्याधर उठा ले गया ।२७। अपने पहुँचने के स्थान को जाते हुए बीच रास्ते में आधी रात के समय सम्भल आ गया, वहाँ किसी राक्षस ने उन दोनों को मार दिया.

तीर्थस्यास्य प्रभावेण पूर्वं तौ जग्मतुर्दिवम् । पुण्यशेषेण पश्चात्तौ मुत्युलोकमुपागतौ ।।२९।।
पाटलाधिपतेः कन्या सा बभूव प्रभावती । मगधाधिपतेः पुत्रः सोऽपि विद्याधरोऽभवत् ।।३०।।
प्राक्तनेनैव योगेन विवाहोऽप्येनयोरभूत् । विद्याधरो मत्स्यकेतुः सा त्वत्रापि प्रभावती ।।३१।।
पूर्वजन्मस्मृतिस्त्वस्याः प्रभावत्याः स्थिराऽभवत् मत्स्यकेतोस्तु सा पश्चादनश्यत् कार्यभारतः ।३२।।
देशकालौचितीं बुद्ध्वा सा कदाचित् प्रभावती । विनयावनता भूत्वा स्वाभिप्रायं व्यजिज्ञपत् ।।३३।।
जीवितेश ! न मे किञ्चित् त्वत्तः प्रियतरं क्वचित् । त्वामासाद्य पतिं राजन् प्राप्ताः सर्वे मनोरथाः ।
एको मनोरथो मेऽद्याप्यवशिष्टो महीपते । तस्यापि पूर्तिमिच्छामि कृपास्ति यदि ते मयि ।।३५।।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यास्तस्या वाक्यं निशम्य सः । 'अविलम्बितमाचक्ष्व' कृतं विद्धीत्यवोचत ।३६।।
देशः कोशो बलं दुर्गं सप्ताङ्गं राज्यमुत्तमम् । तत्त्वदीयं यदन्यद्वा मम किञ्चिन्न विद्यते ।।३७।।
मत्स्यकेतोरिदं वाक्यं श्रुत्वा सा प्रेमविह्वला । प्राह वाचा मधुरया वाक्प्रयोगविशारदा ।।३८।।
नाथ ! प्रजासृजा पूर्वं सृष्टा नानाविधाः प्रजाः । तद्धिताय च संसृष्टं पुरुषार्थचतुष्टयम् ।।३९।।
तत्रार्थकामयोरेव मूढा मुह्यन्ति मायया । बुद्धिमन्तः प्रवर्तन्ते केवलं धर्ममोक्षयोः ।।४०।।
तस्मात् प्रीणीहि मां गन्तुं निदानं धर्ममोक्षयोः । पुण्यं पवित्रं तीर्थाढ्यं शम्भलं हरिमन्दिरम् ।४१।।
मत्स्यकेतुः प्रभावत्या इति वाक्यं निशम्य सः । क्षणं विमृश्य हृदये राजा प्रोवाच तां प्रियाम् ।।४२।।
प्रिये ! प्रभावति ! यदि तवायं निश्चयो दृढः । मयापि राजलक्ष्म्या किं कर्त्तव्यं त्वद्विहीनया ।४३।।

उन दोनों का शव गुप्ततीर्थ में आकर गिरा ।२८। इस तीर्थ की महिमा से प्रथम वे दोनों स्वर्ग में रहे, पश्चात् थोड़े पुण्य शेष रहने पर वे दोनों इस मृत्युलोक में आए ।२९। प्रभावती तो पाटल देश के राजा की कन्या बनी और वह विद्याधर मगध देश के राजा का पुत्र बना ।३०। प्रकृति के नियमानुसार विवाह भी इन दोनों का हो गया, विद्याधर का नाम मत्स्यकेतु और प्रभावती का नाम इस जन्म में भी प्रभावती ही रहा ।३१। प्रभावती को तो पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही, किन्तु मत्स्यकेतु की वह स्मृति कार्य का भार आ जाने से खो गई ।३२। किसी समय देश काल को समझकर प्रभावती ने अपना अभिप्राय प्रकट किया ।३३। हे प्राणनाथ ! आप से बड़कर मुझे कुछ भी प्रिय नहीं है । पति के रूप में आपको पाकर मेरे सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं । हे राजन् ! एक मनोरथ मेरा फिर भी रह गया हैं । यदि आप मुझ पर कृपा करें तो उसकी भी पूर्ति हो जाये ।३५। प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रभावती की यह बात सुन कर उसने कहा कि शीघ्र कहो, पूर्ति भी उसकी हुई समझो ।३६। मुल्क, खजाना, फौज, किले, मंत्री, सेनापति, पुरोहित आदि सात अंगों वाला राज्य और भी जो कुछ तुम मेरा समझती हो वह सब तुम्हारा ही है, मेरा कुछ नहीं ।३७। बोलने में निपुण प्रभावती ने मत्स्यकेतु का कथन सुनकर प्रेम में विभोर होकर मीठी भाषा में इस प्रकार कहा ।३८। हे नाथ ! पूर्वकाल में प्रजापति ने अनेक प्रकार की सृष्टि का निर्माण किया और उसके कल्याण के लिए धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ बनाए ।३९। माया से मोहित हुएं जीव तो अर्थ और काम में ही फँससे हैं, किन्तु बुद्धिमान् धर्म और मोक्ष के संग्रह में ही प्रवृत्त होते हैं ।४०। इसलिए पवित्र तीर्थों से परिपूर्ण, धर्म और मोक्ष के दिलाने वाले पुण्यस्थल हरिमन्दिर सम्भल में मुझे जाने की आज्ञा देने के लिए आप प्रसन्न हो जाइये ।४१। राजा मत्स्यकेतु यह सब सुनकर मन ही मन में कुछ सोचकर प्रभावती से बोला ।४२। हे प्रिये प्रभावति ! यदि तुम्हारा यह निश्चय दृढ़ है, तो तुम्हारे बिना इस राजलक्ष्मी से मुझे भी क्या लेना है ।४३। मेरी प्रसन्नता को बढ़ाने वाली प्रिय राजलक्ष्मी तो तुम्हीं

त्वमेव मम राज्यश्रीः प्रेयसी प्रीतिभाजनम् । राज्यं समुद्रपर्यन्तं त्वया हीनं तृणायते ।।४४।।
निःसपत्नं कृतं राज्यं भुक्ता भोगा निरन्तरम् । पूजिताश्चाप्यतिथयो गृहधर्मविदा मया ।।४५।।
अपत्यान्यपि जातानि कर्त्तव्यं मे न किञ्चन । अवश्यमेव गन्तव्यमावाभ्यां हरिमन्दिरम् ।४६।।
मत्स्यकेतुः प्रियामित्थमाश्वास्य कृतनिश्चयः । समाहूय च दैवज्ञान् प्रकृतीः परिपृच्छ्य च ।।४७।।
पुत्रे राज्यं निधायापि प्रतस्थे हरिमन्दिरम् । स्वर्णभारं समादाय पुत्रदत्तं नृपोत्तमः ।।४८।।
दृष्ट्वा च शम्भलग्रामं हृष्टरोमा नरेश्वरः । मेने कृतार्थमात्मानं संसाराम्बुधिपारगम् ।।४९।।
अथ प्रदक्षिणीकृत्य हरिमन्दिरमागतौ । मत्स्यकेतुः स नृपतिः सा च देवी प्रभावती ।।५०।।
गुप्ततीर्थे ततः स्नात्वा सन्तर्प्य श्रद्धया पितॄन् । पिण्डान् निर्वाप्य ददतुः पात्रेभ्यो वसु भूरिशः ।५१।
दीनान्धकृपणेभ्यश्चादिषातां विपुलं धनम् । बद्धाञ्जली चाशयतां यथेष्टं षड्रसानपि ।।५२।।
सन्तोष्य सर्वान् यह्यैव पारणां कर्तुमुद्यतौ । तावद्विमानमायातमस्पृशत् पृथिवीतलम् ।।५३।।
पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यकेतुर्निमेषतः । ताभ्यामुभाभ्यां सहितो गुप्ततीर्थे प्रविष्टवान् ।।५४।।
ततस्तीर्थमिदं लोके प्रसिद्धं गुप्तनामकम् । सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यः प्रत्यक्षं भुक्तिदायकम् ।।५५।।
गुप्ततीर्थस्य माहात्म्यं ये श्रोष्यन्ति समाहिताः । न तेषां ज्ञानविभ्रंशो मरणेऽपि भविष्यति ।।५६।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ।।

हो, यह समुद्र पर्यन्त राज्य तुम्हारे विना तृण के वरावर है ।४४। गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों को समझते हुए मैंने अतिथि पूजा आदि धर्मों का पालन भी किया है, राज्य भी मेरा निष्कण्टक है, भोग भी सव भोग लिये ।४५। सन्तान का सुख भी देख लिया, अव कुछ करना शेष नहीं है, अव हम दोनों ही सम्भल अवश्य चलें ।४६। मत्स्यकेतु इस प्रकार प्रभावती को दिलासा देकर पण्ड्तिों से मुहुर्त्त पूछकर प्रजा के प्रधान पुरुषों से भी अनुमति लेकर राज्य का भार पुत्र पर सौंप कर उसका दिया हुआ आवश्यक धन लेकर सम्भल को चल पड़ा ।४७, ४८। सम्भल को देखकर राजा वहुत प्रसन्न हुआ और अपने आपको संसार समुद्र से पार हुआ समझकर कृतार्थ मानने लगा ।४९। तदनन्तर सम्भल की परिक्रमा करके उन दोनों ने सम्भल में प्रवेश किया ।५०। फिर गुप्ततीर्थ में स्नान तर्पण और श्राद्ध करके योग्य ब्राह्मणों को वहुत सा धन दिया ।५१। फिर दोनों ने असमर्थ-अनाथों को भी वहुत धन दिया और हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक सभी को इच्छानुसार षड्रस भोजन कराए ।५२। सभी को सन्तुष्ट कर जव वे दोनों भोजन करने वैठे, तभी विमान आया और भूमि का स्पर्श न करता हुआ अधर में टिका रहा ।५३। भगवान् गरुडध्वज सव के देखते हुए पल भर में दोनों को साथ लेकर गुप्ततीर्थ में अदृश्य हो गये ।५४। तभी से यह तीर्थ गुप्त नाम से प्रसिद्ध हुआ है, सभी मुख्य तीर्थों की अपेक्षा प्रत्यक्ष मुवित का देने वाला है ।५५। जो लोग तीर्थ की महिमा को सावधान होकर सुनेंगे, मृत्यु के समय भी उन्हें ज्ञान वना रहेगा ।५६।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।)

अथ विंशोऽध्यायः

नारद उवाच—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि मान्यस्त्वं सर्वभूभुजाम् । सर्वभूतेषु गोविन्दं यत्पश्यसि विशां पते ॥१॥
यो वेदपुरुषो विष्णुर्वेदयोनिः सनातनः। योऽन्तरात्मास्य जगतः कर्ता हर्ता पिता विभुः ॥२॥
तन्मयं पश्यतो विश्वं सफलं तव जीवितम् । के न यान्ति न चायान्ति संसारे क्षणभङ्गुरे ॥३॥
यौवनं धनमायुष्यं पद्मिनीजलबिन्दुवत् । अतीव चञ्चलं ज्ञात्वा विष्णुमेकं समाश्रयेत् ॥४॥
अनया विष्णुभक्त्या ते सन्तुष्टेन्द्रियमानसः । उपकर्तुमना यत्त्वां ब्रवीमि शृणु तन्मनाः ॥५॥
गुप्ततीर्थाद् दक्षितो गयातीर्थं नृपोत्तम । अस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६॥
तत्र श्राद्धं नरः कृत्वा गां च दत्वा पयस्विनीम् । यथोक्तसर्वाभरणां क्षीरोदे वासयेत् पितॄन् ॥७॥
शृण्वन्यदपि वृत्तान्तं तीर्थानाम् पावनं परम् । महाश्चर्यप्रजननं महापातकनाशनम् ॥८॥
महिषासुरस्य तनयो गयो नाम महासुरः । प्राणामयद् दिशः सर्वा निजवीर्यमदोद्धतः ॥९॥
अचलाँश्चालयाञ्चक्रे त्रलन् वेगेन जङ्घयोः । नगानप्यूरुवेगेन पातयन् शिखरैः सह ॥१०॥
योजनानां सहस्राणि पञ्च चास्य समुच्छ्रयः । यां यां दिशं समभ्येति तस्यां तस्यां महद्भयम् ।११।
आराधयामास विभुं सोऽसुरश्चतुराननम् । शम्भलेश्वरसामीप्ये निवसन् हरिमन्दिरे ॥१२॥
मध्येवनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलतः । शुष्कस्नायुनिबद्धास्थिसंचयं निश्चलाकृतिम् ॥१३॥

नारद जी राजा ययाति से फिर बोले—हे राजन् ! आप धन्य हैं, आप कृतार्थ हैं, और राजा भी आप का सम्मान करते हैं, जो कि आप सभी प्राणियों में गोविन्द का दर्शन कर रहे हैं ।१। भगवान् विष्णु ही जगत् के बनाने वाले बिगाड़ने वाले और सम्भालने वाले हैं, वेद उन से प्रकट हुए, वे भी वेदों से प्रकट होते हैं, और वेदों का स्वरूप भी वही अविनाशी परमात्मा हैं, वे ही जगत् के अन्तरात्मा हैं, हे राजन् । आपका जीवन सफल हैं कि आप विश्व को उन्हीं के रूप में देख रहे हैं, अन्यथा इस क्षणभङ्गुर संसार में कौन नहीं आ जा रहा है ।२, ३। जीवन धन यौवन यह सब कमल पत्र पर स्थित जलबिन्दु के समान अत्यन्त चञ्चल हैं, यह जानकर विष्णु भगवान् की ही शरण में जाना श्रेष्ठ है ।४। तुम्हारी विष्णु भक्ति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे उपकार के लिए जो कुछ भी कहूँ उसे तुम सावधानी से सुनो ।५। हे राजन् ! गुप्ततीर्थ से दक्षिण में गयातीर्थ है । इसके दर्शन मात्र से सब पाप कट जाते हैं ।६। यहाँ श्राद्ध करके शास्त्रोक्त वस्तुओं के साथ दूध देने वाली गौ का दान करने वाला अपने पितरों को क्षीरसागर में पहुँचाता है ।७। और भी यहाँ का एक वृत्तान्त सुनिये जो आश्चर्यजनक और पापनाशक है ।८। महिषासुर का वेटा गय नाम का महान् असुर अपने वल के अभिमान में झूमता हुआ सभी दिशाओं को झुका रहा था ।९। चलते समय वह अपने पैरों के वेग से पहाड़ों को हिला देता था, पेड़ों को उखाड़ देता था ।१०। उसके शरीर की ऊँचाई पाँच हजार योजन थी, जिधर चला जाता था, उधर भय का ही वातावरण बन जाता था ।११। शम्भलेश्वर के समीप हरिमन्दिर में निवास करते हुए उसने ब्रह्माजी का आराधन आरम्भ किया ।१२। वन में अशोक वृक्ष के नीचे वह निश्चल आकृति से बैठ गया था, सूखी

अस्थिष्वेवाश्रितं प्राणमायुःशेषेण रक्षितम् । बहूनब्दगणानेवं शोषयन्तं कलेवरम् ॥१४॥
तं तथाभूतमालोक्य देवः स जगतां पतिः । कमण्डलुजलेनौक्षद् वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ॥१५॥
स सुवर्णवपुर्भूत्वा जलस्पर्शेन तत्क्षणम् । प्रणम्य दण्डवद्भूमावाचचक्षे मनोरथम् ॥१६॥
यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि । तथेदमतुलं तीर्थं मम नाम्ना भवेत् प्रभो ॥१७॥
पितुः श्राद्धमिहैवाहं कर्तुमिच्छामि साम्प्रतम् । गयाश्राद्धसमं भूयान्ममान्येषामपि प्रभो ॥१८॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवो जगत्पतिः । एवमस्तु महादैत्येत्याशृणोत्तदभीप्सितम् ॥१९॥
पिण्डनिर्वापणं पित्रोः कुरुष्वेहासुरोत्तम । गयातुल्यं तवान्येषामपि श्राद्धं भविष्यति ॥२०॥
अष्टम्यामथ पञ्चम्यां श्राद्धं कुरु महासुर । प्रातः स्नात्वा पितृणां ते मुक्तिः शाश्वतिकी भवेत् ।२१।
इति दत्वा वरं देवस्तत्रैवान्तर्दधे विधिः । सोऽपि श्राद्धं तथा कृत्वा कृतार्थं स्वममन्यत ॥२२॥
समन्ततश्चतुर्दिक्षु गव्यूतौ हरिमन्दिरात् । सन्ति तीर्थान्यनेकानि कूपाकाराणि भूपते ॥२३॥
तेष्वपि स्नानदानादेः पुण्यं पापौघनाशनम् । हरिमन्दिर एवास्ते यज्ञकूपो महाफलः ॥२४॥
हरिमन्दिरतो राजन् ! महापातकनाशनः । हृषीकेशो महाकूपो दिश्याग्नेय्यामवस्थितः ॥२५॥
पराशरेश्वरः कूपो हृषीकेशस्य दक्षिणे । पराशराख्यो ब्रह्मर्षिः सिद्धिमत्रैव लब्धवान् ॥२६॥
अकर्ममोचनः कूपः प्रतीच्यां तु पराशरात् । तस्यापि सेवनान्मर्त्यः कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥२७॥
अकर्ममोचनात् पूर्वे कूपो विमलसंज्ञकः । हरिमन्दिरतः सप्तधनुः परमितः स्थितः ॥२८॥
ब्रह्मणा कल्पितः पूर्वं सर्वाभीप्सितसिद्धये । कार्तिके तु विशेषेण स्नातव्यमिह धार्मिकैः ॥२९॥

हुई नसों से उसकी हड्डियाँ कसी हुई थीं ।१३। उसकी हड्डियों में ही प्राणों का सञ्चार हो रहा था । उसको इस प्रकार बहुत वर्षों से शरीर सुखाते हुए देखकर ब्रह्मा जी ने अपने कमण्डलु का जल उस पर छिड़का और वर माँगने को कहा । १४-१५ । जल का स्पर्श होते ही उसका शरीर सुवर्ण के समान चमक उठा, साष्टांग प्रणाम करके उसने अपना मनोरथ प्रकट किया । १६। यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देने के योग्य समझते हैं तो यह तीर्थ मेरे नाम से प्रसिद्ध हो और अनुपम हो ।१७। मैं यहाँ अपने पिता का श्राद्ध करना चाहता हूँ, वह गया श्राद्ध के समान हो तथा औरों का भी किया हुआ यहाँ का श्राद्ध गया के समान हो ।१८। ब्रह्मा जी ने उसकी यह बात सुनकर उसका मनोरथ पूर्ण होने की प्रतिज्ञा की ।१९। हे महादैत्य ! तुम यहाँ अपने माता-पिता का श्राद्ध करो, तुम्हारा तथा औरों का भी यहाँ किया हुआ श्राद्ध गया श्राद्ध के समान ही होगा ।२०। हे महासुर ! अष्टमी और पञ्चमी को प्रातः स्नान करके तू यहाँ श्राद्ध कर, हमेशा के लिए तेरे पितर यहाँ मुक्ति पा जावेंगे ।२१। यह वरदान देकर ब्रह्मा जी वहीं अदृश्य हो गये और वह गयासुर भी उनके कथनानुसार श्राद्ध का सम्पादन कर प्रसन्न हो गया ।२२। नारद जी कहते हैं कि हे राजन् ययाते, हरिमन्दिर के चारों ओर दो-दो कोस पर कूपों के आकार में अनेक तीर्थ हैं । २३। उन कूपों में भी स्नान-दान करने से महापापों का मूलोच्छेदन करने वाला पुण्य प्राप्त होता है, हरिमन्दिर में ही महाफलों का दाता यज्ञकूप है ।२४। हरिमन्दिर से आग्नेय कोण में हृषीकेश कूप है, हे राजन् ! यह कूप भी बड़े-बड़े पापों को काटता है ।२५। हृषीकेश कूप से दक्षिण में पराशर कूप है, यहाँ पराशर ब्रह्मर्षि सिद्ध हुए थे ।२६। पराशर कूप से पश्चिम में अकर्ममोचनकूप है, उसका सेवन करने वाला मनुष्य भी कर्मबन्धन से मुक्त होता है ।२७। हरिमन्दिर से सात धनुप पर अकर्ममोचन तीर्थ से पूर्व में विमल कूप है ।२८। सभी के सब मनोरथों की सिद्धि के लिए ब्रह्मा जी ने इसका

विमलेशादुत्तरतः कूपो वै मृत्युसंज्ञकः। अत्र स्नात्वा महाकालार्चनं सकलसिद्धिदम् ॥३०॥
तस्मादुत्तरतः ख्यातो बलिकूपोऽघनाशनः। व्याधिक्षयोऽत्र स्नानेन दानादेश्चाक्षयं फलम् ॥३१॥
जमदग्निर्महान् कूपो बलिकूपात्तु दक्षिणे। सर्वयज्ञफलावाप्तिर्दर्शनादस्य जायते ॥३२॥
तत्कूपात् पश्चिमे भागे वायुकूपो नृपोत्तम !। अत्रापि स्नानदानादेः फलानीष्टोपलब्धयः ॥३३॥
निकषैवं वायुकूपं विष्णकूपः शुभावहः। अत्रापि श्रद्धया स्नानं विष्णुसारूप्यमुक्तिदम् ॥३४॥
विष्णुकूपोत्तरे भागे कूपः शौनकसंज्ञकः। स्नात्वास्मिन् लभते ज्ञानं येन मृत्युं तरत्यसौ ॥३५॥
दक्षिणेऽस्मात् कृष्णकूपो तिर्यग्योनिनिवारकः। सप्तसागरकूपोऽपि तत्समीपस्थितो महान् ॥३६॥
सप्तकोटिमहामन्त्रैः स्थापितोऽयं पुरा युगे। लभ्यते वीक्षणेनास्य सप्ताब्धिस्नानजं फलम् ।३७॥
कूपो धरणिवाराहो हरिमन्दिरसन्निधौ। स्नातोऽत्र भक्तिभावेन न विशेद् योनिसंकटे ॥३८॥
अथाल्पेनापि दानेन धरादानफलं भवेत्। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातो हरिमन्दिरे ॥३९॥
समृद्धिं प्राप्य महती पुत्रपौत्रवतीमिह। अन्ते निर्वाणमाप्नोति हरिमन्दिरसेवनात् ॥४०॥
अत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना। मानवैरत्र वस्तव्यं संसाराध्वजिगीषुभिः ॥४१॥
हरिमन्दिरमेतद्धि सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम्। त्यक्त्वान्यत्र क्वचिद् गन्तुं मतिः स्यात् कस्य धीमतः ।४२॥
महादानेन चान्यत्र यत्फलं लभ्यते नरैः। प्राप्यते तत्क्षणादेव स्थितेन हरिमन्दिरे ॥४३॥
तीर्थान्तरे गवां कोटिं दत्वा भवति यत्फलम्। तत्स्यादेकाहवासेन शम्भले हरिमन्दिरे ॥४४॥
अन्यत्र ब्राह्मणानां च कोटिं संभोज्य यत्फलम्। भोजितेन तदेकेन प्राप्यते हरिमन्दिरे ॥४५॥

निर्माण किया था, कार्तिक में विशेष रूप से यहाँ धार्मिकों को स्नान करना चाहिये ।२९। विमल कूप से उत्तर में मृत्युकूप है, यहाँ स्नान करके महाकाल भगवान् शिव का पूजन सर्वसिद्धियों का दाता है ।३०। मृत्युकूप से उत्तर में बलिकूप प्रसिद्ध है. यहाँ के स्नान से रोगों का नाश होता है, और दान आदि पुण्य कर्मों का फल अक्षय हो जाता है ।३१। वलिकूप से दक्षिण में जमदग्निकूप हैं, जिसके दर्शनों से सब यज्ञों का फल मिल जाता है ।३२। हे राजन् ! जमदग्निकूप से पश्चिम में वायुकूप है, यहाँ के स्नान दानादि का फल इच्छाओं की पूर्तियाँ हैं ।३३। वायुकूप के समीप ही विष्णु की समानरूपता दिलाने वाला विष्णुकूप है ।३४। विष्णुकूप से उत्तर में शौनककूप है, इस कूप में स्नान करने से जन्ममरण के निवारण करने वाला ज्ञान प्राप्त होता है ।३५। विष्णुकूप से दक्षिण में पशु-पक्षियों की योनि में ले जाने से बचाने वाला कृष्णकूप है, सप्तसागर कूप भी इस के ही समीप है ।३६। प्रथम युग में सात करोड़ महामंत्रों से इस सप्तसागर कूप की प्रतिष्ठा हुई थी, इसके दर्शनों से सात समुद्रों के स्नान का फल मिलता है ।३७। हरिमन्दिर के निकट ही धरणिवाराह कूप हैं, भक्तिभाव से यहाँ स्नान करने वाला फिर गर्भ में नहीं आता ।३८। इस धरणिवाराह कूप में जिसने स्नान किया उसका सभी तीर्थों में स्नान हो गया ।३९। हरिमन्दिर का सेवक पुत्र-पौत्र आदि सम्पत्ति प्राप्तकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है ।४०। संसार के आवागमन को समाप्त करने की इच्छा वाले मनुष्यों को सम्भल में ही रहना चाहिये, यहाँ एक ही जन्म में योग तथा ज्ञान की सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।४१। यह हरिमन्दिर सिद्धि क्षेत्र है, इसको छोड़कर कहीं अन्यत्र जाने का विचार किस बुद्धिमान् का हो सकता है !।४२। और जगह बड़े-बड़े दान करने से जो फल होता है, सम्भल में रहने मात्र ही से वह फल उसी क्षण मिल जाता है ।४३। अन्य तीर्थों में एक करोड़ गौओं के दान का फल सम्भल में एक दिन रहने मात्र से मिल जाता है ।४४। और जगह एक करोड़ ब्राह्मणों

सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे राहुग्रस्ते दिवाकरे। तुलापुरुषदानेन यत्फलं लभते पुमान् ।।४६।।
इहैव तत्फलं राजन् भक्त्या भिक्षाप्रदानतः। सत्रमुद्घाटितं मुक्तेरेतस्मिन् हरिमन्दिरे ।।४७।।
न तुष्यति तथा विष्णुर्यज्ञदानतपोव्रतैः। यथा तुष्येन्निवासेन शम्भले हरिमन्दिरे ।।४८।।
मनसापि हरिक्षेत्रं ये द्विषन्ति नराधमाः। नरकेषु समस्तेषु निवत्स्यन्ति क्रमादिमे ।।४९।।
इन्द्राद्या देवताः सर्वा मरीच्याद्या महर्षयः। सप्ताब्धयः ससरितो वसन्ति हरिमन्दिरे ।।५०।।
निर्वाणलक्ष्मीपतयः क्षेत्रसंन्यासकारिणः। गुप्तानि चैव तीर्थानि भविष्यन्ति कलौ युगे ।।५५।।
प्रयास्यन्ति यदा चैते पूर्वाषाढां महर्षयः। तदा राजन् ! महानेष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ।।५२।।
चतुर्लक्षाणि वर्षाणि नृप ! मानुषसंख्यया। द्वात्रिंशच्च सहस्राणि कलिरेष भविष्यति ।।५३।।

ययातिरुवाच—

आश्चर्यजनकं वृत्तं भवतः श्रीमुखाच्छ्रुतम्। कलिवृद्धौ धर्महान्या ब्रूहि का जगतः स्थितिः ।।५४।।

नारद उवाच—

अरक्षितारो भोक्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः। ययाते ! प्रभविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ।।५५।।
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीवनाः। शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे ।।५६।।
शूद्रा धर्मं प्रवक्ष्यन्ति ब्राह्मणास्तदुपासकाः। श्रोतारश्च भविष्यन्ति तत्प्रामाण्ये व्यवस्थिताः ।।५७।।
अजपा ब्राह्मणास्तात शूद्रा जपपरायणाः। भोवादिनस्तथा शूद्रा ब्राह्मणाश्चार्यवादिनः ।।५८।।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति शाकपुष्पोपजीविनः। तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजातयः ।।५९।।

को भोजन कराने का फल यहाँ एक ही ब्राह्मण का भोजन कराने से मिलता है।४५। सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र के सन्निहति तीर्थ पर तुलादान का फल यहाँ भक्तिभाव से कभी भी भिक्षा देने मात्र से प्राप्त होता है, यहाँ भवबन्धन से छुट्टी मिलने का सदावर्त खुला हुआ है।४६, ४७। भगवान् विष्णु यज्ञ, दान, तप, व्रत आदि से इतने प्रसन्न नहीं होते, सम्भल में निवास करने मात्र से जितने प्रसन्न होते हैं।४८। जो नीच मनुष्य, मन से भी सम्भल की महिमा सुनकर कुढ़ते हैं, उन्हें सभी नरकों में क्रम से गिराया जाता है।४९। इन्द्र आदि सब देवता, मरीचि आदि महर्षि, नदियों सहित सातों समुद्र हरिमन्दिर में निवास करते हैं।५०। सम्भल की सीमा से बाहर न जाने का नियम रख लेने वाले लोग मोक्षलक्ष्मी के पति बनते हैं, किन्तु कलियुग के बढ़ते-बढ़ते तीर्थों कीं कलाएँ गुप्त होती चली जावेंगी।५१। सप्तर्षियों के तारे जब पूर्वाषाढ नक्षत्र पर आवेंगे तभी कलियुग की वृद्धि होने लगेगी।५२। मनुष्य गणना के अनुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग की आयु है।५३। ययाति ने पूछा—आपके श्रीमुख से बड़ी अनोखी बातें सुनने को मिलीं, अब आप कृपा करके यह सुनाइये कि कलि की वृद्धि में धर्म की हानि से जगत् की क्या स्थिति होगी ?।५४। नारद ने कहा—हे राजन् ! ययाते ! प्रथम तो कलियुग में राजा ही प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे, कर बड़ा-बड़ा कर उल्टा कष्ट ही देंगे, राजाओं को अपनी रक्षा की चिन्ता अधिक रहेगी।५५। राजा भी क्षत्रियवर्ण के नहीं होंगे, ब्राह्मण भी शूद्रों की जीविका करेंगे, शूद्र भी ब्राह्मणों का आचरण ग्रहण करेंगे।५६। शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे, ब्राह्मण उन की सेवा करेंगे, उनका उपदेश सुनेंगे और उसे प्रमाण मानेंगे।५७। हे प्रिय ! ब्राह्मण गायत्री जपना छोड़ देंगे,, शूद्र गायत्री जपा करेंगे, शूद्र ब्राह्मणों को आज्ञा देंगे, ब्राह्मण उन्हें बड़ा मानकर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करेंगे।५८।

अविचार्यं ग्रहीष्यन्ति दानं वर्णान्तरादपि। सन्दिग्धः परलोकश्च भविष्यति कलौ युगे ।।६०।।
विभक्तेष्वपि वित्तेषु भ्रातृणां कलहो महान् । पितृन पुत्रा नियोक्ष्यन्ति वध्वः श्वश्रूश्च कर्मसु ।६१।
पतीन् सुतान् वञ्चयित्वा गमिष्यन्ति स्त्रियोऽन्यतः । भार्याः प्रतार्य पुरुषा यास्यन्त्यपि परस्त्रियम् ।
व्याधितश्च तथा रूक्षो जनः सर्वोऽभ्यसूयकः । न कृते प्रतिकर्ता च कलौ राजन् भविष्यति ।।६३।।
सर्वथा श्रद्धया शून्याः शास्त्रज्ञानबहिष्कृताः । दाम्भिकाश्च भविष्यन्ति बाह्यशीलकुतूहलाः ।।६४।।
अयाज्ययाजका विप्रास्तथा चाभक्ष्यभक्षकाः । अयाच्यानपि निर्लज्जा याचिष्यन्ते कुलक्षणाः ।।६५।।
रक्षांस्येव जनिष्यन्ते प्रायो ब्राह्मणयोनिषु । स्त्रीबालघातुकास्तस्माद्विप्राः क्रूराः कलौ युगे ।।६६।।
भिक्षां वलिमदत्वैव भोक्ष्यन्ति पुरुषाः स्वयम् । मांसाशिनो मद्यपाश्चाप्यनृतव्यवहारिणः ।।६७।।
परदारपरद्रव्यहर्तारो राजवंशजाः । पृथिवीमुपभोक्ष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ।।६८।।
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च स्त्रियो गर्भधरा यदा । दशद्वादशवर्षाणां पुंसां स्यात् सन्ततिर्यदा ।।६९।।
भवन्ति षोडशे वर्षे नराः पलितिनो यदा । आयुस्तत्र मनुष्याणां परं त्रिंशद्भविष्यति ।।७०।।
ऋतवश्च भविष्यन्ति विपरीताः कलौ युगे । चौराग्निराजदण्डार्ताः क्षयमेष्यन्ति च प्रजाः ।।७१।।
सौकुमार्ये तथा रूपे रत्ने चापि क्षयं गते । भविष्यन्ति युगस्यान्ते नार्यः केशैरलंकृताः ।।७२।।
वाधिता ईतिभिर्भूयः करभारैः प्रपीडिताः । प्रजाः स्वदेशमुत्सृज्य यत्र तत्र श्रमातुराः ।।७३।।

धर्माचरण करने वाले शूद्र फल-फूल खाकर तप करेंगे, ब्राह्मण अपने तप व यज्ञ का फल वेंचा करेंगे ।५९। ब्राह्मण उनसे भी दान ले लिया करेंगे, जिन से नहीं लेना चाहिये, कलियुग के मनुष्य परलोक के होने में सन्देह करेंगे ।६०। बँटवारा हो जाने पर भी भाइयों में झगड़ा बना रहेगा, पुत्र पिता को और वहुएँ सास को आज्ञा दिया करेंगी ।६१। स्त्रियाँ अपने पति-पुत्र आदि को छलकर परपुरुषों से मिला करेंगी, पुरुष भी अपनी स्त्रियों को धोखा देकर परस्त्रियों से मिला करेंगे ।६२। प्रायः सभी मनुष्य रोगी, चिड़चिड़े और निन्दक होंगे, किसी के उपकार को भूल जाया करेंगे ।६३। कोशों में ही श्रद्धा शब्द सुनने को मिलेगा, शास्त्र-ज्ञान से शून्य मानव दिखाने के लिए ही धर्माचरण करेंगे ।६४। अनधिकारियों के यहाँ यज्ञ कराने वाले, न खाने योग्य पदार्थों के खाने वाले, न माँगने योग्यों से माँगने वाले लक्षणहीन ब्राह्मण लज्जा को त्याग देंगे ।६५। कलियुग में प्रायः राक्षस ही ब्राह्मण-कुल जन्म लेंगे, इसलिए स्त्रीहत्या, ब्रह्महत्या जैसे क्रूर कर्म उनमें देखे जावेंगे ।६६। वलिवैश्वदेव किये बिना और भिक्षा दिये बिना ही पुरुष स्वयं खा लिया करेंगे, मद्य-मांस का सेवन और छल-कपट का व्यवहार ही प्रधान होगा ।६७। राजवंश में पैदा होने वाले राजा ही जब पराई स्त्रियों और पराए धन का हरण करने लगें तभी कलियुग का अन्तकाल समझ लेना चाहिए ।६८। सात-आठ साल की लड़कियाँ जब गर्भवती होने लगें, दस बारह साल के लड़कों के जब सन्तान होने लगे: सोलहवें साल में जब वाल सफेद होने लगें; जब तीस साल की उम्र में मृत्यु हुआ करेगी; तीस साल से ऊपर दो चार साल भी अगर कोई बिरला खींच ले गया तो आश्चर्य हुआ करेगा कि इसने तो बहुत बड़ी उम्र पाई ।६९, ७०। सर्दी, गर्मी, वर्षा इन ऋतुओं के नियम भी वदल जाया करेंगे; चोर, अग्नि और राजदण्ड आदि से पीड़ित होकर प्रजा विनाश के कगार पर जा खड़ी होगी ।७१। स्वाभाविक सुन्दरता सुकुमारता के समाप्त हो जाने से और वस्त्र आभूषण आदि के न होने से स्त्रियों के शृङ्गार के लिये जब केवल बाल ही रह जावें तब कलियुग के अन्त का समय समझना चाहिये ।७२। ईतियों (कभी वर्षा अधिक होने से

स्कन्धे कुमारानादाय विद्रुता भयविह्वलाः । अङ्गान् बङ्गान् कलिङ्गांश्च संश्रयिष्यन्ति मानवाः ७४।
हिमालयोपत्यकासु कूलेषु लवणाम्भसः । अरण्येषु निवत्स्यन्ति नरा म्लेच्छगणैः सह ।।७५।।
चन्द्रभागातटे जाता ये च काश्मीरवासिनः । पौण्ड्रकास्ताम्रसिद्धाश्च समुद्रतटवासिनः ।।७६।।
एते चान्ये च बहवो भूभृतस्तुल्यकालजाः । कलौ भविष्यन्ति तदा राजानो म्लेच्छजातयः ।।७७।।
न श्रौतस्मार्तधर्माणां नामापि श्रोष्यते क्वचित् । दुराचारेण जनता पीडिता क्षयमेष्यति ।।७८।।
तदास्मिन् शम्भलग्रामे चराचरगुरुर्हरिः । सूर्यकुण्डस्योत्तरतः कल्किर्विष्णुर्भविष्यति ।।७९।।
प्रधानविष्णुयशसो ब्राह्मणस्य गृहे शुभे । भगवत्यवतीर्थो सत्येव नंक्ष्यत्यसौ कलिः ।।८०।।
हनिष्यति तदा सर्वान् दुष्टान् म्लेच्छगणान् भुवि । दिव्याश्वपृष्ठमारूढः खड्गेन पुरुषोत्तमः ।८१।।
स्थित्वा सप्तदशाहानि भगवान् हरिमन्दिरे । समानेष्यति राजानौ वंशजौ सूर्यसोमयोः ।।८२।।
देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुस्त्विक्ष्वाकुवंशजः । कलापग्राम आसाते योगमायाबलान्वितौ ।।८३।।
ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुमोदितौ । वर्णाश्रमयुतान् धर्मान् पूर्ववत् प्रथयिष्यतः ।।८४।।
भगवत्पादपद्माभ्यां स्पृष्ट एव धरातले । प्रवर्त्स्यति कृतं धर्मश्चतुष्पात् स्थितिमेष्यति ।।८५।।
शम्भलग्राममाहात्म्यं मया ते श्रावितं शुभम् । धर्मवृद्धिकरं पुण्यं कलिकल्मषनाशनम् ।।८६।।
मलिनानि भविष्यन्ति कलौ तीर्थानि यद्यपि । तथाप्यादरणीयानि त्वया भक्तशिरोमणे ! ।।८७।।

कभी सूखा पड़ जाने से, टिड्डीदल से तोतों और चूहों से फसलों के मारे जाने से तथा युद्ध) के उपस्थित होने पर करों के बोझ से सताई हुई प्रजा अपने छोटे बच्चों को कन्धों पर लादकर अपने देश को छोड़कर इधर-उधर मारी-मारी फिरेगी और अङ्ग-वङ्ग-कलिंग देशों का सहारा लेगी ।७३,७४। हिमालय की तलहटी में, समुद्र के किनारे, वनों में, म्लेच्छों के साथ आर्यावर्त के निवासियों को रहना पड़ेगा ।७५। चन्द्रभागा के तट पर रहने वाले काश्मीर के निवासी, समुद्र तट के निवासी, पौण्ड्रक, ताम्रसिद्ध आदि देशों के निवासी और भी म्लेच्छ राजा इस भारत भूमि पर राज्य करेंगे, एक ही समय में अनेक राजाओं की उखाड़-पछाड़ होगी ।७६, ७७। श्रुतियों और स्मृतियों में कहे धर्मों का कहीं नाम भी सुनने को न मिलेगा, दुराचारों से पीडित हुआ जनसमूह नष्ट हो जायेगा ।७८। तभी इस सम्भल में सूर्यकुण्ड से उत्तर में चराचर के पिता श्रीहरि भगवान् विष्णु कल्कि रूप में प्रकट होवेंगे ।७९। विष्णुयशा ब्राह्मण के घर भगवान् का अवतार होते ही कलिकाल समाप्त होगा ।८०। विष्णु भगवान् अपनी तलवार से पृथ्वी भर के दुष्ट म्लेच्छों का संहार करेंगे ।८१। तब कल्कि भगवान् सत्रह दिन हरिमन्दिर में रहकर सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राजाओं को सम्भल में ले आवेंगे ।८२। चन्द्रवंश के राजा शन्तनु के बड़े भाई देवापि और सूर्यवंश के राजा मरु योगमाया के बल से आज भी कलाप ग्राम में निवास करते हैं, कलियुग के अन्त में ये दोनों भगवान् की आज्ञा पाकर पूर्व की भाँति वर्णाश्रम धर्म की मर्यादाओं को चलावेंगे ।८३, ८४। पृथिवी पर भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श होते ही सत्ययुग का आरम्भ होगा और चारों पैरों से धर्म की स्थापना होगी ।९५। भक्तों के शिरोमणि हे राजन् ! कलि के दोषों को निवृत्त करने वाली धर्म के बढ़ाने वाली सम्भल की महिमा मैंने आपको सुनाई, यद्यपि कलियुग में ये तीर्थ मलिन हो जावेंगे, तो भी तुम्हें इनका

सम्बोध्य भगवानेवं देवर्षिर्नृपसत्तमम्। शुश्रूषोः पश्यतस्तस्य क्षणादन्तर्धिमाययौ ॥८८॥
एतत्ते कथितं सर्वं चरित्रं शम्भलस्य तु। सर्वपापहरं पुण्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥

आदर करते रहना चाहिये। इस प्रकार देवर्षि नारद राजा ययाति को सम्बोधित करके और भी कुछ सुनने को उत्सुक उसके देखते-देखते ही अदृश्य हो गये।८६, ८७, ८८। सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले सम्भल के पुण्यवर्धक माहात्म्य को तो मैंने तुम्हें सुना दिया, अब और अधिक क्या सुनना चाहते हो।८९।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ)

●

अथैकविंशोऽध्यायः

अगत्स्य उवाच—

हरिमन्दिरमाहात्म्यं कृपया कथितं त्वया। न चात्र कथितः स्वामिन् प्रदक्षिणविधिर्मम ॥१॥
प्रदक्षिणविधिं नाथ ! शम्भलस्यास्य मे वद। किं दानं कुत्र वा स्नानम् कथं कुर्यात् प्रदक्षिणम्।२।

स्कन्द उवाच—

साधु साधु मुनिश्रेष्ठाचमनीकृतसागर !। तमहं तव वक्ष्यामि प्रदक्षिणर्विधिं श्रृणु ॥३॥
एकदा नारदो ब्रह्मन् ! ददर्श पितरं स्वकम्। मूर्तिमद्भिश्चतुर्वेदैः धर्मशास्त्रैः सविस्तरैः ॥४॥
इतिहासैः पुराणैश्च संयमैः पाञ्चरात्रकैः। सत्यसन्तोषशीलाद्यैर्मूर्तिमद्भिर्वृतं प्रभुम् ॥
सागरैश्च सरिद्भिश्च पर्वतैश्चापि सर्वशः। मुनिभिर्देवदैत्यैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ॥६॥
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च लोकैर्लोकपसंयुतैः। तपोयज्ञमखैश्चैव तडागारामकूपकैः ॥७॥
मानसैः सनकाद्यैश्च तथा पितृगणैरपि। शम्भुना विष्णुना चैव तद्गणैश्चापि सर्वशः ॥८॥
पतिव्रताभिः सर्वाभिः सूर्याद्यैश्च ग्रहैरपि। बृहस्पत्युशनोभ्यां च वृतं लोकपितामहम् ॥९॥
दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा सर्वलोकवरो मुनिः। सद्यो बद्धाञ्जलिपुटस्तस्थौ लोकगुरोः पुरः ॥१०॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातो भेजे स्वासनमादरात्। स्वस्थो ब्रह्माणमप्राक्षीत् नारदो भगवत्प्रियः ॥११॥
शम्भलग्राममाहात्म्यं श्रुतं त्वत्तः पुरा मया। प्रदक्षिणविधिं तस्य श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१२॥

अगत्स्य ने कहा—हे स्वामिन् ! हरिमन्दिर का माहात्म्य सुनाने की कृपा तो आपने की किन्तु इसकी परिक्रमा के विधान का वर्णन नहीं किया।१। हे नाथ ! अब आप सम्भल की परिक्रमा का विधान वर्णन कीजिये। परिक्रमा में कहाँ स्नान करना पड़ता है, क्या दान किया जाता है और कैसे परिक्रमा होती है ?।२। स्कन्द ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आपने समुद्र का आचमन किया है, आपने वहुत अच्छा प्रश्न किया, अब आप परिक्रमा का विधान सुनिये।। एक बार नारद जी ने ब्रह्मलोक में पहुँचकर अपने पिता ब्रह्मा जी का दर्शन किया, उनके चारों तरफ चारों वेद मूर्तिमान् खड़े हुए थे। इसी प्रकार धर्मशास्त्र, उनके व्याख्यान, इतिहास, पुराण, अष्टाङ्ग योग भक्तिशास्त्र, सत्य, संतोष, शील आदि दैवी सम्पदा, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षियों के समूह, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, पन्नग, गन्धर्व, अप्सराएँ, लोक पालों सहित लोक, तप, श्रौत यज्ञ, स्मार्तयज्ञ, तडाग, उद्यान, कूप के आकार वाले तीर्थ, सनक-सनन्दन आदि मानसपुत्र, पितरों के समूह, शिव, विष्णु तथा उनके गण पार्षद, सभी पतिव्रता स्त्रियाँ सूर्य आदि ग्रह, वृहस्पति और शुक्राचार्य भी उनके सामने उपस्थित थे। ४, ५, ६, ७, ८, ९। सर्व लोकों में सर्वश्रेष्ठ देवर्षि नारद ने सिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये।१०। भगवान् के परमप्रिय नारद ने ब्रह्मा जी की आज्ञा से अपने आसन पर बैठकर यही प्रश्न किया किया।११। हे भगवन् ! मैं आपका दास हूँ, कभी पूर्वकाल में आपने शम्भलग्राम का माहात्म्य सुनाने की मुझ पर कृपा की थी, अब मैं उसकी परिक्रमा की विधि सुनना चाहता

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नश्चतुराननः। देवर्षिमभिनन्द्याथ प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१३।।
साधु वत्स ! महाभाग ! त्वया लोकहितैषिणा। यत्पृष्टं तत्प्रवक्ष्यामि शम्भलस्य प्रदक्षिणम् ।।१४।।
चतुर्धा कथितः पुत्र ! प्रदक्षिणविधिर्महान्। सर्वत्र स्नानदानादेः प्रकारस्त्वेक एव हि ।।१५।।
एकं देवालयस्योक्तं प्राकारस्य द्वितीयकम्। तृतीयं सर्वतीर्थानां तत्र तत्र प्रदक्षिणम् ।।१६।।
शम्भलग्रामपरिधेस्तीर्थेभ्यो बहिरुत्तमम्। प्रकृष्टो दक्षिणो हस्तो यत्र तत् स्यात् प्रदक्षिणम् ।।१७।।
प्रातरुत्थाय मेधावी कृतपौर्वाह्लिकक्रियः। शान्तो दान्तः शुचिः क्षान्तः सत्यशीलदयापरः ।।१८।।
श्रीहरेरथवा शम्भोर्जपन् मंत्रान् शनैः शनैः। प्रदक्षिणप्रक्रमणं कुर्यात् श्रद्धासमन्वितः ।।१९।।
सर्वान् कामानवाप्नोति भुक्त्वा भोगाननुत्तमान्। हरिलोकमवाप्नोति हरिमन्दिरसेवनात् ।।२०।।
येऽप्यध्यायमिमं पुण्यं शृण्वन्ति श्रद्धयान्विताः। प्रदक्षिणफलं तेऽपि प्राप्नुवन्ति न संशयः ।।२१।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये एकविंशोऽध्यायः ।।

हैं ।१२। नारद जी का प्रश्न सुनकर प्रसन्न हुए ब्रह्मा जी ने नारद जी की प्रशंसा की और कहना आरम्भ किया ।१३। हे वत्स ! संसार के हित की कामना से तुम्हारा यह प्र न बहुत ही उचित है, तुम्हारे प्रश्न के अनुसार ही सम्भल की परिक्रमा की विधि मै तुम्हें सुनाऊंगा ।१४। हे पुत्र ! सम्भल की परिक्रमा चार प्रकार की है, चारों परिक्रमाओं में स्नान दान आदि की विधि तो एक ही है। हरिमन्दिर के अन्दर देवालय की परिक्रमा एक, उसके परकोटे की दूसरी, सब तीर्थों की अलग-अलग परिक्रमा तीसरी, सभी तीर्थों, मन्दिरों और कूपों को अन्दर लेकर उनसे बाहर सम्भल की चारों तरफ की सीमाओं की चौथी, जिसकी परिक्रमा की जाए उसको अपने दाहिने हान पर लेकर उसके चारों ओर घूमने का नाम प्रदक्षिण है ।१६, १७। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या, जप, अग्निहोत्र बलिवैश्वदेव आदि नित्यकर्म करके मन और इन्द्रियों को वश में रखकर क्षमा, सत्य दया, पवित्रता आदि सद्गुणों की रक्षा करता हुआ शिव, विष्णु आदि अपने इष्टदेवों के मंत्रों का मन ही मन जप करता हुआ श्रद्धापूर्वक परिक्रमा करे ।१८,१९। इस प्रकार हरिमन्दिर की सेवा करने वाला इस लोक के सब सुख भोगकर अन्त में श्रीहरि के धाम को प्राप्त होता है ।२०। श्रद्धा सम्पन्न हो कर इस अध्याय को जो लोग सुनते-सुनाते हैं वे भी परिक्रमा का फल प्राप्त कर लेते हैं ।२१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्राकारस्य प्रदक्षिणम्। शम्भलस्य पुरस्यास्य महापातकनाशनम् ॥१॥
प्रतिमासममावास्या सिनीवाली कुहूस्तथा। तत्र स्नात्वा महोदक्यां जितवाक्कायमानसः ॥२॥
तण्डुलानां तथा दध्नां कृत्वा दानं यथाविधि। ब्राह्मणानुज्ञया कुर्यात् प्राकारस्य प्रदक्षिणम् ॥३॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा श्रद्धयान्वितः। नारी वा शीलसम्पन्ना पतिभक्तिमती सदा ॥४॥
सा भर्तारमनुज्ञाप्य शुद्धा संयतमानसा। कुर्यात्प्रदक्षिणं भक्त्या शौचाचारसमन्विता ॥५॥
विधवा च सदा कुर्यादात्मवैधव्यनाशनम्। सर्वशोकहरं पुण्यं धनधान्यसुखप्रदम् ॥६॥
पुष्पदन्तं समासाद्य प्रथमं विहिताह्निकः। भद्राश्रमं ततो गच्छेत् तत्रापि स्नानमाचरेत् ॥७॥
विप्राय श्रद्धया दद्यात् शर्करासहितं घृतम्। सुवर्णदक्षिणायुक्तं प्रक्रमेच्च प्रदक्षिणम् ॥८॥
सूर्यकुण्डं ततो गत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः। कर्तव्याः पूर्ववत् किन्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥९॥
दैहिकं बलमालोक्य कुर्याद्धर्ममनातुरः। आतुरश्चेद्धठं कुर्यादात्महत्यामवाप्नुयात् ॥१०॥
ततः सूर्यं नमस्कृत्य पुनरेतु महोदकीम्। स्नात्वात्र सन्तर्प्य पितॄन् पूजयेद् वृषभध्वजम् ॥११॥
दद्यात् गुडमयान् पिण्डान् सितासिततिलैर्युतान्। पायसं भोजयेद् विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् १२

ब्रह्मा ने कहा—अब मैं तुम्हारे आगे महापापों का विनाश करने वाली हरिमन्दिर के परकोटे की परिक्रमा का
वर्णन करूँगा।१। सिनीवाली, वह अमावस्या जिसमें चन्द्रमा की कला दीखती है, कुहू—वह अमावास्या जिसमें चन्द्र
कला नही दीखती, प्रत्येक मास की इन अमावास्याओं में मन वाणी और शरीर पर संयम रखते हुए ब्राह्मणों की आज्ञा
लेकर मनोकामना में स्नान करके चावल और दही देकर परकोटे की परिक्रमा की जाती है।२, ३। ब्राह्मण, क्षत्रिय,
वैश्य, शूद्र कोई भी श्रद्धा रखने वाला परकोटे की परिक्रमा करे, सदाचार का पालन करने वाली पतिव्रता स्त्री अपने
पति की आज्ञा लेकर परिक्रमा करे, विधवा भी अगले जन्मों में वैधव्य के नाश के लिए शांक हरण करने वाली, धन-
धान्य का सुख देने वाली, परकोटे की परिक्रमा करे।४. ५, ६। प्रथम पुष्पदन्त तीर्थ पर पहुँचकर स्नान सन्ध्या आदि
नित्यकर्म करके वहाँ से भद्राश्रम पर पहुँचकर वहाँ भी स्नान करे।७। सुवर्ण की दक्षिणा से युक्त घी और मीठा किसी
ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक देकर भद्राश्रम तीर्थ की भी परिक्रमा करे।८। भद्राश्रम से फिर सूर्यकुण्ड पहुँचकर यहाँ भी स्नान
करे, सुवर्णदक्षिणायुक्त घी चावल मीठे का दान करे, कृपणता न करे।९। शरीर का स्वास्थ्य देखकर और अपनी परि-
स्थिति देखकर धर्माचरण करे, इन दोनों बातों को न देखकर हठपूर्वक धर्माचरण करने वाला मनुष्य आत्महत्या का भागी
होता है।१०। फिर सूर्यनारायण को प्रणाम करके वहाँ से मनोकामना आकर स्नान तर्पण करे और शिव पूजन करे।११।
सफेद और काले तिल गुड़ में मिलाकर श्राद्ध की विधि से पिण्ड दान करे, ब्राह्मणों को खीर खिलाकर दक्षिणाओं से

आदौ मध्ये समाप्तौ वा माहात्म्यं शृणुयादपि । श्रुत्वा विधिं विजानाति फलं कोटिगुणं भवेत् ।१३।
इत्थं सम्पादितं येन प्राकारस्य प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन धरा भवति निश्चितम् ।।१४।।
पुरा पाञ्चालके देशे अहिच्छत्रसमीपतः । ग्रामस्तु नगराकारो बभूव मुनिसत्तम ।।१५।।
रथप्रायास्ततटे पुण्ये सर्वसत्त्वसुखावहे । वैश्यग्राम इति ख्यातो नानापण्यविभूषितः ।।१६।।
अत्र कश्चिदभूद्विप्रो गंगादत्तेति विश्रुतः । ब्राह्मणद्वेषनिरतो द्यूतकर्मपरायणः ।।१७।।
नास्ति तत्पातकं लोके न कृतं यद् द्विजन्मना । गंगादत्तेन दुष्टेन सदा संकीर्णकर्मणा ।।१८।।
तस्मिन्नेव महाग्रामे बभूव प्रमदोत्तमा । वैश्यवंशोद्भवा काचित् कमलोपमलोचना ।।१९।।
पूर्वकर्मविपाकेन सा तु वैधव्यमागता । तस्यां प्रीतिरभूत् तस्य गंगादत्तस्य पापिनः ।।२०।।
विषं दत्वा नृशंसेन स्वभार्या प्रापिता मृतिम् । शशंसुस्तस्य तत्कर्म राज्ञे ग्रामनिवासिनः ।।२१।।
स तत्याज द्विजो ग्रामं रात्रौ राजभयात्ततः । निनाय समयं कश्चित् प्रच्छन्नो दस्युसङ्गतः ।।२२।।
एतस्मिन्नेव काले तु शम्भले हरिमन्दिरे । उवास वैश्यो धर्मात्मा धर्मदास इति श्रुतः ।।२३।।
प्रतिदर्शं करोतिस्म प्राकारस्य परिक्रमाम् । ददातिस्म महोदक्यास्तटे च विविधं वसु ।।२४।।
कस्यापि याचमानस्य नावज्ञामकरोदसौ । नापृच्छत् कुलमेतस्य न गोत्राचरणे तथा ।।२५।।
ददावेव स भूतेषु भावयन् भूतभावनम् । धनं दातुमना मासि माधवे स कदाचन ।।२६।।
भार्यात्रययुतः श्रीमान् धर्मदासो महामतिः । महोदक्यास्तटे स्थित्वा याचमानानजूहवत् ।।२७।।

सन्तुष्ट करे ।१२। परिक्रमा के आदि में मध्य में अथवा अन्त में परिक्रमा की महिमा सुने, सुनकर ही विधि का ज्ञान होता है । ज्ञानपूर्वक किये हुए कर्म से करोड़ों गुना फल मिलता है ।१३। इस प्रकार की गई परिक्रमा सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा का फल देने वाली है ।१४। हे नारद ! किसी समय प्राचीन काल में अहिच्छत्र नगर के समीप नगर जैसा एक बड़ा गाँव था ।१५। सभी प्राणियों के लिए सुखदायक रामगंगा के पवित्र तट पर अनेकानेक पदार्थों के बेचने खरीदने के लिए बड़ी-बड़ी दुकानों वाले बाजारों से सुशोभित यह गाँव वनियों का गाँव प्रसिद्ध था ।१६। यहाँ कोई गंगादत्त नाम का ब्राह्मण रहता था, यह ब्राह्मणों का द्वेषी था, और जुआरी था ।१७। सदा पाप ही पाप करने वाले उस दुष्ट गंगादत्त ब्राह्मण ने, ऐसा कोई पाप नहीं था, जो न किया हो ।१८। उसी ग्राम में कमल पत्रों के समान नेत्रों वाली वैश्य वंश में उत्पन्न कोई सुन्दर स्त्री रहती थी ।१९। अपने पिछले कर्मों के कारण वह विधवा हो गई और दुष्ट गंगादत्त उस पर मोहित हो गया ।२०। उस दुष्ट ने अपनी स्त्री को विष देकर मार दिया और ग्रामवासियों ने उसके इस अपराध की सूचना राजा को दे दी । राजा के भय से वह गाँव उसने रात में ही छोड़ दिया और डकैतों के साथ रह कर अपना समय बिताया ।२२। उन्हीं दिनों सम्भल में धर्मात्मा धर्मदास नाम से प्रसिद्ध कोई वैश्य रहता था ।२३। वह प्रत्येक अमावस्या को प्राकार की परिक्रमा किया करता था और मनोकामना पर आकर अनेक प्रकार के दान दिया करता था ।२४। वह किसी भी याचक का तिरस्कार नहीं करता था, किसी का कुल, गोत्र, आचरण कुछ नहीं पूछता था ।२५। सभी प्राणियों में भगवान् की भावना रखने वाला वह उदारहृदय धर्मदास अपनी तीन स्त्रियों के सहित वैशाख मास में मनोकामना पर धन का दान करने की इच्छा से दान लेने वालों को बुला रहा था ।२६,

याचकेष्वागतेष्वासीद् गंगादत्तोऽपि याचकः। ददर्श धर्मदासस्य कनिष्ठां सुन्दरीं स्त्रियम् ॥२८॥
जलार्द्रवसनां दृष्ट्वा तां स कामवशं गतः। बभ्राम च तया सार्धं प्राकारस्य समन्ततः ॥२९॥
प्रदक्षिणं समाप्याथ धर्मदासो गृहं ययौ। सह स्त्रीभिः स तिसृभिः धर्मं मनसि धारयन् ॥३०॥
यावज्जीवं कृता तेन प्राकारस्य परिक्रमा। तेन पुण्यप्रभावेण भार्याभिः सहितः सुधीः ॥३१॥
इन्द्रलोकं जगामाथ विमानवरमास्थितः। तत्र भुक्त्वा बहून् भोगान् दिव्यान् भार्यासमन्वितः ।३२।
पाद्मं कल्पमतीत्याथ कल्पे वाराहसंज्ञके। राजा दशरथो जातो भार्यात्रयसमन्वितः ॥३३॥
गंगादत्तोऽवसत्तत्र चौर्यद्यूतपरायणः। क्रमेण यापयन् कालं मासि भाद्रपदे क्वचित् ॥३४॥
पादस्पृष्टेन सर्पेण दष्टः सद्यो ममार ह। आगता यमदूतास्तं बद्ध्वा नेतुं यमालयम् ॥३५॥
निर्भर्त्स्यं यमदूताँस्तांस्तदैव विविधायुधाः। देवदूताः समायातास्तं निन्युरमरावतीम् ॥३६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं प्राकारस्य प्रदक्षिणम्। भक्तस्य चाप्यभक्तस्य फलं सम्यङ् निरूपितम् ॥३७॥
अकामो वा सकामो वा प्राकारस्य प्रदक्षिणम्। कुर्यान्नरो वा नारी वा कामान् मोक्षं च गच्छति ॥
यः पठेदिममध्यायं शृणुयात् श्रद्धयापि वा। प्रदक्षिणीकृतस्तेन प्राकारः शाम्भलः सुखम् ॥३९॥
यः पुनः श्रद्धया हीनो हेतुवादमुपाश्रितः। तर्कागम्येषु शास्त्रेषु संशयात्मा विनश्यति ॥४०॥
तस्मान्न नास्तिकानेतच्छ्रावयेत विचक्षणः। न कदाप्यूषरे देशे बीजमुप्तं प्ररोहति ॥४१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥

२७। आये हुए माँगने वालों में गंगादत्त भी था, उसने धर्मदास की सबसे छोटी सुन्दर स्त्री को देखा ।२८। स्नान के समय गीले कपड़ों में उसको देख कर कामातुर होकर वह उसके पीछे-पीछे परकोटे के चारों ओर घूमने लगा ।२९। परकोटे की परिक्रमा पूर्ण होने के अनन्तर वह धर्मदास धर्म में मन लगाए हुए अपनी तीनों स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर चला गया ।६०। धर्मदास ने जीवनपर्यन्त अपनी तीनों स्त्रियों के साथ सम्भल के परकोटे की परिक्रमा का नियम धारण किया था। इस पुण्य के प्रभाव से वह दिव्य विमान पर बैठ कर इन्द्रलोक को गया। पाद्मकल्प तक वहाँ के दिव्य सुख भोग कर वाराहकल्प में वह अपनी तीनों स्त्रियों के साथ राजा दशरथ बना ।३१, ३२, ३३। चोरी जुआ आदि नीच कर्मों में तत्पर इंगादत्त सम्भल में ही रह कर अपना समय बिताने लगा। भादों के महीने में साँप के काट लेने से वह मर गया और यमदूत बाँधकर ले जाने के लिए आ गये ।३४, ३५। उसी समय विविध आयुधों को धारण किये हुए देवदूत यमदूतों को झिड़ककर गंगादत्त को इन्द्रपुरी में ले गये ।३६। सम्भल के परकोटे की परिक्रमा के वर्णनमें भक्त और अभक्त दोनों की सफलता का वर्णन किया ।३७। स्त्री अथवा पुरुष किसी कामना को लेकर परिक्रमा करें तो उस कामना की पूर्ति हो, निष्काम हो तो मोक्ष की प्राप्ति इस परिक्रमा का फल है ।३८। श्रद्धापूर्वक जिसने इस अध्याय को पढ़ा या सुना उसने सम्भल के परकोटे की परिक्रमा का फल प्राप्त कर लिया ।३९। तर्क के अविषय शास्त्रीय विषयों में श्रद्धा न रख कर केवल तर्क का ही आश्रय लेने वाला मनुष्य संशय के कारण इस लोक और परलोक के सुखों से वञ्चित रहता है ।४०। इसलिए ऐसे नास्तिकों को शास्त्रों के गूढ़ रहस्य न सुनावे, वञ्जर भूमि में बोया हुआ बीज नहीं उगता ।४१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ)

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच—

अहं ते कथयिष्यामि श्रृणु नारद ! सत्तम ! । शम्भले सर्वतीर्थानां प्रदक्षिणविधिं शुभम् ।।१।।
यस्य श्रवणमात्रेण तीर्थस्नानफलं भवेत् । सिंहराशिस्थिते सूर्ये सर्वकार्यफलप्रदे ।।२।।
मासि भाद्रपदे पुत्र ! यीर्थयात्रा सुसिद्धिदा । शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे यत्र भूर्जलसंप्लुता ।।३।।
शुभे तिथौ शुभे वारे शुभनक्षत्रसंयुते । चन्द्रताराद्यानुकूल्ये कुर्यात्तीर्थप्रदक्षिणम् ।।४।।
उत्थाय ब्रह्मवेलायां कुर्याच्छौचं यथाविधि । सूर्यकुण्डं पुनर्गच्छेच्छुचिः प्रयतमानसः ।।५।।
स्नानं कृत्वा विधानेन प्रातः सन्ध्यां विधाय च । देवान् पितृन् समभ्यर्च्य ब्राह्मणानामनुज्ञया ।।६।।
रक्तगन्धाक्षतैः पुष्पैर्धूपदीपैर्मनोरमैः । नैवेद्यैर्विविधैर्हृद्यैः पक्वान्नैर्घृतपाचनैः ।।७।।
फलै रत्नैश्च विविधैर्देशकालसमुद्भवैः । गणनाथं च सम्पूज्य विघ्ननाशकमव्ययम् ।।८।।
ससुवर्णं घृतं दत्वा कृत्वा श्राद्धं घृतेन वा । गच्छेत्तीर्थानि विधिना यतवाक्कायमानसः ।।९।।
सर्वाण्यर्कह्लदाद्यानि कूपान्तानि च सर्वशः । क्रमेण कथितान्येव त्वया राज्ञे ययातये ।।१०।।
तेनैव क्रमयोगेन तीर्थात्तीर्थान्तरं व्रजेत् । देहशक्ति समालोक्य द्रव्यशक्तिं च सुव्रतः ।।११।।
स्नानं दानं प्रकुर्वीत दम्भं शाठ्यं च वर्जयेत् । सूर्यकुण्डं पुनः प्राप्य समाप्य विधिमन्ततः ।।१२।।
गोभूहिरण्यवासांसि रसाँश्च विविधाँस्तथ । घृतदानं विशेषेण कुर्याद् वित्तानुसारतः ।।१३।।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या भोज्यं षड्रससंयुतम् । दक्षिणां च ततो दद्यात् विप्रेभ्यो भक्तिभावतः ।।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद सम्भल के सभी तीर्थों की परिक्रमा की सफल विधि का वर्णन सुनो ।१। हे पुत्र ! तीर्थ परिक्रमा की विधि के श्रवण मात्र से तीर्थों के स्नान का फल मिल जाता है । सब कार्यों में सफलता दिलाने वाले सूर्य के सिंह राशि में स्थित होने पर भादों के शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में पृथ्वी के जलप्लुत होने पर तीर्थ यात्रा सिद्धि देने वाली है ।२, ३। तिथि, वार, नक्षत्र, चन्द्रमा आदि शुभ ग्रहों की अनुकूलता होने पर तीर्थ यात्रा करनी चाहिये ।४। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर एकाग्र चित से सूर्यकुण्ड पर जाये ।५। ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर स्नान-सन्ध्या तर्पण करके लाल चन्दन, चावल, धूप, दीप, नैवेद्य, घृतपक्व भोजन, देश कालानुसार फल, रत्न आदि पदार्थों से श्रीगणेश का पूजन करके मन, वाणी और शरीर पर संयम रखते हुए तीर्थों पर जाये ।६, ७, ८, ९। सूर्यकुण्ड से लेकर कूपों तक सब तीर्थों का क्रम तो तुम ने राजा ययाति को बताया ही है ।१०। राजा ययाति को जो आपने तीर्थों का क्रम बताया था, उसी क्रम से यात्रा करे । शारीरिक और आर्थिक शक्ति का ध्यान रखते हुए ही किसी व्रत को रखें ।११। स्नान, दान आदि शुभ कार्यों में दिखावा नहीं हो, कृपणता भी न हो, और शक्ति से अधिकता भी न हो, फिर सूर्यकुण्ड पर आकर तीर्थयात्रा की पूर्णता के लिए अपनी योग्यता के अनुसार गौ, पृथ्वी, स्वर्ण, वस्त्र अनेक प्रकार के रसों का दान करें ।१२, १३। भक्ति भावना से भावित होकर

पश्चादनुव्रजेद् भक्त्या प्रार्थयेच्च पुनः पुनः । ज्ञानादज्ञानतो वापि यत्कृतं दुष्कृतं मया ॥१५॥
भवद्वाक्यात्तु विप्रेन्द्राः ! क्षम्यतां मे महेश्वरः । अनुज्ञया च विप्राणां पश्चाद् भोजनमाचरेत् ।१६।
कथां श्रुत्वा च विधिना तीर्थमाहात्म्यसंयुताम् । वाचकं तोषयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥
तोषयित्वा तु वक्तारं प्राप्नुयाद् विविधं फलम् । अभावे सर्वदानानामेकां गामेव दापयेत् ॥१८॥
तीर्थानां यत्फलं प्रोक्तं त्वया राज्ञे ययातये । सर्वं तल्लभते मर्त्यो योऽनेन विधिना चरेत् ॥१९॥
यश्चापि शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वा विचक्षणः । कीर्तयेच्चानुमोदेत स तीर्थफलमाप्नुयात् ॥२०॥
अपुत्रो लभते पुत्रं कन्यां वा शीलसंयुताम् । रोगी रोगात् प्रमुच्येत सुखहीनः सुखी भवेत् ॥२१॥
अन्धश्च लभते दृष्टिं बधिरः श्रुतिमाप्नुयात् । पतद्गर्भा तु या नारी स्थिरगर्भा च जायते ॥२२॥
पदे पदे पापहानिरटतामपि शम्भले । किं पुनः श्रद्धया तीर्थयात्राफलमभीप्सताम् ॥२३॥
तीर्थसेवाव्रतपराः सुखं लब्ध्वैहलौकिकम् । प्राप्नुवन्त्यक्षयां शान्तिं शिवलोकं सनातनम् ॥२४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

ब्राह्मणों को षड्रस भोजन करा कर दक्षिणा दे ।१४। कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे चलता हुआ प्रार्थना करे कि इस यात्रा के प्रसङ्ग में ज्ञान से या अज्ञान से जो मुझ से अपराध वन पड़े हैं, हे महानुभावों ! आपके वाक्यों से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर उन्हें क्षमा करें ।१५, १६। फिर विधिपूर्वक तीर्थों की महिमा को सुने और सुनाने वाले ब्राह्मण को वस्त्र अलङ्कार आदि से सन्तुष्ट करे ।१७। कथा सुनाने वाले ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर ही सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है, अन्य वस्तुओं के अभाव में एक गोदान भी पर्याप्त है ।१८। राजा ययाति को तुमने जो तीर्थों की महिमा सुनाई उसका सम्पूर्ण फल इस विधि से ही प्राप्त होता है ।१९। तीर्थों की महिमा को सुनने वाले, सुनाने वाले, कीर्तन करने वाले और समर्थन करने वालों को भी तीर्थों का फल प्राप्त होता है ।२०। सन्तानहीन को पुत्र की अथवा सुशील कन्या की प्राप्ति होती है, रोगी रोग से मुक्त होता है और दुखिया सुखी होता है ।२१। अन्धे को आंखें और बहरे को कान मिलते हैं । गर्भ गिर जाने वाली स्त्री का गर्भ स्थिर होता है ।२२। सम्भल में चलने फिरने वालों के भी पद-पद पर पाप नष्ट होते हैं । तीर्थयात्रा की सफलता पर विश्वास रखकर तीर्थयात्रा करने वालों के विषय में तो कहना ही क्या है ।२३। श्रद्धापूर्वक तीर्थ सेवा का व्रत रखने वाले स्त्री पुरुषों को इस लोक का सुख भोग कर अन्त में सनातन शिवलोक प्राप्त होकर अक्षय शान्ति मिलती है ।२४।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ।)

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद ! तत्त्वतः यथा प्रदक्षिणं कार्यं तीर्थानां बहिरेव च ।।१।।
सम्प्राप्ते कार्तिके मासे तुलायां भास्करे स्थिते । प्रदक्षिणं बहिः प्रोक्तं तिथिभेदाच्चतुर्विधम् ।।२।।
पञ्चम्यां वंशगोपालादारभेत प्रदक्षिणम् । नैमिषारण्यतः कार्यं सप्तम्यां तु प्रदक्षिणम् ।।३।।
चक्रतीर्थात्तथा कुर्यादेकादश्यां प्रदक्षिणम् । चन्द्रेश्वरान्नवम्यां स्याच्छुभं बाह्यं प्रदक्षिणम् ।।४।।
एवं चतुर्विधं प्रोक्तं तन्मध्ये नवमी परा । तिथिः सत्ययुगारम्भा कीर्तिता चेयमक्षया ।।५।।
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायाः पितृतर्पणम् । नवम्याभूर्जशुक्लायां सर्वमक्षयतां व्रजेत् ।।६।।
वर्षमेकं तु यः कुर्याद् गङ्गास्नानं निरन्तरम् । नवम्यां लभ्यते मर्त्यैः स्नानेनैकेन तत्फलम् ।।७।।
चतुर्विधमपि ह्येतत् बहिस्तीर्थप्रदक्षिणम् । यस्मादारभ्यते तीर्थात्तत्रैवायाति पूर्णताम् ।।८।।
यतः कुतश्चिदारम्भे भवेच्चन्द्रेश्वरार्चनम् । प्रदक्षिणविधिः पूर्णः कार्यश्चन्द्रेश्वराग्रतः ।।९।।
मया च विष्णुना चैव समागम्याखिलैः सुरैः । विज्ञप्तः पुरपालत्वे स्थितश्चन्द्रेश्वरः प्रभुः ।।१०।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नरैः शम्भलवासिभिः । चन्द्रेश्वरः समाराध्यस्तस्माद् देवः परो न हि ।।११।।
यानि कानि व्रतानीह कृतानि हरिमन्दिरे । भवन्ति तानि पूर्णानि चन्द्रेश्वरसमीपतः ।।१२।।
पूर्वोक्तेन विधानेन कृतनित्यक्रियः शुचिः । गणाधिपं च सम्पूज्य कुर्याद् बाह्यं प्रदक्षिणम् ।।१३।।

हे नारद ! अब तुम सम्भल के तीर्थों की बाहर से परिक्रमा का श्रवण करो ।१। कार्तिक मास में तुला राशि के सूर्य होने पर तिथि भेद से सम्भल के तीर्थों की बाहर से परिक्रमा चार प्रकार की है ।२। कार्तिक शुक्ल पञ्चमी के दिन वंशगोपाल तीर्थ से परिक्रमा आरम्भ करें। कार्तिक शुक्ल सप्तमी के दिन नैमिषारण्य तीर्थ से परिक्रमा का प्रारम्भ करें ।३। कार्तिक शुक्ल एकादशी को चक्रतीर्थ से और कार्तिक शुक्ल नवमी को चन्द्रेश्वर से सम्भल के तीर्थों की बाहर से परिक्रमा का विधान है ।४। इन चारों तिथियों मे नवमी सर्वश्रेष्ठ है। सत्ययुग के प्रारम्भ में यह तिथि अक्षय नवमी कही जाती है ।५। कार्तिक शुक्ल नवमी के दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि सभी शुभ कर्मों का अक्षय फल होता है ।६। एक वर्ष तक निरन्तर किये गये गंगास्नान का फल कार्तिक शुक्ल नवमी के दिन एक स्नान से ही मिल जाता है ।७। चारों प्रकार की यह तीर्थों के बाहर की परिक्रमा जिस तीर्थ से आरम्भ की जाती है वहीं आकर पूर्ण होती है ।८। जिस किसी भी तीर्थ से परिक्रमा करने पर चन्द्रेश्वर की पूजा अत्यावश्यक है, चन्द्रेश्वर को ही सम्मुख रख कर परिक्रमा पूर्ण होनी चाहिये ।९। सब देवताओं के साथ मिल कर मेरे और विष्णु के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् चन्द्रेश्वर ने सम्भल की रक्षा करने वाले के रूप में रहना स्वीकार किया था ।१०। इसलिए सम्भल निवासियों को प्रयत्नपूर्वक भी चन्द्रेश्वर की आराधना करनी चाहिये, उनके लिए इससे बढ़ कर कोई देवता नहीं है ।११। सम्भल में जो भी व्रत किये जाते हैं, वे सब चन्द्रेश्वर भगवान् की अध्यक्षता में पूर्ण होते हैं ।१२। भादों में सम्भल के अन्दर तीर्थों की परिक्रमा के आरम्भ में जैसे स्नान सन्ध्या आदि नित्यकर्म

घृतश्राद्धस्य वैशिष्ट्यमुक्तं बाह्यप्रदक्षिणे। श्राद्धेऽनधिकृतेभ्यस्तु घृतदानं प्रकीर्तितम् ॥१४॥
घृतदानं परं श्रेयो बहिस्तीर्थप्रदक्षिणे। घृतं काञ्चनसंयुक्तं कांस्यपात्रस्थितं भवेत् ॥१५॥
पश्यन् देवालयान् मार्गे संस्मरन्निष्टदेवताः। ध्यायन् देवीं च विकटाम् व्रजेत् पद्भ्यां शनैःशनैः।
गोयाने गोवधस्तीर्थे नरयाने निरर्थकम्। अश्वयाने फलं चार्धं सम्पूर्णं पादचारतः ॥१७॥
शीघ्रतापि न कर्त्तव्या विलम्बोऽपि च नोचितः। तस्मान्मध्यमया वृत्त्या गच्छेत् सन्तुष्टमानसः १८।
पाखण्डालापविरतो निरतो भगवद्गुणे। वेददेवद्विजातीनां निन्दासु च पराङ्मुखः ॥१९॥
चक्रतीर्थं समासाद्य कुर्यात् स्नानमनन्यधीः। सम्पूज्य तत्र चक्रेशं दधिपात्रं सशर्करम् ॥२०॥
सुवर्णदक्षिणायुक्तं सुवस्त्रपरिवेष्टितम्। दद्यात् विप्राय विदुषे चक्रेशः प्रीयतामिति ॥२१॥
लब्धं यद्वा भवेद् दत्वा तदेव श्रद्धयान्वितः। चक्रतीर्थं नमस्कृत्य परिक्रम्याग्रतो व्रजेत् ॥२२॥
ततः क्रमेण सम्प्राप्य नैमिषारण्यमुत्तमम्। स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा तत्रार्चेत् क्षेमविग्रहम् ॥२३॥
प्राप्तव्यः सर्वदा सर्वैः क्षेममूर्तेरनुग्रहः। कुर्वता च विशेषण बहिस्तीर्थप्रदक्षिणम् ॥२४॥
नैमिषं च परिक्रम्य दत्वा दानं द्विजातिषु। मधुपात्रं तिलैः सार्द्धं हिरण्यसहितं शुभम् ॥२५॥
सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यकं वाथ दारुजम्। दद्यान्न त्वायसं पात्रं पुनरग्रे परिक्रमेत् ॥२६॥
एवं क्रमेण सम्प्राप्य चन्द्रेश्वरमनन्यधीः। माहिष्मतीब्रह्मपुत्रसङ्गमे स्नानमाचरेत् ॥२७॥
कृत्वा च तर्पणं श्राद्धं ब्राह्मणानपि भोजयेत्। गोभूहिरण्यवांसांसि दद्याच्छक्त्यनुसारतः ॥२८॥

करके पवित्र होकर गणेश पूजन के पश्चात् परिक्रमा का वर्णन किया था, वाह्य परिक्रमा भी उसी विधि से करनी चाहिये।१३। तीर्थों के बाहर की परिक्रमा में घृतश्राद्ध का विशेप विधान है, श्राद्ध में जिनका अधिकार नहीं है अथवा सामर्थ्य नहीं है उनके लिये घृतदान कहा गया है। तीर्थों से बाहर की परिक्रमा में घृतदान की अधिक महिमा है, काँसे के पात्र में सुवर्ण दक्षिणा से युक्त घृत होना चाहिये।१५। मार्ग में देवालयों का दर्शन करते हुए, इष्ट-देवताओं का स्मरण करते हुए, विकटा देवी का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे पैरों चले।१६। बैलों की सवारी पर तीर्थयात्रा करने से गोवध का पाप लगता है। मनुष्यों पर सवार होकर तीर्थयात्रा निष्फल होती है, घोड़े की सवारी पर आधा फल रह जाता है। पैरों से यात्रा सम्पूर्ण फल देने वाली है। पैरों चलने में भी शीघ्रता और विलम्ब दोनों ही ठीक नहीं है। इसलिए प्रसन्नचित होकर मध्यम गति से चलना चाहिये।१८। शास्त्रविरुद्ध चर्चाएँ न करते हुए, भगवद्गुणगान करते हुए, वेदों, देवताओं और ब्राह्मणों की निन्दा न करते हुए तीर्थयात्रा करनी चाहिये।१९। चक्रतीर्थ पर पहुँचकर चक्रेश भगवान् का पूजन करें, चक्रेश भगवान् की प्रसन्नता के लिए दही से मीठे से भरा हुआ पात्र किसी विद्वान् ब्राह्मण के लिए दे, इस पात्र में सुवर्ण की दक्षिणा भी होनी चाहिए और यह पात्र किसी सुन्दर वस्त्र से लिपटा हुआ भी हो।२०, २१। अथवा जो भी कुछ अपने पास देने योग्य हो उसे श्रद्धापूर्वक देकर चक्रतीर्थ को प्रणाम करके परिक्रमा करके आगे को चले।२२। फिर क्रमशः नैमिषारण्य तीर्थ पर पहुँचकर स्नान सन्ध्या तर्पण से निवृत्त होकर क्षेमनाथ का पूजन करे।२३। सभी को हमेशा क्षेमनाथ की कृपा प्राप्त करना उचित है, बाहर से तीर्थों की परिक्रमा करने वालों को विशेष रूप से क्षेममूर्ति का आराधन आवश्यक है।२४। नैमिषारण्य की परिक्रमा करके लोहे के पात्र को छोड़कर सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा अथवा लकड़ी के पात्र में तिल मीठा और सोना भरकर उसको ब्राह्मणों के लिए देकर और भी दान दक्षिणा देकर आगे को बढ़े।२५. २६। इस क्रम से चन्द्रेश्वर पर पहुँचकर वहां माहिष्मती और ब्रह्मपुत्रनद के सङ्गम में स्नान करे।२७। तर्पण श्राद्ध करके ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपनी

शम्भलग्राममाहात्म्यं शृणुयात् स्वजनैः सह । न जानाति विधिं सम्यक् कथायाः श्रवणं विना ।२९।
यो यस्य नियमः कश्चित् स निवेद्यो द्विजन्मसु । अभिलाषश्च वक्तव्यस्ततः सर्वान् क्षमापयेत् ।३०।।
आगत्य वंशगोपालं पूर्णां कुर्यात् प्रदक्षिणाम् । तत्र कृत्वा घृतश्राद्धं स्वगृहं पुनराव्रजेत् ।।३१।।
देशकालौ समालोक्य ज्ञात्वा शारीरिकं बलम् । दृष्ट्वा च वित्तसामर्थ्यं कुर्याद् धर्मनिषेवणम् ।३२।
एकाहाच्चेन्न शक्येत कर्त्तुं सर्वं प्रदक्षिणम् । द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा दिवसैः परिपूरयेत् ।।३२।।

।। इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये चतुर्विशोऽध्यायः ।।

शक्ति के अनुसार गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि का दान करे ।२८। अपने इष्ट-मित्रों के सहित सम्भल की महिमा सुने क्योंकि कथा सुने विना विधि का ज्ञान नहीं होता ।२९। जिसने जो नियम धारण किया हो या जिसकी जो इच्छा हो, ब्राह्मणों के आगे उसका निवेदन करे और क्षमा प्रार्थना करे ।३०। वंशगोपाल तीर्थ पर आकर घृतश्राद्ध करके परिक्रमा पूर्ण हो जाने पर अपने घर चला आये ।३१। देशकाल के अनुसार शरीर की और दान करने की सामर्थ्य को देखकर ही धर्म सेवा करनी चाहिये ।३२। एक दिन में यदि पूरी परिक्रमा न हो सके तो दो-तीन या चार दिन में भी पूरी कर ले ।३३। इसीलिये कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को वंशगोपाल से परिक्रमा प्रारम्भ करके पञ्चमी को वंशगोपाल पर आ कर परिक्रमा की समाप्ति का प्रचलन है। सम्भल के तीर्थों में सूर्यकुण्ड की प्रथम गणना है, इसलिये षष्ठी के दिन सूर्यकुण्ड पर आकर परिक्रमा का महोत्सव मनाया जाता है।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भलमाहात्म्य का चौवीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ)

पञ्चविंशोऽध्यायः

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। यथा क्षत्राधमः स्वर्गं सुबाहुः प्राप्तवान् पुरा ।।१।।
सोमवंशोद्भवो राजा सत्यवानिति विश्रुतः। पुरा कलिङ्गविषये प्रजा धर्मेण पालयन् ।।२।।
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। यथा मनोर्यथेक्ष्वाकोर्ययातेर्भरतस्य च ।।३।।
तस्य धर्मैकनिष्ठस्य बभूवुः पञ्च सूनवः। दीर्घबाहुः सुबाहुश्च सुरथो द्विरथो मधुः ।।४।।
बाल्येषु पाठिताः पित्रा विद्यासु निपुणीकृताः। वेदाङ्गेषु च वेदेषु नीतिशास्त्रे कलासु च ।।५।।
अथ वार्द्धकमालक्ष्य सुतान् राज्ये न्यवेशयत्। सुबाहुमुत्तरे देशे पूर्वे च सुरथं तथा ।।६।।
द्विरथं दक्षिणे देशे पश्चिमे च मधुं सुतम्। दीर्घबाहुमथ ज्येष्ठं राजधान्यां न्यवीविशत् ।।७।।
स्वयं जगाम मेधावी तपः कर्तुं विरक्तधीः। तपोबलेन च स्वर्गं ययौ देवैरभिष्टुतः ।।८।।
पितर्युपरते पुत्रा राज्यं चक्रुर्यथागमम्। विना सुबाहुमेकं ते चत्वारो धर्मरक्षकाः ।।९।।
सुबाहुर्व्यसनी दुष्टो दुष्टसंसर्गदूषितः। अदण्ड्यान् दण्डयन्नित्यं दण्डयोग्यानजूगुपत् ।।१०।।
ब्रह्मस्वहारी सततमगम्यागमने रतः। प्रजानां दुःखदो नित्यं धूमकेतुरिवापरः ।।११।।
श्रुत्वा तं तस्य वृत्तान्तं भ्रातरो दीनमानसाः। न शेकुर्यर्हि सन्मार्गे तमानेतुं कथञ्चन ।।१२।।
तथा मिलित्वा तैः सर्वैः स राज्यादवरोपितः। भ्रष्टराज्यः श्रिया हीनो बभ्राम स वनाद्वनम् ।।१३।।
वनस्थितोऽपि दुष्टात्मा सोऽध्वन्यानामसून् धनम्। जहार दीनहृदयो जनान् कृच्छ्रेष्वपातयत् ।१४।

इस विषय में एक प्राचीन इतिहास है कि एक सुवाहु नाम का नीच क्षत्रिय किस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त हुआ ।१। चन्द्रवंश का राजा सत्यवान् कभी कलिङ्ग देश में धर्मानुसार अपनी प्रजा का पालन किया करता था ।२। पुत्रों के समान अपनी प्रजा का पालन करने वाले मनु, इक्ष्वाकु, ययाति और भरत के समान उस धर्मात्मा राजा के पाँच पुत्र थे— दीर्घवाहु, सुवाहु, सुरथ, द्विरथ और और मधु ।३, ४। पिता ने इन पाँचों को वचपन में ही वेद-वेदाङ्ग, नीति, कला आदि विद्याएँ सिखला दी थीं ।५। वृद्धावस्था को आया हुआ देखकर राजा सत्यवान् ने सुवाहु को उत्तर में, सुरथ को पूर्व में, द्विरथ को दक्षिण में, मधु को पश्चिम देश में राज्य देकर ज्येष्ठ पुत्र दीर्घवाहु का अपने देश की राजधानी में ही राज्याभिषेक किया ।६, ७। बुद्धिमान् राजा सत्यवान् विरक्त होकर तप करने चला गया और फिर समयानुसार देवताओं से प्रशंसा प्राप्त करता हुआ स्वर्ग को चला गया ।८। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर सुवाहु को छोड़कर चारों पुत्र पिता के अनुरूप ही धर्म की रक्षा करने वाले थे ।९। दुष्टों के साथ रहने से सुवाहु में अनेक बुराइयाँ आ गयी थीं, वह निरपराधों को दण्ड देने लगा और अपराधियों की रक्षा करने लगा। ब्राह्मणों का धन हरण करने वाला तथा अगम्य स्त्रियों के साथ गमन करने वाला पुच्छल तारे के समान वह प्रजा को निरन्तर दुःख देने के लिए ही पैदा हुआ था ।१०, ११। उसके दुराचारों का समाचार जानकर भाइयों को वहुत दुःख हुआ और वे जब उसको सन्मार्ग पर न ला सके तो सबने मिल कर उसे राजगद्दी से उतार दिया और वह दीन-जंगलों में इधर-उधर भटकने लगा ।१२, १३। वनों में रहते हुए भी उस दुष्ट ने क्रूरता पूर्वक रास्ता चलने

दीर्घबाहुर्ममहातेजा वनस्थस्यापि तस्य तान् । दुराचारान् गुप्तचरैर्ज्ञात्वा तं बह्वभर्त्सयत् ॥१५॥
सहायकान् निहत्यास्य वनात्तं निरसारयत् । देशान्तरेष्वसौ गत्वा जनांस्तत्राप्यवञ्चयत् ॥१६॥
क्वचिच्चौर्यं क्वचिद् द्यूतमकरोत्तादृशैः सह । मद्यपानरतो मन्दः क्वचिद् वेश्यानुगोऽभवत् ॥१७॥
क्वचिद् देवलको भूत्वा परस्त्रीरतिलोलुपः । क्वचिद् गायन् क्वचिन्नृत्यन् क्वचिद्वाद्यैरवर्त्तत ॥१८॥
शणसर्जरसादीनां क्रयविक्रयकृत् क्वचित् । नास्ति तत्पातकं तेन न कृतं यदनेकधा ॥१९॥
कदाचिद् दैवयोगेन शम्भलग्राममागतः । तत्रापि बहुशः पापी पापमेवाकरोत् सदा ॥२०॥
आगतस्य चतुर्थेऽह्नि यात्रासीत् पुरवासिनाम् । देशान्तराच्चागतानां नराणां स्त्रीगणैः सह ॥२१॥
ऊर्जे शुक्लनवम्यां सा बहिस्तीर्थपरिक्रमा । पौराणिकान् पुरस्कृत्य प्रवृत्ता विधिकोविदान् ॥२२॥
तेषां मध्ये गतस्तत्र सुबाहुः क्षत्रियाधमः । क्षत्रजातिमवछाद्य ब्राह्मणोऽहमिति ब्रुवन् ॥२३॥
गोपाले चक्रतीर्थे च नैमिषे चन्द्रकेश्वरे । सदक्षिणानि पात्राणि प्रतिजग्राह निस्त्रपः ॥२४॥
प्रवासिनमिमं ज्ञात्वा सर्वेऽस्मै श्रद्धया ददुः । प्रतिगृह्य च तत्सर्वं वेश्यायै प्रददौ निशि ॥२५॥
तत्र देवलकस्यासौ न्यवात्सीत् कस्यचिद्गृहे । विधवां तस्य भगिनीं चकमे कामसंमोहितः ॥२६॥
तस्यामासक्तहृदयः प्रतिवेश्यपि कश्चन । केशाकेश्यभवद् युद्धं तेनास्य च परस्परम् ॥२७॥
विषं भुक्त्वा ममारासौ सुबाहुर्भयविह्वलः । आगत्य यमदूतैश्च बद्ध्वा नीतो यमालयम् ॥२८॥
यत्र यत्राप्यसौ पापी नरकेषु निपातितः । यातनास्तत्रतत्रत्यास्तत्क्षणात् क्षीणतां ययुः ॥२९॥

वालों के प्राण और धन छीनने आरम्भ कर दिये, वहाँ भी वह लोगों को मुसीबत में डाल रहा था ।१४। उसके बड़े भाई तेजस्वी दीर्घवाहु ने गुप्तचरों से उसके दुराचारों को जान कर उसे वहुत धमकाया ।१५। उसके साथियों को मार कर उसे वनों में भी उसने नहीं रहने दिया, वह फिर भी ठग वनकर जगह-जगह जाकर ठगी करने लगा ।१६। चोरों और जुआरियों के साथ रहकर कहीं चोरी करता था, कहीं जुंआ खेलता था, कहीं शराव पीकर वेश्याओं की सेवा करता था ।१७। कहीं पुजारी बनकर पराई स्त्रियों को धोखा देने का प्रयत्न करता, कहीं गाने-बजाने और नाचने में भी प्रवृत्त होता था ।१८। लवण आदि रस, लाख-चमड़े आदि निषिद्ध पदार्थों के वेचने खरीदने का व्यापार कभी करता था, कोई ऐसा पाप नहीं था जो इसने अनेकों बार न किया हो ।१९। प्रारब्धानुसार यह किसी समय सम्भल में भी आया और वहाँ भी इसने पाप ही कमाए ।२०। यहाँ इसके आने के चौथे दिन ही सम्भल निवासी और अन्य देश वासी स्त्री पुरुषों की तीर्थयात्रा उपस्थित थी । कार्तिक शुक्ल नवमी के दिन विद्वानों के निर्देशानुसार वाहर से तीर्थों की परिक्रमा प्रारम्भ हो गई ।२१, २२। यह नीच क्षत्रिय सुवाहु भी अपने आपको ब्राह्मण बताकर परिक्रमा करने वालों में सम्मिलित हो गया ।२३। वंशगोपाल, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य और चन्द्रेश्वर के तट पर इस निर्लज्ज ने दक्षिणा के साथ सोना, चाँदी, काँसा आदि के पात्रों का दान भी लिया ।२४। परदेशी समझ कर सबने इसको दान दिया और इसने वह सब दान लेकर रात्रि में वेश्या को दे दिया ।२५। यहाँ किसी पुजारी के घर रहने लगा और उसकी विधवा बहिन को देखकर यह उस पर मोहित हो गया ।२६। उस पुजारी का कोई पड़ोसी भी उस पुजारी की वहिन को चाहता था, इस निमित्त से उस पड़ोसी के साथ सुवाहु की भिड़न्त हो गयी ।२७। डरा हुआ सुवाहु विष खाकर मर गया और और यमदूत उसको पकड़कर यमपुरी में ले गये ।२८। जिन-जिन नरकों में इस पापी को गिराया गया, शम्भलेश्वर महादेव की कृपा से उन-उन नरकों में कष्ट देने की सामर्थ्य नष्ट हो गई ।२९।

तत्संस्पर्शात्तथान्येषां यातनाः पापिनामपि। नष्टा इतीदृशं दृष्ट्वाश्चर्यं दूताश्चकम्पिरे ॥३०॥
यमराजान्तिकं जग्मुर्यमदूतास्त्वरान्विताः। आचख्युरिदमाश्चर्यं प्रणमन्तः पुनः पुनः ॥३१।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

जिन नरकों में सुवाहु को गिराया गया, उन नरकों में पड़े हुए अन्य पापियों के कष्ट भी नष्ट हो गये। इस आश्चर्य को देखकर यमदूत काँप उठे।३०। यमदूतों ने शीघ्र ही यमराज के पास पहुँच कर यह यह अनोखी घटना सुनाई।३१।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ षड्विंशोऽध्यायः

यमः श्रुत्वैतदाश्चर्यं चित्रगुप्तमथाह्वयत् । श्रावितं स्वभटैर्वृत्तं सुबाहोस्तदजिज्ञपत् ॥१॥
श्रुत्वा तच्चित्रगुप्तोऽपि न किञ्चित्प्रत्यपद्यत । मनसापि किमप्यस्य नास्मार्षीत् सुकृतं कृतम् ॥२॥
मीमांसमानयोरेवं समदृक्चित्रगुप्तयोः । मणिभद्रो गणश्रेष्ठः शिवलोकादवातरत् ॥३॥
तं दृष्ट्वा तेजसा व्याप्तमुत्तस्थतुरुभावपि । सांजली प्रह्वमूर्धानौ ववन्दाते स्थिराकृती ॥४॥
तयोः प्रणामं स्वीकृत्य मणिभद्रो दयामयः । चक्रे चित्तसमाधानं संशयोदधिमग्नयोः ॥५॥
पालने स्वाधिकारस्य युवां विक्षिप्तचेतसौ । व्यस्मार्ष्टाम् शिवमाहात्म्यं तदिदं श्रावयाम्यहम् ॥६॥
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः । विदांकुरुतमित्येतत् प्रथमं परिनिष्ठितौ ॥७॥
ब्रह्माप्यभिन्न उभयोरित्येकैव त्रयी स्मृता । रागद्वेषादिरहितैर्मुनिभिर्वेदपारगैः ॥८॥
माया शक्तिरभिन्नैषामेभिरेकात्मतां गतैः । सरस्वती रमा रौद्रीत्यादिरूपोपलक्षिता ॥९॥
विलोक्य भगवान् रुद्रः स्त्रष्ट्रा सृष्टा इमाः प्रजाः । रुरोद चिन्तयन्नासां दुःखानि करुणार्णवः ॥१०॥
विष्णुः स्वीकृत्य तद्रक्षां न्यरुणत्तज्जिहीर्षुताम् । तथापि मुक्तये तासां काशीं शूले न्यवासयत्११।
प्रजानां रक्षको विष्णुरिति सन्तुष्टमानसः । भूमिष्वस्यावताराणां मुक्तिसत्रमचालयत् ॥१२॥

यमराज ने यह आश्चर्यमयी घटना सुनकर चित्रगुप्त को वुलाया और अपने सेवकों द्वारा सुबाहु का यह अद्भुत प्रभाव उनको भी सुनाया ।१। यह सब सुनकर चित्रगुप्त की समझ में भी कुछ न आया, सुवाहु ने मन से भी कोई अच्छा काम किया है, यह उन्हें याद न था ।२। इस प्रकार संशय में पड़े यमराज और चित्रगुप्त के विचार करते समय ही शिव के गणों में सर्वश्रेष्ठ मणिभद्र शिवलोक से उतरे ।३। उन तेजोमय मणिभद्र को देखकर यमराज और चित्रगुप्त दोनों ही उठकर खड़े हो गये और दोनों ने ही हाथ जोड़ कर सिर झुकाकर शरीर को स्थिर करके उन्हें प्रणाम किया ।४। दया के अवतार मणिभद्र ने उन दोनों का प्रणाम स्वीकार करके संशय समुद्र में डूबे हुए उनके मन की चञ्चलता को को दूर किया ।५। अपनी अधिकार की रक्षा में आप दोनों इतनें व्यस्त हैं कि शिव की महिमा को भूल गये हैं, मैं अब तुम्हें उसकी याद दिलाता हूँ ।६। तुम दोनों का ज्ञान परिपक्व हो, इसलिए प्रथम इस बात को ठीक तरह समझो कि विष्णु और शिव नितान्त अभिन्न हैं, ये दोनों एक दूसरे का हृदय है ।७। ब्रह्मा भी इन दोनों से अभिन्न हैं, राग द्वेष आदि दोषों से रहित हृदय वाले वेदों के पारगामी मुनियों ने इनको एक ही कहा है ।८। सृष्टि स्थिति-संहार-कारिणी इनकी माया शक्ति भी सरस्वती-लक्ष्मी-दुर्गा आदि अनेकरूपधारिणी इनसे अभिन्न ही हैं ।९। ब्रह्मा की बनाई हुई प्रजा के आगामी दुःखों का चिन्तन करके करुणा के समुद्र भगवान रुद्र रो पड़े ।१०। फिर क्रोध में भरकर जब भगवान् रुद्र सृष्टि का संहार करने के लिए उद्यत हुए तब तक भगवान् विष्णु ने उस प्रजा की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उन्हें उसके संहार से रोक दिया तो भी भगवान् रुद्र ने प्रजा की मुक्ति के लिए अपने त्रिशूल पर काशी को बसाया ।११। भगवान् विष्णु प्रजा के रक्षक हैं, इस बात से प्रसन्न होकर भगवान्

शम्भले विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य गृहे हरिः। म्लेच्छानधर्मभूयिष्ठान् प्रादुर्भूय हनिष्यति ॥१३॥
प्रवर्तयिष्यति कृतं धर्मं संस्थापयिष्यति। स्वरूपसुखयोग्याश्च प्रजा सर्वाः करिष्यति ॥१४॥
हरिमन्दिरमेतर्हि विश्वकर्मा करिष्यति। त्रिशूले शम्भलग्रामं त्रिकोणं वासयिष्यति ॥१५॥
त्रिष्वप्येतस्य कोणेषु शिवस्तस्मात् प्रतिष्ठितः। प्रेम्णा च श्रीहरेः शम्भुरत्रास्ते पुरपालकः ॥१६॥
सुबाहुः कृतवान् पापं जन्मारभ्यैव यद्यपि। तथाप्यत्र मृतो भूमौ केनचित्पुण्यकर्मणा ॥१७॥
शिवलोकमिमं नेतुं प्राहिणोन्मां सदाशिवः। ततोऽस्य स्पर्शमात्रेण शान्ता नरकयातनाः ॥१८॥
परितः शम्भलग्रामं मुक्तिक्षेत्रं प्रवर्तते। तस्मादत्र मृतान्नेतुं प्रभवो न भवद्भटाः ॥१९॥
एवमुक्त्वा गणश्रेष्ठो मणिभद्रः सुबाहुकम्। विमानवरमारोप्य कैलासशिखरं ययौ ॥२०॥
स प्राप्य हरसान्निध्यं विजहाराप्सरोवृतः। एतत्ते कथितं पुत्र ! सर्वं नारद तत्त्वतः ॥२१॥
य एतच्छृणुयान्नित्यं बहिस्तीर्थप्रदक्षिणम्। माहात्म्यं च त्रिंधि तात ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥
नारदो ब्रह्मणो वाक्यं श्रुत्वा श्रद्धासमन्वितः। ययौ नारायणं द्रष्टुं वैकुण्ठेऽकुण्ठविग्रहम् ॥२३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भलमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥

शिव ने विष्णु के अवतारों कीं सभी भूमियो में मुक्ति का सदावर्त चलाया है।१२। भगवान् विष्णु सम्भल में विष्णुयशा ब्राह्मण के घर प्रकट होकर म्लेच्छों का संहार करेंगे।१३। सत्ययुग का आरम्भ करेंगे, धर्म को चारों पैरों पर टिकाएँगे, सम्पूर्ण प्रजा को आत्मसाक्षात्कार के योग्य बनाएँगे।१४। विश्वकर्मा नाम के प्रजापति त्रिशूल पर सम्भल को तिकोना बसाएँगे और हरिमन्दिर नाम से इसको विख्यात करेंगे।१५। इसलिए इसके तीनों कोनों पर शिवलिंगों की प्रतिष्ठा हुई है, श्रीहरि के प्रेम से ही भगवान् शंकर इस ग्राम के रक्षक बनकर बैठे हैं।१६। जन्म से लेकर मरने तक यद्यपि सुबाहु ने पाप ही किये हैं, किन्तु किसी पिछले पुण्य कर्म के प्रभाव से इसकी मृत्यु सम्भल की भूमि में हुई है।१७। सदाशिव ने इसको शिवलोक में ले जाने के लिए मुझे यहाँ भेजा है, इसलिए इसके स्पर्श से नरकों के कष्टों का नाश हुआ है।१८। सम्भल के चारों ओर मुक्ति का सदावर्त बँट रहा है, इस लिए यहाँ मरने वालों पर आप के दूतों का अधिकार नहीं है।१९। शिव के गणों में श्रेष्ठ मणिभद्र इस प्रकार कह कर सुन्दर विमान पर उस सुबाहु को बिठाकर कैलाश पर्वत पर ले गये।२०। वहाँ वह सुबाहु शिव की सन्निधि पाकर अप्सराओं से घिरा हुआ विहार करने लगा हे। पुत्र नारद ! तुम्हारे प्रश्नानुसार तुम को सम्भल की परिक्रमा की विधि और फल सुना दिया।२१। हे नारद ! बाहर से सम्भल के तीर्थों की परिक्रमा की विधि और उसका फल सुनने वाले भी सब पापों से मुक्त होते हैं।२२। ब्रह्मा जी के इस उपदेश को श्रद्धापूर्वक सुनकर नारद जी सनातन शरीरधारी नारायण का दर्शन के लिए वैकुण्ठ चले गये।२३।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भल-माहात्म्य का छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।)

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

स्कन्द उवाच—

इति ते कथितं ब्रह्मन् ! शम्भलस्य प्रदक्षिणम् । माहात्म्यं च मया सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥१॥
नास्तिकाय कृतघ्नाय गुरुद्रोहरताय च । निंदकाय न दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥२॥
य एतच्छृणुयाद् भक्त्या ऋतौ हेमन्तसंज्ञके । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३॥
शिशिरर्तौ पुनः श्रुत्वा अतिरात्रफलं भवेत् । वसन्तर्तौ श्रुतेन स्यात् पुण्डरीकफलं बहु ॥४॥
ग्रीष्मर्तौ शृण्वतः पुंसः फलं स्यादश्वमेधजम् । वर्षासु शृण्वतस्तत् स्यात् राजसूयाश्वमेधयोः ॥५॥
ऋतौ शरदि यो विप्रः शृणोति विधिवन्नरः । फलं सुवर्णदानस्य प्राप्नुयान्नैव संशयः ॥६॥
माहात्म्यं शम्भलस्येदं कलौ गुप्तं भविष्यति । भूभागान् सर्वतोऽत्रत्यान् वेष्टयिष्यन्ति चैडकाः ।७॥
वेदेभ्यो देवताभ्योऽपि तीर्थेभ्यश्च पराङ्मुखाः । एडकास्वेव विश्वासं करिष्यन्ति द्विजातयः ॥८॥
तस्माच्छम्भलमाहात्म्यं श्रावयेन्न तथाविधान् । श्रद्धावद्भ्योऽनसूयद्भ्यो दातव्यं च प्रयत्नतः ॥९॥
शालिग्रामस्य माहात्म्यं श्रावयिष्याम्यतः परम् । शम्भलस्य च माहात्म्यं श्रावितं मङ्गलप्रदम् ।१०।
अपुत्रो लभते पुत्रं धनहीनो धनं बहु । स्त्रियं लभेत स्त्रीकामो धर्मकामार्थवर्द्धिनीम् ॥११॥
भ्रष्टराज्यस्य राज्यं स्यात् विरक्तो मोक्षमाप्नुयात् । माहात्म्यं शम्भलस्यैतच्चतुर्वर्गफलप्रदम् ।१२।

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे भूखण्डे सम्भल-माहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥

स्कन्द ने फिर अगस्त्य से कहा—हे अगस्त्य ! जो कुछ तुम ने मुझ से पूछा वह सब सम्भल का माहात्म्य, परिक्रमा की विधि का वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया ।१। ईश्वर को और वेदों को न मानने वाले, दूसरों के उपकार को भूल जानें वाले, गुरुजनों से द्रोह कनने वाले, निन्दक लोगों को यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिये ।२। इसे हेमन्त ऋतु में सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता हैं, शिशिर ऋतु में सुनने से अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है, और वसन्त ऋतु में सुनने से पुण्डरीक यज्ञ का बहुत बड़ा फल मिलता है ।४। ग्रीष्म ऋतु में सुनने से अश्वमेध का फल मिलता हैं और वर्षा ऋतु में सुनन से राजसूय और अश्वमेध इन दोनों यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।५। हें अगस्त्य ! जो मनुष्य शरद् ऋतु में इस कथा को विधि पूर्वक सुनता है, उस को सोने के बहुत से दान का का फल मिलता है ।६। कलियुग में सम्भल का माहात्म्य गुप्त रहेगा । सम्भल की भूमि का अधिक भाग यवनों से आक्रान्त रहेगा और कबरों से घिर जाएगा ।७। ब्राह्मणादि चारों वर्ण वेदों-देवताओं और तीर्थों से मुँह फेर कर कबरों पर ही विश्वास करेंगे ।८। इसलिये सम्भल की महिमा ऐसों को न सुनावे । दोषदृष्टि न रखने वालों को प्रयत्न करके भी सुनावे ।९। अब इस के आगे मैं तुम्हें शालिग्राम की महिमा सुनाऊँगा, सम्भल का मङ्गलमय माहात्म्य तुमने सुन ही लिया ।१०। इस कथा के सुनने से पुत्रहीन को पुत्र और धनहीन को धन मिलता है, स्त्री की इच्छा रखने वाले को धर्म, अर्थ, काम को बढ़ावा देने वाली स्त्री मिलती है ।११। राजगद्दी से गिरे हुए को राज्य की प्राप्ति और विरक्त को मोक्ष की प्राप्ति होती है । इस प्रकार यह सम्भल का माहात्म्य धर्म अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का देने वाला है ।

(स्कन्दपुराण के भूखण्ड में सम्भलमाहात्म्य का सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ)

परिशिष्ट :

(१) तीर्थ स्नान समय सूची

क्रमांक	तीर्थ का नाम	पर्व, स्नानादि का समय
१.	अवन्तीसर	हस्तनक्षत्र युक्त अष्टमी
२.	अंगारक	प्रत्येक मंगलवार
३.	अत्रिकाश्रम	ऋषि पंचमी
४.	आनन्दसर	बुधाष्टमी, भाद्रपद मास चतुर्दशी
५.	एकान्ति	भाद्रपद कृष्ण तृतीया
६.	ऊर्ध्वरेता	अष्टमी
७.	सूर्यकुण्ड	प्रत्येक रविवार, सप्तमीयुक्त रविवार, कार्तिक शुक्ल षष्ठी का मेला
८.	हंसतीर्थ	चैत्र कृष्ण अष्टमी
९.	कृष्णतीर्थ	एकादशी
१०.	सन्निहति	वनयात्रा में स्वेच्छा से नियम पूर्वक
११.	कुरुक्षेत्र	प्रत्येक संक्रान्ति, कन्या की संक्रान्ति, सूर्यग्रहण
१२.	पादोदक	कार्तिक मास, कार्तिक कृष्ण द्वादशी
१३.	श्वेतद्वीप	वैशाख शुक्ल चतुर्दशी
१४.	तार्क्ष्यकेशव	गणेश चौथ
१५.	चन्द्रेश्वर	चन्द्रग्रहण
१६.	शंखमाधव	मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी व सप्तमी
१७.	लोलार्क	भाद्रपद शुक्ल षष्ठी तथा मार्गशीर्ष मास की सप्तमी यदि रविवार हो
१८.	दशाश्वमेध	ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक
१९.	पिशाचमोचन	श्रावण शुक्ल चतुर्दशी
२०.	नैमिषारण्य	प्रत्येक बृहस्पतिवार, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को मेला
२१.	विजयतीर्थ	विजयदशमी (दशहरा)
२२.	धर्मह्रद	मंगलवार चतुर्थी
२३.	चतुस्सागर	वन यात्रा में स्वेच्छानुसार
२४.	यमतीर्थ	कार्तिक शुक्ल द्वितीय (यमद्वितीया)
२५.	मणिकर्णिका	सोमवती अमावास्या, एकादशी चन्द्रग्रहण तथा पूर्णमासी
२६.	माहिष्मती नदी	बुधवारयुक्त नवमी
२७.	ऋणमोचन	वृहस्पतिवार अष्टमी पुष्य नक्षत्र व्यतीपात योग युक्त अमावास्या
२८.	पापमोचन	मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी, रविवारयुक्त अष्टमी, मंगलवारयुक्त चतुर्दशी
२९.	कालोदक	दीपावली के दिन
३०.	सोमतीर्थ	प्रत्येक सोमवार, स्वाती नक्षत्रयुक्त आश्विन की अमावास्या, सोमवती अमावास्या
३१.	गोतीर्थ	कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा (गोवर्धन) तथा कार्तिक शुक्ल अष्टमी (गोपाष्टमी)
३२.	सुदर्शनतीर्थ	वनयात्रा में, स्वेच्छानुसार
३३.	रत्नप्रयाग	माघ मास में तथा सप्तमी में
३४.	वासुकि प्रयाग	नाग पंचमी
३५.	क्षेमक प्रयाग	कृष्ण जन्माष्टमी
३६.	गन्धर्व प्रयाग	वनयात्रा में, स्वेच्छानुसार
३७.	तारक प्रयाग	वनयात्रा में. स्वेच्छानुसार
३८.	मृत्युतीर्थ (मृत्युञ्जय)	कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा (दीपावली के दूसरे दिन)
३९.	ज्येष्ठ पुष्कर	कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तथा कार्तिक मास अष्टमी
४०.	मध्य पुष्कर	कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तथा कार्तिक मास की अष्टमी
४१.	कनिष्ठ पुष्कर	कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा तथा कार्तिक मास की अष्टमी
४२.	ब्रह्मावर्त	वैशाख शुक्ल तृतीया

क्रमांक	तीर्थ का नाम	पर्व, स्नानादि का समय
४३.	नर्मदा तीर्थ	वृहस्पति की सिंह की संक्रान्ति, सूर्य की सिंह की संक्रान्ति
४४.	नन्दा	कार्तिक मास, सोमवती प्रत्येक सोमवार तथा प्रत्येक रविवार
४५.	सुनन्दा	(,,)
४६.	सुमना	(,,)
४७.	सुशीला	(,,)
४८.	सुरभि	(,,)
४९.	विमला तीर्थ (भविष्य गंगा)	कार्तिक पूर्णिमा चन्द्रग्रहण तथा प्रत्येक संक्राति
५०.	गोमती तीर्थ	भाद्रपद शुक्ल द्वादशी
५१.	गोदावरीसर तीर्थ	सिंह की सूर्य संक्रान्ति
५२.	भारती तीर्थ	श्रावण मास की चतुर्दशी
५३.	रेवा कुण्ड	शुक्रवार पंचमी तथा वैशाख मास की तृतीय तथा चतुर्थी
५४.	गोपाल तीर्थ (वंश गोपाल)	मार्गशीर्ष मास की पंचमी या शुक्रवार षष्ठी या शुक्रवार पंचमी (कार्तिक शुक्ल पंचमी का मेला)
५५.	मत्स्योदरी	कार्तिक शुक्ल, नवमी
५६.	देवखात	प्रत्येक पूर्णिमा
५७.	विष्णुखात	वनयात्रा में, स्वेच्छानुसार
५८.	भागीरथी	प्रत्येक अष्टमी
५९.	त्रिसंध्यतीर्थ	मेष की सूर्य संक्रान्ति
६०.	मलहानि	दुर्गाष्टमी, मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी
६१.	शरद्वीप तीर्थ	प्रत्येक शुक्ल की तृतीया
६२.	चक्रतीर्थ	प्रत्येक एकादशी
६३.	रत्नयुग्म तीर्थ	आश्विन कृष्ण नवमी
६४.	पुष्पदन्त	पुष्य नक्षत्र युक्त नवमी
६५.	कर्ममोचन	चैत्र शुक्ल त्रयोदशी
६६.	गुप्तसंज्ञक	प्रत्येक द्वादशी
६७.	गयातीर्थ	सम्पूर्ण श्राद्ध पक्ष तथा अमावस्या पितृविसर्जनी प्रत्येक द्वादशी
६८.	मोक्ष तीर्थ	प्रत्येक पूर्णिमा

(२) कूप स्नान समय सूची

क्रमांक	कूप	स्नानादि का समय
१.	चतुर्मुखकूप	प्रत्येक त्रयोदशी
२.	पंचाग्नि कूप	पूर्ण वैशाख मास
३.	अशोक कूप	चैत्र शुक्ल अष्टमी (अशोकाष्टमी)
४.	धर्म कूप	वनयात्रा में, परिक्रमायें, स्वेच्छानुसार
५.	रसोदक कूप	शिवव्रतों के दिन अथवा छः मास निरन्तर
६.	यज्ञ कूप	प्रतिदिन वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार
७.	हृषीकेश महाकूप	प्रतिदिन, वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार
८.	पाराशरेश्वर कूप	प्रतिदिन, वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार
९.	अकर्ममोचन कूप	प्रतिदिन, वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार
१०.	विमल कूप	कार्तिक मास पूर्ण
११.	मृत्यु कूप	महाशिवरात्रि पर
१२.	वलि कूप	वामन द्वादशी को
१३.	जमदग्नि महाकूप	ऋषि पंचमी
१४.	वायु कूप	प्रतिदिन, वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार
१५.	विष्णु कूप	प्रत्येक द्वादशी
१६.	शौनक कूप	ऋषि पंचमी
१७.	कृष्ण कूप	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१८.	सप्त सागर कूप	सोमवार सप्तमी तथा शिवरात्रि
१९.	धरणी वाराह कूप	प्रतिदिन, वनयात्रा पर स्वेच्छानुसार

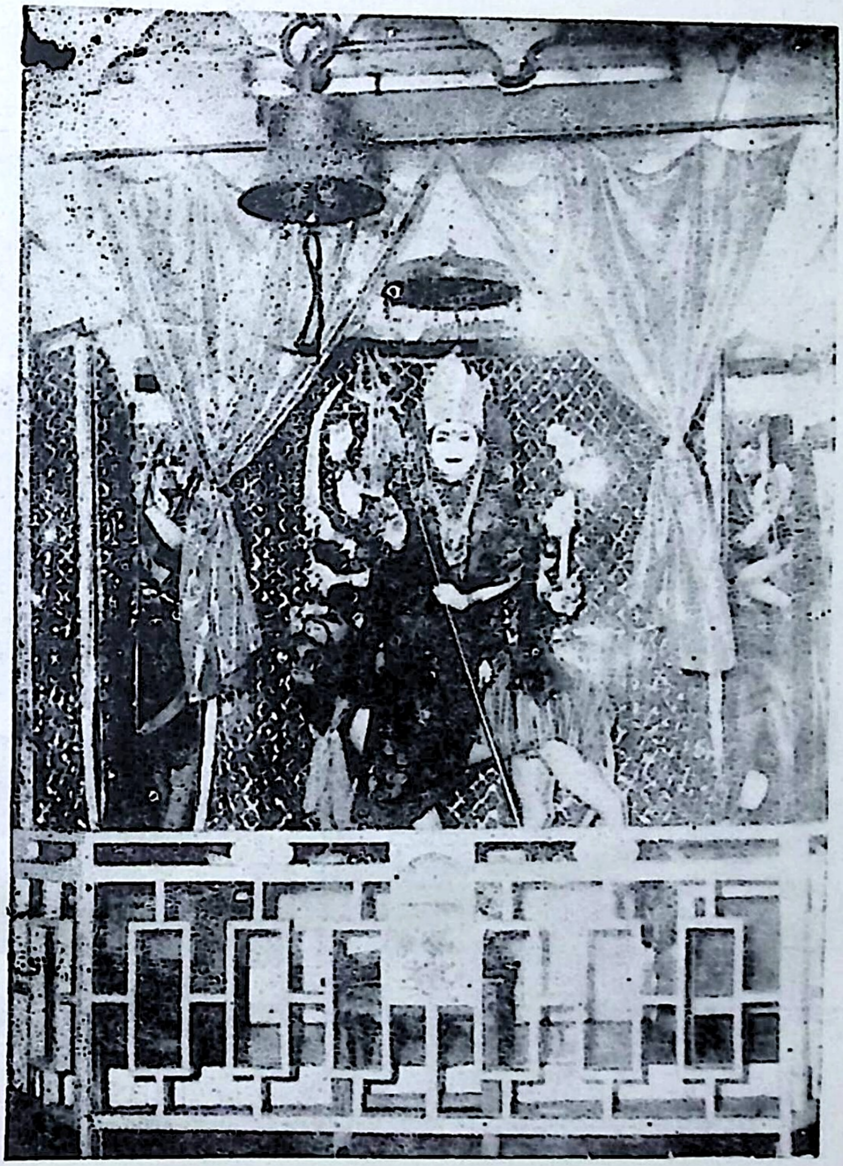

श्री कुलजसराय की अध्यक्षता में प्रगति की ओर श्री सनातन धर्म मन्दिर

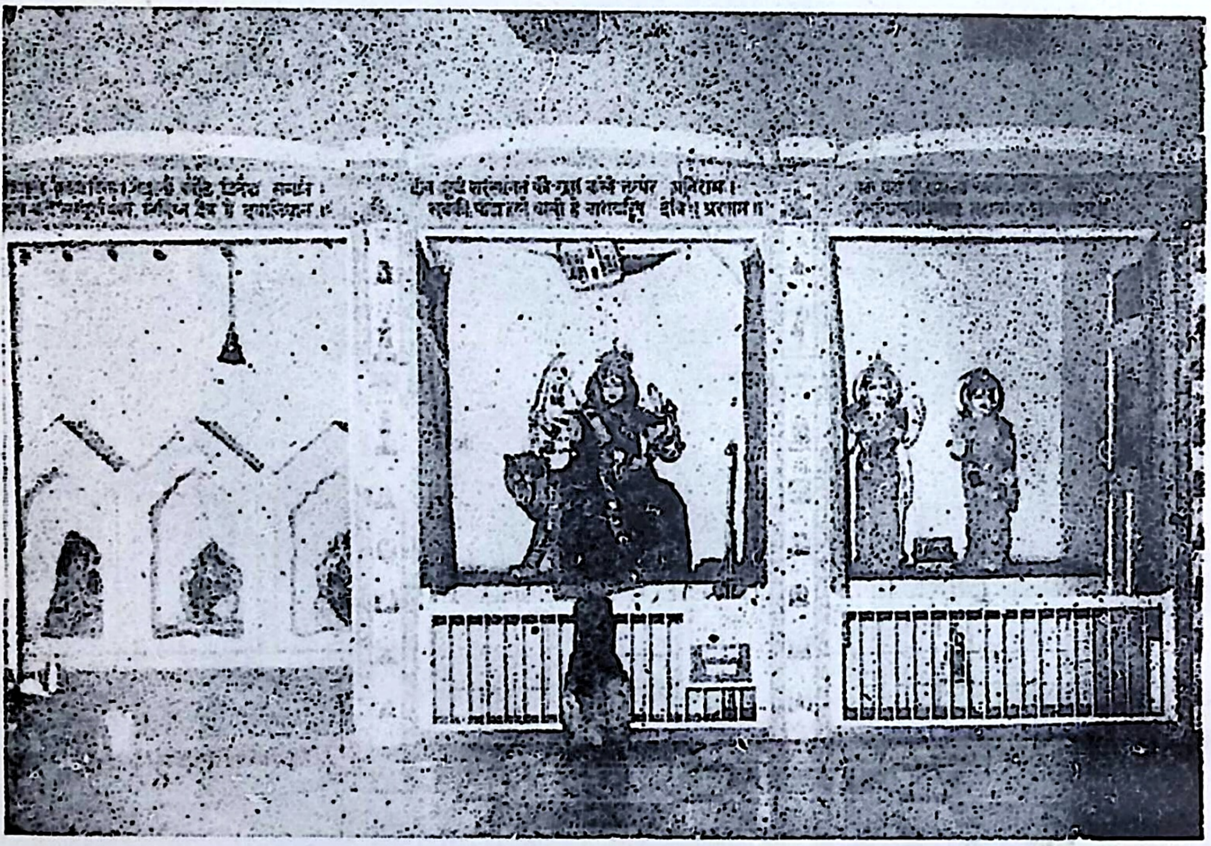

ल० प्रसाद व नरेश अग्रवाल की अध्यक्षता में प्रगति की ओर वनखण्डन मन्दिर, सम्भल

गोपाल तीर्थं (वंश गोपाल)

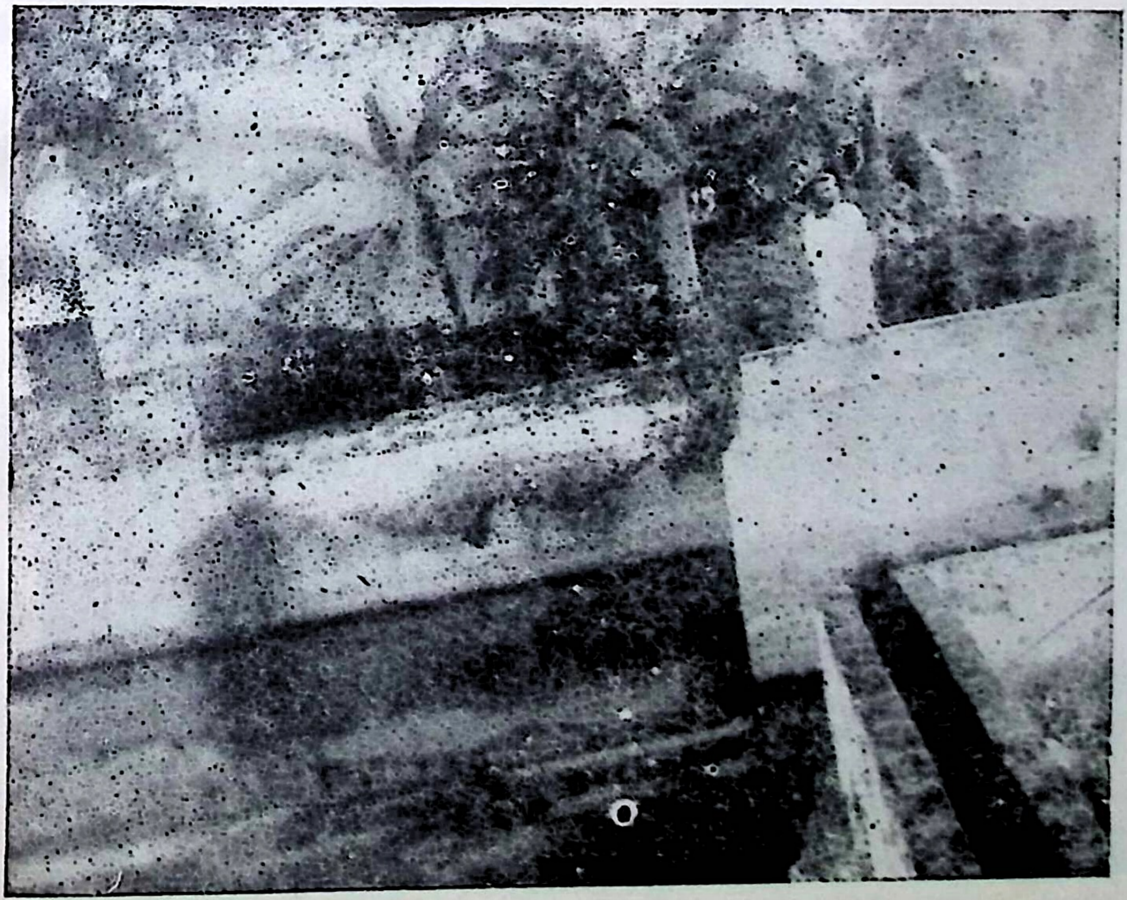

नैमिषारण्य तीर्थं

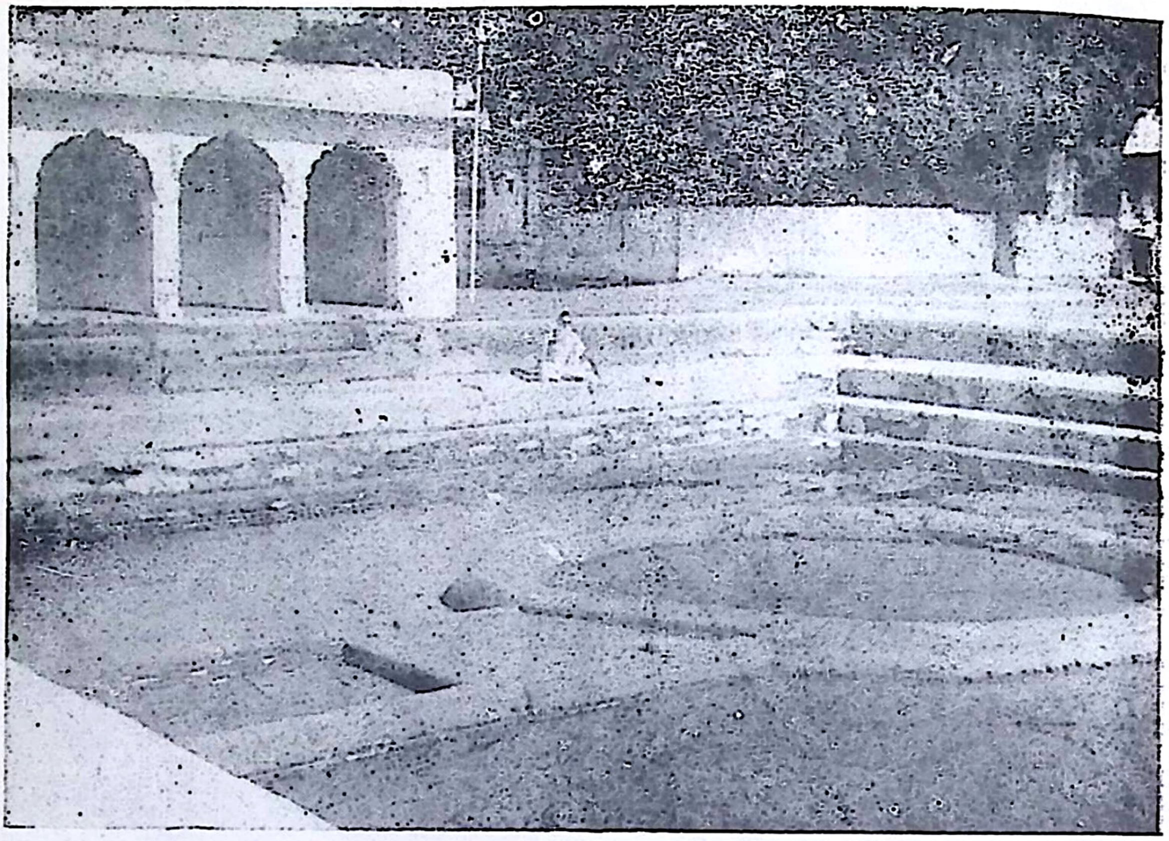

सूर्यकुण्ड तीर्थ

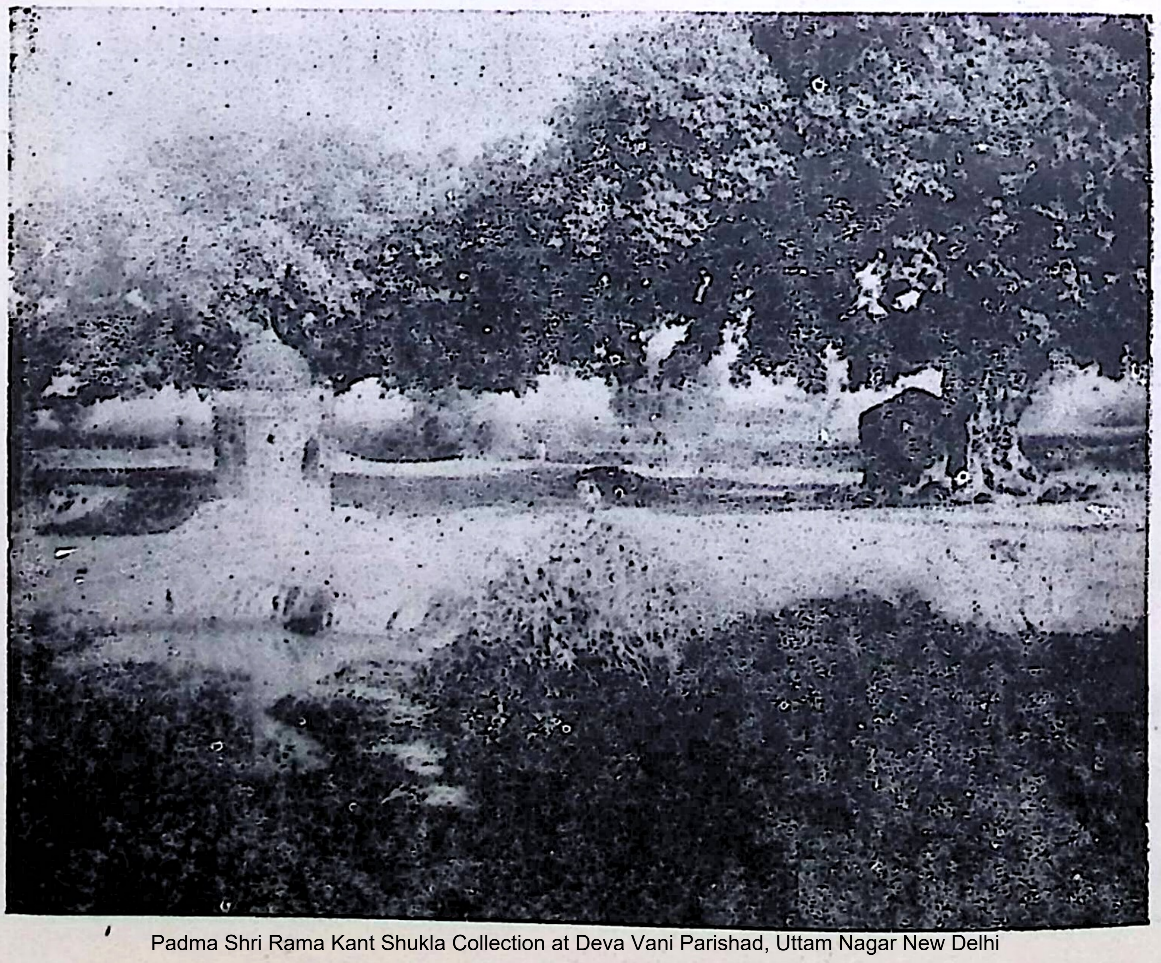

शरद्वीप तीर्थ

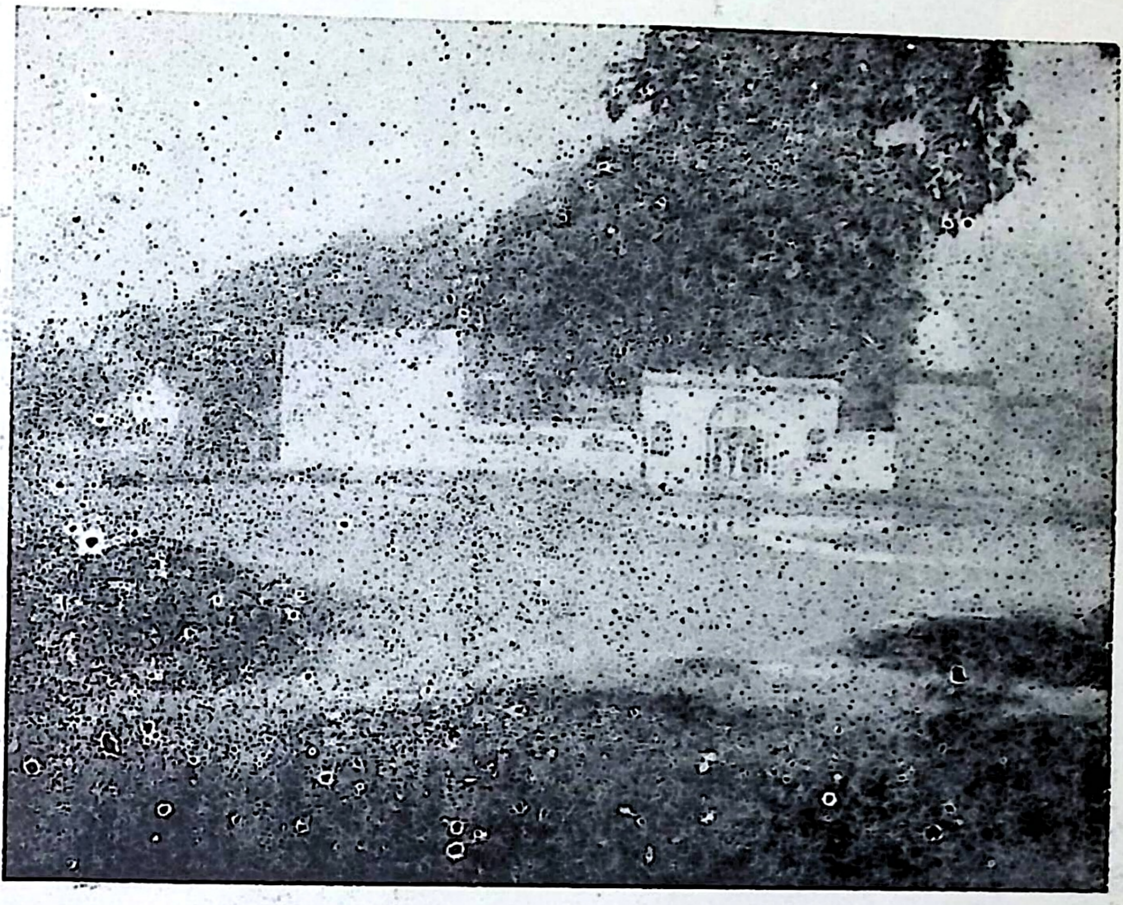

मृत्युतीर्थ (मृत्युञ्जय)

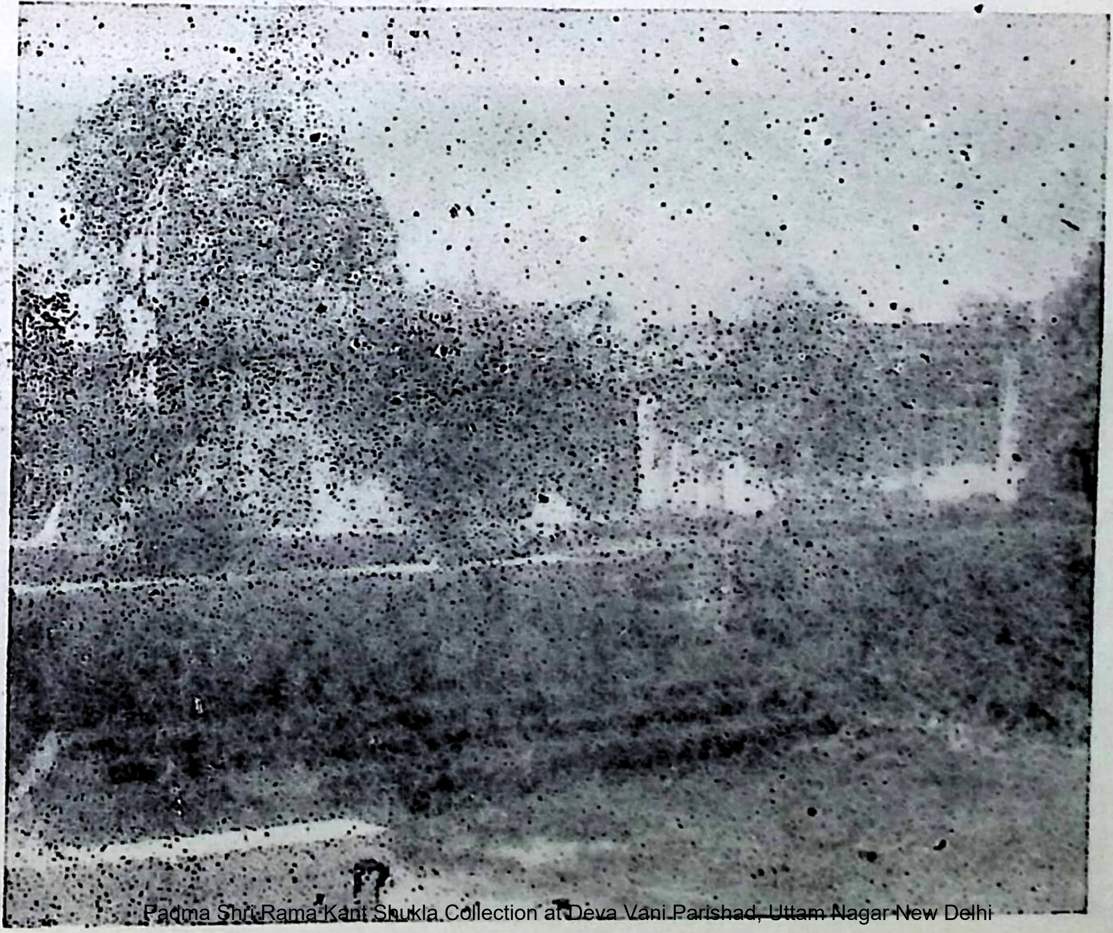

भागीरथी तीर्थ

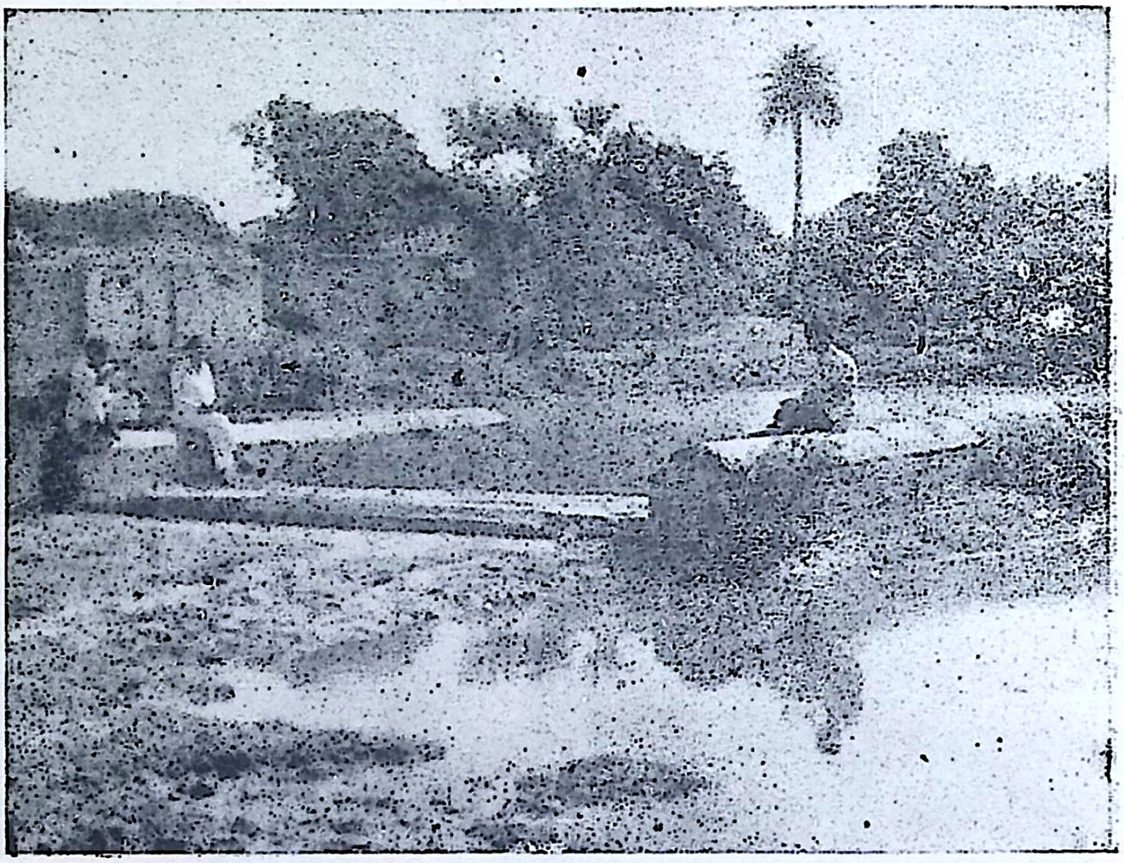

यमतीर्थ (यमघण्ट)

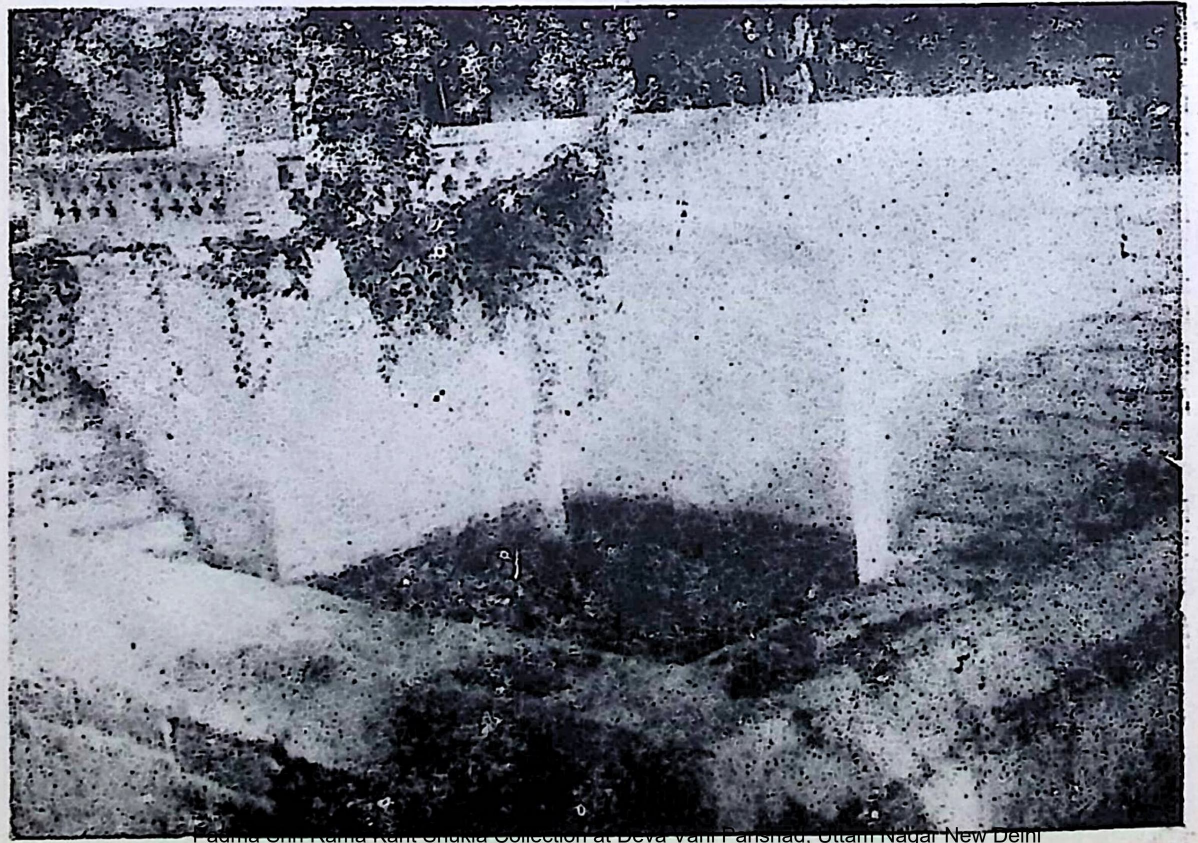

कुरुक्षेत्र तीर्थ

बाबा क्षेमनाथ की समाधि →

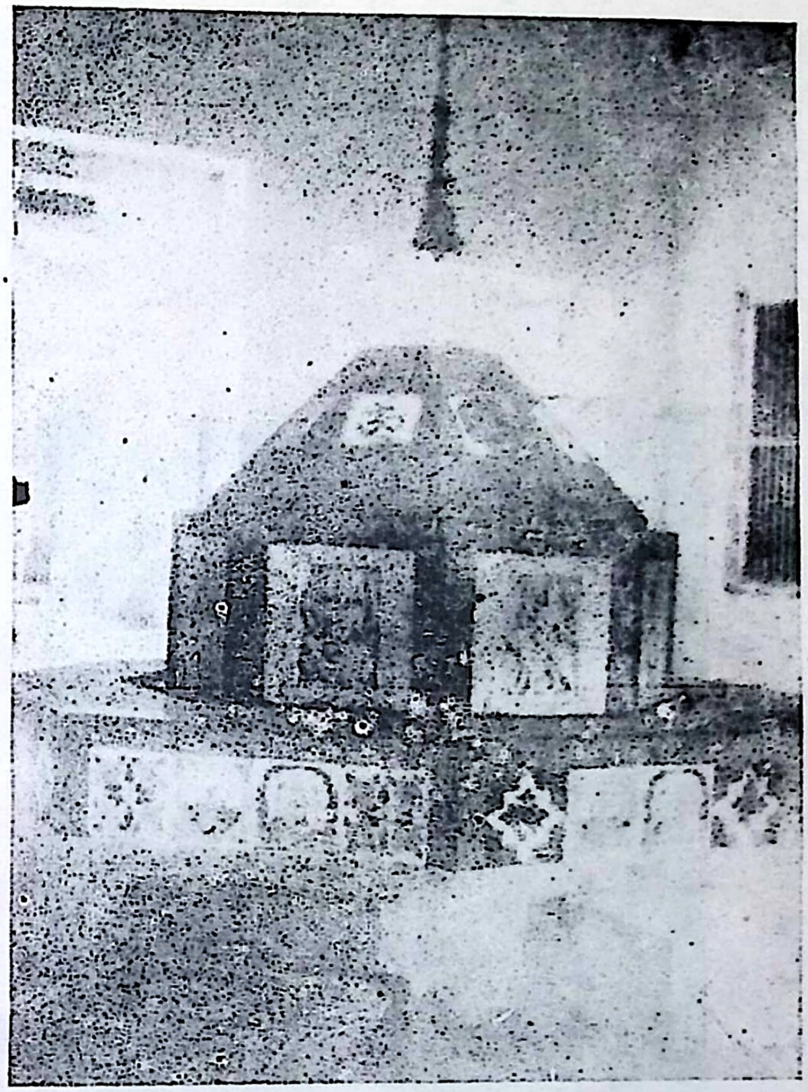

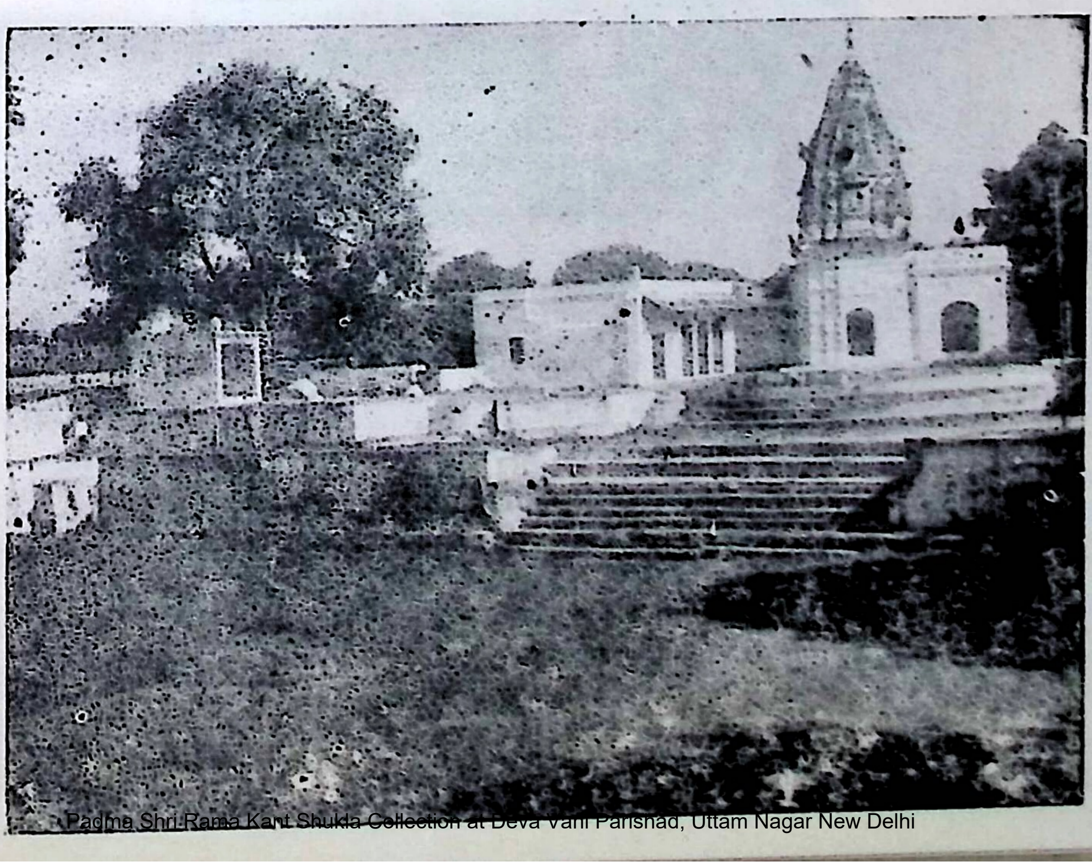

मणिकर्णिका तीर्थ

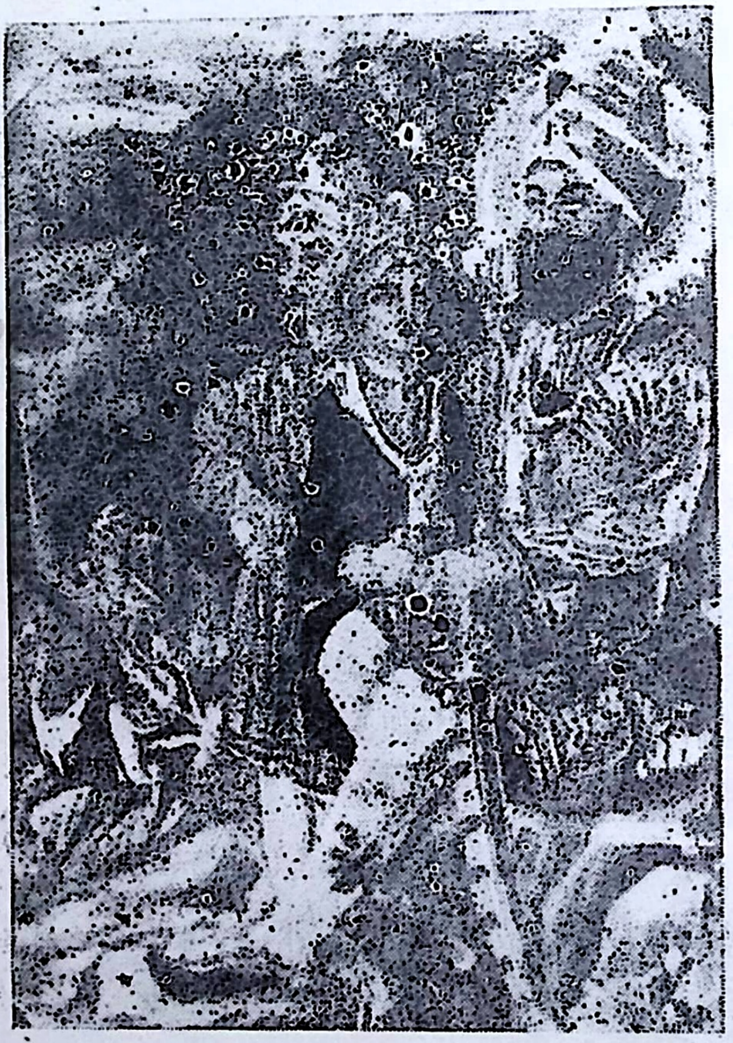

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी अपने वीर बच्चों के साथ

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पद्य	अशुद्ध	शुद्ध
१	श्लोक ३ से पूर्व का	'स्कन्द उवाच'	श्लोक ३ के बाद पढ़ें
३	२५	विष्णुर्गात्र्येव	विष्णुर्गायत्र्येव
१०	४२	स्नामध्याह्न०	स्नानमध्याह्न०
१०	४६	नृणां	नृणां
१३	८८ के वाद	तृतीयोऽध्यात:	तृतीयोऽध्याय:
३०-३१	४५ के वाद	श्लोक संख्या ४७-५४	४६-५३
३३	१३	शद्धि:	शुद्धि:
३४	४२	सर्वतीर्तेषु	सर्वतीर्थेषु
३७	८२ के वाद	श्लोक संख्या ७३	८३
४७	२१ के वाद २२ नं पर यह पूरा श्लोक जोड़कर २२ को २३ कर लें । ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा शतजन्ममलं हरेत् । दर्शनाद् ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तं पुनर्भवेत् ॥२२॥		
५४	५६ के वाद	श्लोक संख्या ६७	५७
६२	७ के वाद	श्लोक संख्या ६	८
६७	३८	नियुतावृत्वा	नियुतावृत्या

सम्भल-माहात्म्य के श्लोकों की अकारादि-सूची

इस सूची में पहले श्लोक का आदिभाग, फिर अध्याय संख्या, फिर श्लोक संख्या तथा अन्त में पृष्ठ संख्या दी हुई है । कृपया अनुक्रमणिका के अवलोकन से पूर्व, शुद्धिपत्र के अनुसार अशुद्धि-शोधन अवश्य कर लें ।

अकर्ममोचन: (२०/२७) ८१, अकर्ममोचनात् (२०/२८) ८१, अकारो (२२/३८) ९१, अक्षत्रियाश्च (२०/५६) ८३, अक्षयं (१२/५६) ४९, अग्निशुश्रूषणरतो (३/५) ८, अग्निष्वात्ता: (१२/३९) ४८, अङ्गदेशेऽभवद् (५/२७) १७, अङ्गारतीर्थं (१०/५१) ४२, अङ्गारवार (१०/५०) ४२, अचलांश्चाल० (२०/१०) ८०, अचिरेणैव (३/८९) १३, अजपा ब्राह्मणा (२०/५८) ८३, अत एव हि (१/८) २, अतीव जीर्णवपुषं (१७/३९) ७१, अत: परं प्रवक्ष्यामि तीर्थं (७/२) २३, अत: पर प्रवक्ष्यामि शृणु (२४/१) ९४, अत: परं मोक्ष० (१७/३६) ७१, अत्यल्पमपि (८/१२) २८, अत्याश्चर्यकरं (१४/१८) ५८, अत्र कश्चित् (२२/१७) ९०, अत्र चाहं (४/११) १४, अत्र तीर्थे (८/५०) ३१, अत्रत्यजल० (१३/८८) ५६. अत्रत्यमिति० (११/३४) ४५, अत्र मे मन्दिरं (१६/३५) ६७, अत्र योगस्तथा (१०/४१) ८२, अत्र यो भोजयेद् (१२/३३) ४८, अत्रागत्य द्विज: (७/४) २३, अत्राग्निपञ्चके (९/२९) ३३, अत्रात्रिणा (१७/२) ६९, अत्राप्युदाहरन्तीमं (२५/१) ९७, अत्राप्लुता नरा (८/३६) ३०, अत्रार्थे (८/२०) २९, अत्रेतिहासो (१५/६) ६२, अथ देवालय० (१४/२२) ५८, अथ प्रदक्षिणी० (१९/५०) ७९, अथ बद्ध: (३/५७) ११, अथ राजा (४/१) १४, अथवा चिन्तया (८/४२) ३०, अथवा तिष्ठ (३/४०) १०, अथ वार्द्धक० (२५/६) ९७, अथात: (२२/१) ८९, अथानाथा (१५/१३) ६२, अथाल्पेनापि (२०/३९) ८२, अथोत्थाय (१४/५९) ६०, अदरिद्रोऽपि (१३/६१) ५४, अद्य वाब्द० (९/४७) ३५, अधीत्याध्यापनार्थं (३/१३) ८, अनपत्यो द्विज: (१३/५) ५१, अनपत्योऽस्म्यहं (३/४८) १०, अनया (२०/५) ८०,

अनूढो लभते (१९/१०) ७६, अनेनैव शरीरेण (१७/३४) ७१, अन्तःपुरं (७/२०) २४, अन्धं तमः (१/१४) २, अन्धश्च (२३/२२) ९३, अन्नं राशीकृतं (६/३) १९, अन्यच्च शृणु (५/१) १६, अन्यच्च शृणु (९/७६) ३७, अन्यत्र ब्राह्मणानां (२०/४५) ८२, अन्येद्युः पुनरायातो (१४/३३) ५९, अपत्यहीनः पुरुषः (१०/ ७) ४१, अपत्यहीनः पुरुषः (१५/३६) ६४, अपत्यान्यपि (१९/४६) ७९, अपारपाराय (१ /३२) ६७, अपि दुर्गतिमा० (९/३१) ३४, अपुत्रो लभते (२३/२१) ९३, अपुत्रो लभते (२७/११) १०२, अपूर्वेयं कथा (७/१) २३, अप्राप्तमौञ्जीबन्धा (१२/५०) ४९, अयमेव वरो (९/६९) ३६, अयाचिताशनो (३/७०) १२, अयाज्ययाजका (२०/६५) ८४, अरक्षितारो (२०/५५) ८३, अर्ककुण्डमिति (५/४०) १८, अर्के मकरगे (११/१३) ४३, अर्वागेवास्य (१२/१९) ४७, अल्पाहाराः फलाहाराः (१४/५७) ६०, अवतीर्याम्बरात् (१४/२३) ५८, अवन्त्यधिपतेः (१४/६१) ६१, अवश्येषु (२/८) ५, अविचार्य (२०/६०) ८४, अशोकेऽत्र (९/२७) ३३, अश्रद्धयापि (९/४३) ३४, अश्वादपतत् (११/४३) ४५, अष्टम्यां च (१६/४०) ६७, अष्टम्यां च (१०/२९) ४०, अष्टम्यामथा० (२०/२१) ८१, अष्टाधिकाः शतं (१२/१३) ४६, अष्टौ प्रदक्षिणा (१०/३३) ४१, असंख्याताः (१/३७) ४, असाधवः (११/३७) ४५, असाध्या (११/२३) ४४, अस्ति तीर्थं (१९/१) ७६, अस्थिष्वेवाश्रितं (२०/१४) ८१, अस्पृष्टहीनजातिः (१३/६७) ५४, अस्मात् (७/४१) २५, अस्मिंस्तीर्थवरे (१५/३८) ६४, अस्मिंस्तीर्थजले (१४/६२) ६१, अस्मिंस्तीर्थे (७/४३) २५, अस्य क्षेत्रस्य (१९/१८) ७७, अस्य तीर्थस्य (१६/२४) ६६, अस्य श्येनवराकस्य (१४/३१) ५९, अहं ते (२३/१) ९२, अहं ब्राह्मणदायादो (१८/१४) ७४, अहमत्र (१६/३६) ६७, अहिच्छत्रे (११/३५) ४५, अहो बलीयांस्तु (३/२६) ९।

आकर्णय (२/४) ५, आगतस्य (२५/२१) ९८, आगता माघ० (११/२०) ४४, आगत्य तीर्थ० (१०/५२) ४२, आगत्य वंश० (२४/३१) ९६, आच्छादयामि (/१७) ६, आदायादाय (३/७) ८, आदौ मध्ये (२२/१३) ९०, आधिभौतिकतापं (११/२५) ४४, आनन्दाख्यं (१६/१) ६५, आनन्दामृत० (९/५३) ३५, आयान्ति दैवता० (१/२९) ३, आराधयामास (२०/१२) ८०, आरिराधयिषु० (९/५२) ३५, आरुह्य देवयानं (१६/२२) ६६, आर्पिपत् (३/३०) ९, आवाहना० (१०/४३) ४१, आविर्भाव (१/१२) २, आश्चर्यजनकं (२०/५४) ८३, आश्वयुक्कृष्ण (१९/९) ७६, आश्वयुक्कृष्णपञ्चम्यां (१४/१५) ५८, आसीच्चारु० (१५/७) ६२, आहारकाम्यया (७/२३), २४।

इति कृत्वा (३/६८) १२, इति चिन्तयत० (८/४४) ३०, इति चिन्तयत० (३/५४) ११, इति तद्वाक्य० (२/२७) ६, इति तद्वाक्य० (१३/७७) ५५, इति तस्य वचः (२०/१९) ८१, इति तस्य वचः (५/९) १६, इति तस्य वचः (१८/३०) ७५, इति तस्येप्सितं (९/१९) ३३, इति ते कथितं (२७/१) १०२, इति दत्वा वरं (२०/२२) ८१, इति दत्वा वरान् (१२/५३) ४९, इति दत्वा वरान् (१३/३९) ५३, इति दत्वा वरान् (१५/३२) ६४, इति दत्वा वरान् (४/१७) १५, इति दत्वा वरान् (१०/१५) ४०, इति दत्वा वरांस्तस्मै (५/३९। १८, इति दिव्य० (१२/४१) ४८, इति लक्ष्म्या (१३/९) ५०, इति वाक्यं (१५/२८) ६३, इति श्रुत्वा वचः (९/६१) ३६, इति श्रुत्वा स (२/२३) ६, इति स्तुत्वा (१३/२०) ५१, इतिहासं (११/१९) ४४, इतिहासमिमं (४/१८) १५, इतिहासैः (२१/५) ८७, इतोऽर्ककुण्ड० (५/२०) १७, इत्थं परिष्टूय (९/६०) ३६, इत्थं प्रियेरितं (१४/३२) ५९; इत्थं सम्पादितं (२२/१४) ९०, इत्यर्थे (१३/५७) ५४, इत्युक्त्वां तं (९/८८) ३७, इत्युक्त्वान्तर्दधे (९/२३) ३२, इत्युक्त्वान्तर्हिता (१३/१७) ५६, इत्येतद्वाक्य० (३/६२) ११,

इत्येवं चिन्तयन् (१३/८३) ५५, इदं पञ्च (१२/५७) ४६, इदं पवित्र० (१३/४०) ५३, इदं पुण्यं (५/११) १६, इदं प्रयाग० (११/४४), ४५, इदानीं त्वाम् (१८/१८) ७४, इदानीमेव (३/४३) १०, इन्द्रलोकं (२२/३२) ९१, इन्द्राद्या देवता. (२०/५०) ८३. इन्द्राद्या लोकपाला (९/८३) ३७, इयेप चोत्थातु० (१३/११) ५१, इह पूर्वं (१९/२) ७६, इहागत्य (११/८) ४३, इहैव गंगा (१३/२४) ५२, इहैव ग्राम० (१३/२७) ५२, इहैव तत्फलं (२०/४७) ८३, इहैव मारितो (१०/२) ३९ ।

उत्तिष्ठानय (३/४९) १०, उत्थाय (२३/५) ९२, उद्यत्सहस्रांशु (१३/१३) ५१, उपलभ्य च (१/१५) २, उपसर्गं० (८/११) २८, उमया सहितो (४/६) १४, उवाच नम्रं (९/७१) ३६, उवाच स (७/३६) २५, उवाच सुप्र० (९/६९) ३५, उवाच स्नान० (३/४२) १०, ऊचुरङ्गुलि० (६/७) १९, ऊर्जे शुक्ल० (२५/२२) ९८, ऊर्ध्वरेतोऽभिधं (८/५) २८, ऊर्ध्ववीर्यं (८/६) २८।

ॐ नमः (१३/१४) ५१, ॐ नमो विश्व० (१७/२१) ७०।

ऋतवश्च (२०/७१) ८४, ऋतौ शरदि (२७/६) १०२, ऋणमोचनतः (१०/२२) ४०, ऋपिर्वेदशिरा (१/३५) ३ ।

एकं गोमिथुनं (१९/२३) ७७, एकं देवालय० (२१/१६) ८८, एकं ब्रह्मैवा० (३/७६) १२, एकः कर्त्ताः (३/७७) १२, एकदा नारदो (२१/४) ८७, एकदा माधवे (१४/५०) ६०, एकदा व्रत० (८/३७) ३०, एका गोधात्रं (१०/३०) ७१, एकादश्या० (१०/२३) ४०, एकान्तिनामकं (८/७) २८, एकान्ते हि (८/१७) २९, एकान्त्या उत्तरे (८/१९) २९, एकान्त्यां सर्वदा (८/१६) २९, एकान्त्यास्तु (८/१३) २८, एकामप्याहुतिं (९/४५) ३५, एकावृत्त्यापि (९/४६) ३५, एकाहाच्चेन्न (२४/३३) ९६, एको मनोरथो (१९/३५) ७८, एतज्जन्मकृतं (५/२४) १७, एतत्तीर्थप्रभावं (१४/७) ५७, एतत्ते कथितं (२०/८९) ८६, एतत्ते सर्वं० (२२/३७) ९१, एतदर्कस्य (५/४२) १८, एतद्रहस्यं (१२/८) ४६, एतत्पुण्यतमा० (९/९१) ३८, एतत्पुरं (१३/५२) ५३, एतस्योत्तरतः (२/३४) ७, एतस्मिन्नेव (२२/२३) ९०, एतास्तु शक्तयः (१०/१३) ३९, एते चान्ये (२०/७७) ८५, एवं क्रमेण (२४/२७) ९५, एवं चतुर्विधं (२४/५) ९४, एवं विष्णुगणैः (८/४९) ३०, एवं समाराध्य० (५/३१) १७, एवमस्त्विति (१७/४७) ७२, एवमुक्त्वा (२६/२०) १०१, एवमेतदुपा० (२/३५) ७ ।

कति नाम न (१४/२९) ५९, कथमेकाकिनी (१५/१४) ६३, कथां श्रुत्वा (२३/१७) ९३, कदाचित्तत्पितृव्येण (२/१९) ७, कदाचिद्दैव० (१८/६) ७३, कदाचिद्दैव० (२५/२०) ९८, कदाचित्पार्वती (९/७८) ३७, कपिलानां (१०/४०) ४१, करवीरैः० (५/२९) १७, कर्पूरैर्वर्ति० (५/३०) १७, कलिकालभयात् (७/६५) २६, कलेवरं पूति० (१/७) २, कलौ सोमस्य (१०/४६) ४१, कशभिस्ताड्य० (१६/७) ६५, कश्चिदस्मत्कुले (९/२६) ३३, कस्यापि (२२/२५) ९०, कान्निमानभवत् (५/३५) ३०, कामुकः काम० (४/१५) १५, कालधर्मवंग (११/२१) ४४, कालेन बहु० (९/७४) ३७, काले फलन्त्यो० (१/१८) २, कालोदकात् (१०/३५) ४१, किं किं न सविता (१/२०) २, किं बहूक्तेन (१६/१६) ६६, किं मां क्षिपसि (३/३३) १०, किं स्नात्वा (१४/३) ५७, किन्नरी हंस० (१/३६) ३, किमष्टाङ्गेन (१३/९३) ५६, कुतस्ते (५/७) १६, कुतस्त्वमिह (७/१०) २३, कुरुक्षेत्रप्रभा० (६/२०) २०, कुरुक्षेत्राद् (६/४०) २१, कुलधर्मं (२/२८) ६, कुलाचार० (३/६०) ११, कुशाम्बुसेचनात् (७/३७) २५, कुष्ठरोगाभिभूतः (५/२८) १७, कुष्ठस्तु ते (५/३२) १७, कुहूयां सोमेन (१०/३६) ४१, कूपादस्मात् (९/२४) ३३, कूपो धरणि० (२०/३८) ८२, कृच्छ्रैस्तपोभिः (९/८१) ३७, कृतयज्ञं (५/३) १६, कृतश्राद्धविधानस्तु (१२/२४) ४८, कृतसन्ध्यादि० (१४/४) ५७, कृतानि यानि (१५/४) ६२, कृतोपनयनः (३/६) ८, कृत्वा च तर्पणं (२४/२८) ९५,

कृत्वा तत्र (१२/१८) ४७, कृत्वा संहार० (७/५) २३, कृष्णतीर्थमिति (६/२२) १९, कृष्णनामधृता० (७/११) २३, कोऽयं कोऽयं (२/२६) ६, कौमारके (१४/६८) ६१, क्वचिच्चौर्यं (२५/१७) ९८, क्वचिद्देवलको (२५/१८) ९८।

क्षणभङ्गुर० (१८/१३) ७४, क्षणादुद्बुद्ध० (१४/४१) ५९, क्षालितं (१/६) २, क्षेममूर्ते० (८/१) २८, क्षत्रियान् (८/५४) ३१, क्षणान्निर्मलतां (६/१०) १९, क्षुत्क्षाम: (१३/८१) ५५।

गगने गच्छता (७/४०) २५, गङ्गादत्तो (२२/३४) ९१, गङ्गायामिह (१३/४५) ५२, गते बहुतिथे (१५/२२) ६३, गते बहुतिथे (७/१७) २४, गन्धर्वेश्वर० (११/३२) ४५, गन्धर्वैश्चा० (२१/७) ८७, गणा एव (७/५५) २६, गयायां (१०/४४) ४१, गर्भवासं न (१२/७) ४६, गर्भस्रावो (१२/४९) ४९, गर्भाधानादि० (१६/१०) ६५, गायत्रीमन्त्र (१/१९) २. गायत्री वेद० (१/२३) ३, गायत्र्या (१६/३८) ६७, गायत्र्येव (१/२५) ३, गुणाकरोऽपि (१३/६०) ५४, गुप्ततीर्थस्य (१९/५६) ७९. गुप्ततीर्थाद् (२०/६) ८०, गुप्ततीर्थे (१९/५१) ७९, गुप्तसंज्ञमित० (१९/२६) ७७, गुरुपुण्य (१३/२९) ५२, गुर्विणीभि: (८/१४) २८, गुह्यानां परमं (११/१०) ४३, गृहेऽपि (१३/२६) ५२, गृह्योक्तेन (३/१५) ९, गोदाने (२४/१७) ९५, गोदानैरन्य० (७/६०) २६, गोदावरी, (१४/५) ५७, गोपालतीर्थ० (१५/३५) ६४, गोपाले चक्रतीर्थे (२५/२४) ९८, गोभूहिरण्य० (२३/१३) ९२, गोमतीमवगाहार्थं (१३/८९) ५६, गोमत्या दक्षिणे (१४/२) ५७, गोलोकं (१०/४८) ४२, गौरीमाराधयेद् (१९/२२) ७७, ग्राममध्ये (४/१६) १५, ग्रीष्मर्तौ (२७/५) १०२।

घातयध्वं (२/२०) ६, घातयेत् (२/१३) ६, घृतदानं (२४/१५). ९५, घृतश्राद्धस्य (२४/१४) ९५।

चक्रतीर्थं समा० (२४/२०) ९५, चक्रतीर्थं समु० (१८/२८) ७४, चक्रतीर्थस्य (१८/२२) ७४, चक्रतीर्थात् (२४/४) ९४, चक्षुर्भ्यां (१९/४०) ७१, चतुर्धा (२१/१५) ८८, चतुर्भुज (३४/५८) ६०, चतुर्मुखादु० (७/५३) २६, चतुर्लक्षाणि (२०/५३) ८३, चतुर्विधमपि (२४/८) ९४, चत्वारि तत्र (९/३६) ३३, चन्द्रभागातटे (२०/७६) ८५, चन्द्रमौलि० (१/३२) ३, चन्द्रेश्वर: (१८/२५) ७४, चन्द्रेश्वरमध: (३६/९) १२, चराचरार्चन० (१७/३) ६९, चर्मास्थि० (८/४३) ३०, चामरव्यग्र० (८/४७) ३०, चारुपिङ्गल० (३/७४) १२, चित्रगुप्त (१६/९) ६५, चिन्तयन्तं (१४/२६) ५८, चिन्तामवाप (३/५२) ११, चिन्तामवाप (८/३९) ३०, चिरमन्वेपमाणो (१३/७९) ५५, चैत्रशुक्ल० (१९/२१) ७७, चौरव्याघ्र० (७/४९) २५, चौरश्चौर (३/५६) ११।

जगच्चक्षु० (५/३४) १८, जगाम यौवनं (८/२२) २९, जगाम स्वर्ग० (१६/२३) ६६, जननी निधनं (१३/६२) ५४, जननी बहुशो (१६/१२) ६५, जन्मद्वयकृतं (६/५०) २१, जन्मान्तर० (१३/४१) ५३, जय भक्तजना० (१४/५५) ६०, जलबुद्बुदवत् (६२/४) २०, जलस्थं मत् (९/८७) ३७, जलार्द्रवसनं (२२/२९) ९१, जलावगाहनपरं (७/३८) २५, जाता जातौ (२/६) ५, जाताश्चर्यो (१७/४८) ७२, जातिस्मरो (१७/२९) ७१, जानन्ती (१७/३२) ७१, जानन्नेव (८/३४) ३०, जिहीर्षुर्दर्श (१७/१८) ७०, जीवितेश (९/१) ३२, जीवितेश न (१९/३४) ७८ जीवेयं (१३/८२) ५५, ज्वरोऽयं (८/४१) ३०।

तं तथाभूत० (२०/१५) ८१, तं दृष्ट्वा (२६/४) १००, तं सर्वगमपि (९/१८) ३३, त एव धन्या (१३/३१) ५२, तच्च दृष्ट्वा (११/९) ४३, तण्डुलानां (२२/३) ८९, तत उत्थाय (३/८०) १२, तत: क्रमेण (२४/२३) ९५, तत: सूर्यं (२२/११) ८९, ततस्तीर्थमिदं (१९/५५) ७९, ततस्तुष्टा (१०/१०) ३९, ततो देवा (९/५६) ३५, ततो देवाज्ञया (१२/३८) ४८, ततो भद्रस्य (१६/२७) ६६, ततो युद्ध० (२/३०) ७,

ततो विमान० (१३/४५) ५३, ततोऽहमत्र (९/८०) ३७, तत्कूपात् (२०/३३) ८२, तत्क्षणाद् (९/३४) ३४, तत्तीर्थोदक (६/१४) १९, तत्तीर्थोपात्त० (१५/२१), ६३, तत्पदे (३/२६) ९, तत्याज (३/२८) ९, तत्र चामलकी० (१०/३४) ४१, तत्र जागरणं (१०/५४) ४१, तत्र तीर्थे (१२/२५) ४७, तत्र त्रिसन्ध्यं (१७/१३) ६९, तत्र धर्मात्मन: (१३/८५) ५५, तत्र पादोदके (६/२२) २०, तत्र पिण्डान् (१२/२७), ४७, तत्र पिण्डान् (१७/९) ६९, तत्र प्रत्यह० (१५/२०) ६३, तत्र श्राद्धविधा० (१२/२०) ४७, तत्र श्राद्धं (२०/७) ८०, तत्र सा विकटा (१/३०) ३, तत्र स्नात्वा (१९/२०) ७७, तत्र स्नात्वा (१९/१३) ७७, तत्र स्नात्वा (६/३१) २०, तत्र स्नात्वा विधानेन (१२/११) ४६, तत्र स्नात्वा विधानेन (६/३७) २१, तत्र स्नात्वैव (१३/८४) ५५, तत्र स्नानं च दानं च कृत्वा (१० ३२) ४१, तत्र स्नानं च दानं (११/३३) ४५, तत्र स्नानं च दानं च (९/५८) २३, तत्र स्नानं च यः (११/३१) ४४, तत्रादौ दक्षिण० (१/२७) ३, तत्रार्थकामयो० (१९/४०) ७८, तत्संस्पर्शात् (२५/३०) ९९, तथा मिलित्वा (२५/१३) ९७, तदस्थ्नां (१३/८७) ५६, तदा तदा (३/४५) १०, तदा तदैव (३/१२) ८, तदात्र (१३/२०) ५२, तदाप्रभृत्येव (६/४७) २१, तदास्मिन् (२०/७९) ८५, तदैव पुण्यफलदे (१६/२०) ६६, तद्दक्षिणे (१८/१) ७३, तद्दर्शनात् (१०/४७) ४१, तद्विमान० (८/४८) ३०, तन्मयं (२०/३) ८०, तन्मे रोगं (५/२५) १७, तपस्वी (१७/४२) ७१, तप:स्वरूपाय (९/६४) ३६, तपांसि नाना (९/५५) ३५, तप्त्वा तपांसि (९/४४) ३४, तमेव नत्वा (१/१३) २, तयोः प्रणामं (२६/५) १००, तर्पयित्वा (१७/४) ६९, तव नाम्नैव (१७/२४) ७०, तव पत्नी (३/२१) ९, तव प्रसादाद् (३/८२) १३, तवानुरूपा (३/२०) ९, तवानेनाति० (९/६०) ३५, तवाश्रमसमीपे (१६/३९) ६७, तवैव नाम्ना (१६/३७) ६७, तस्थौ संकेतित० (१८/१०) ७३, तस्माच्छम्भल (२७/९) १०२, तस्मान्न (२२/४१) ९१, तस्मात्प्रीणीहि (१९/४१) ७८, तस्मात् शुक्ल० (७/४५) २५, तस्मात्सर्वं० (२४/११) ९४, तस्मात्सर्वं० (११/१८) ४४, तस्मात्सा (१५/३३) ६४, तस्मादहं (१४/४४) ५९, तस्मादुत्तरतः (२०/३१) ८२, तस्मादुत्तरतो (९/२८) ३३, तस्माद्दक्षिणत० (१९/१२) ७६, तस्माद्दक्षिणत०(११/१) ४३, तस्माद्दशाश्व० (६/४८) २१, तस्माद् धनुः (९/१७) ३३, तस्मान्मुकुन्द (१३/१७) ५१, तस्मिन् काले (१३/३८) ५२, तस्मिन् कूपे (७/५१) २६, तस्मिन् गते (१३/७१) ५५, तस्मिन् दिव्य० (१९/५) ७६, तस्मिन्नरण्ये (२/२२) ६, तस्मिन्नेव (२२/१९) ९०, तस्मिन् राज्यं (९/९०) ३८, तस्मिँस्तीर्थे (१७/१२) ६९, तस्य देवलक० (२५/२६) ९८, तस्य धर्मक० (२५/४) ९७, तस्य पश्चिमतो (११/२६) ४४, तस्य पश्चिमभागे (१०/५३) ४१, तस्य पालयतः (२५/३) ९७, तस्य पुत्रो (८/२१) २९, तस्य मातुश्च (३/३४) १०, तस्य वै दक्षिणे (११/३०) ४४, तस्यान्तिक० (७/२५) २४, तस्यामासक्त० (२५/२७) ९८, तस्याः पतिव्रता (१५/११) ६२, तस्यैव नाम्ना (११/२७) ४४, तस्योत्पत्ति (१३/५४) ५४, तस्योदरगता (१०/११) ३९, तां नमस्कृत्य (१/२६) ३, ताडितोऽहं (७/२२) २४, तार्क्ष्यकेशव० (६/३०) २०, तार्क्ष्येक्षणाद् (१३/९१) ५६, तार्क्ष्योपलक्षित (८/४६) ३०, तावच्छीत० (८/३८) ३०, तावत्ते (३/५८) ११, तावद्विप्रो (१/१६) २, तावत्पापौघ० (८/३१) २९, तावत्प्रत्यक्षतां (१४/५२) ६०, ताविहैत्य (२०/८४) ८५, तिथिं दशहरां (६/५१) २२, तिलवर्हियवैः (९/४१) ३४, तिष्ठेयुः (१७/३५) ७१, तिस्रस्ताः (१४/४६) ६०, तिस्रोऽपि (१४/४९) ६०, तीर्थं दशाश्व (६/४४) २१, तीर्थप्रतिग्रह० (७/१४) २३, तीर्थप्रतिग्रहात् (७/४६) २५, तीर्थप्रभावात् (६/६) १९, तीर्थमङ्गारकं (१०/४९) ४२, तीर्थयात्रा० (१९/३) ७६, तीर्थसेवाव्रत० (२३/२४) ९३, तीर्थस्यास्य (१९/२९) ७८, तीर्थाध्यायमिमं (८/५२) ३१, तीर्थानां (२३/१९) ९३, तीर्थानि (९/३९) ३४, तीर्थान्तरे (२०/४४) ८२, तुष्टुवुश्च (१०/६) ३९, तुष्टेन (४/३) १४, तुलसीवन० (८/३६) २९, तृणविन्दो (९/२०) ३३, तृप्तास्तु (८/५१) ३१, तृप्त्यै (१२/४७) ४९, तेन पुण्येन (९/७३) ३६, तेनैव (२३/११) ९२, तेऽपि (२/३२) ७,

तेभ्योऽखिलेभ्य० (१०/१७) ४०, तेभ्यो ब्रह्मर्षि० (४/८) १४, तेभ्यो यदि (१४/३०) ५६, ते मर्त्यलोके (६/१७) २०, तेषामपि च (६/१२) ३३, तेषां मध्ये (२५/२३) ६८, तेषु राज्यं (१४/६३) ६१, तेष्वपि (२०/२४) ८१, तैलङ्गविपये (३/६६) ११, तोषयित्वा (२३/१८) ६३, त्यक्तपापो (५/१४) १६, त्र्यम्बकावर्तनजं (१७/१४) ७०, त्रिकालं (१६/२५) ७७, त्रिकोणं (१/४०) ४, त्रिवर्गोत्तमसारं (६/३५) २१, त्रिशूलधारी (६/३६) ३४, त्रिष्वप्येतस्य (२६/१६) १०१, त्वमेव मम (१६/४४) ७६, त्वयेयं पूजिता (५/३७) १८।

दक्षिणा हि (१०/१६) ४०, दक्षिणेऽस्मात् (२०/३६) ८२, ददर्श चाश्रमे (१८/८) ७३, ददाति वाञ्छितां (६/१३), १६, ददावेव (२२/२६) ६०, दद्यात् गुडमयान् (२२/१२) ८६, दर्शनात्स्पर्शनात् (६/८२) ३७, दर्शनात्स्पर्शनात् (१/२८) ३, दर्शनीयमिदं (६/११) १६, दशाश्वमेधकं (६/४५) २१, दशाश्वमेधके (६/४६) २१, दशाश्वमेधतीर्थस्य (६/५७) २२, दशाश्वमेधान् (६/४६) २१, दशाश्वमेधे (६/५३) २२, दशाश्वमेधो० (७/३) २३, दाक्षिणात्यो (१७/४३) ७२, दाता तिलोदकस्य (६/३३) ३४, दावदग्धद्रुमा० (७/८) २३, दिनत्रिचतुरस्थायि (१३/६३) ५४, दिनानि पञ्च (८/४५) ३०, दिनेष्वेवमती० (१४/३४) ५६, दिव्यन्तरिक्षे (१२/४५) ४८, दिव्यमाल्याम्बरधरो (७/३६) २५, दिशस्तटेऽत्र (२/५) ५, दीक्षितस्त मुं० (३/३२) १०, दीक्षितस्तु (३/३८) १०, दीनान्धः (१६/५२) ७६, दीर्घबाहुर्महातेजा (२५/१५) ६८, दुर्बलोऽप्याकं: (१४/२५) ५८, दुर्लभं (१६/४४) ६८, दुर्लभा सर्व० (१/२१) ३, दृष्ट्वा च (१६/४६) ७६, दृष्ट्वाथ चैल० (१३/७५) ५५. दृष्ट्वा तमागतं (५/४) १६, दृष्ट्वा प्रणम्य (२१/१०) ८७, दृष्ट्वास्थिनिचयं (१३/७३) ५५, दृष्ट्वा हृष्ट० (१८/७) ७३, देवखातं ततः (१७/५) ६६, देवतानां (२/३३) ७, देवतीर्थात् (१७/७) ६६, देहत्यागोऽत्र (१३/५६) ५४, देवदुन्दुभयो (१०/५) ३६, देवदेव (१२/४०) ४८, देवापि: (२०/८३) ८५, देवेन दत्ता (४/१०) १४, देशकालौचितीं (१४/४२) ५६, देशकालौचितीं (१६/३३) ७८, देशकालौ समालोक्य (२४/३२) ६६, देश: कोशो (१६/३७) ७८, देशान्तरगतो (७/६१) २६, देशान्तरेषु (३/५३) ११, देहि पुत्रं (१३/२३) ५२, दैवव्यपाश्रयात् (११/४२) ४५, दैहिकं (२२/१०) ८६, द्यूतकारेषु (३/३५) १०, द्विजेषु नित्यं (२/७) ५, द्विरथं दक्षिणे (२५/७) ६७।

धन्योऽस्मि (२०/१) ८०, धर्म एव (६/६) ३२, धर्मकूपो दिशि (१२/३०) ४७, धर्ममार्गेण (१५/३४) ६४, धर्मराज (१६/१७) ६६, धर्माधिकारिण: (११/३७) ४५, धार्तराष्ट्रास्तु (६/८) १६, धृतमौनव्रतो (१२/३१) ४८, धृत्या कथञ्चित् (१५/१२) ६२, धेनुं च (१३/६५) ५६।

न कस्मैचिद् (१५/१५) ६३, न कुष्ठं न च (६/८५) ३७, न श्रौतस्मार्त० (२०/७८) ८५, न गायत्र्या: (१/२२) ३, न च तत्कर्म (३/१४) ८, न चादत्ता (१५/१६) ६३, न तस्य विष० (११/२८) ४४, न तुष्यति (२०/४८) ८३ न ते गोत्रं (३/७८) १२, न तेन सदृशः (३/३७) १०, न तेषां पुन० (७/४७) २५, न तोयगृध्नून् (२/१५) ६, न दृश्यते (३/४६) १०, नन्दनादिवने (१३/४६), ५३, नन्दा सुनन्दा (१२/३६) ४८, नन्दिग्रामस्य (१/३) १, न ब्राह्मणो (१/२४) ३, नमः सर्वार्ति० (६/६६) ३६, नमो ज्ञाननिध्ने (१८/१२) ७३, नमो नमः (१६/३१) ६७, नमोऽस्तु ते (६/६३) ६, नमोऽस्तुते (६/६५) ३६, नर्मदायां (१२/२६) ४७, नवम्यां पुष्प० (१६/१५) ७७, नवरत्नमयी (३/४१) १०, नश्यन्ति तत् (६/३८) २१, नागा: प्रसन्ना (११/२६) ४४, नाथ ! प्रजासृजा (१६/३६) ७८, नाना रत्नानि (१६/७) ७६, नापि वह्लेश्च (५/३६) १८, नारदः पर्वतश्चैव (४/४) १४, नारदस्य च (५/२) १६, नारदस्य वच: (२१/१३) ८८, नारदो ब्रह्मणो (२६/२३) १०१, नारायणं नमस्कृत्य (१/१) १, नालंकृत्य (८/२७) २६, नास्तिकाय (२७/२) १०२, नास्ति तत्पातकं (२२/१८) ६०, नास्त्यस्माकं (७/२१) ३४, निकर्षैवं (२०/३४) ८२,

नित्यं कार्यं० (२/१८) ६, नित्यं यत्र (१७/५०) ७२, निन्युस्ते तत्र (१६/१८) ६६, नियन्ता सर्वं० (१/११) २, निराहारः (९/५४) ३५, निर्भर्त्स्यं (२२/३६) ९१, निर्मलोदे (७/३२) २४, निर्वाणलक्ष्मीं (७/६७) २७, निर्वाणलक्ष्मीं यः (/२६) २०, निर्वाणलक्ष्मीपतयः (२०/५१) ८३, निशम्य प्राञ्जलिः (७/१२) २३, निशम्यैनमिमं (१३/२) ५०, निशामय (९/५०) ३५, निःश्वासरन्ध्रात् (१०/३) ३९, निःश्वासो (१३/७) ५०, निःसपत्नं (१९/४५) ७९, नृत्यन्तो निज० (१/३४) ३, नेति नेतीति (१३/१६) ५१, नैर्ऋत्यादिक० (२/३) ५, नैमिषं (२४/२५) ९५, नैमिषे च (७/६[illegible]) २६, नैःश्रेयसीं यः (१७/३७) ७१, नोद्धृता (८/२९) २९, न्यवेदयच्च (१३/७८) ५५ ।

पञ्चगव्येन (१३/६५) ५४, पञ्चम्यां (२४/३) ९४, पञ्चेश्वरोऽत्र (१/३३) ३, पठन्तं (३/७५) ७२, पठित्वा (१२/५५) ४९ पतत्रिणोरिह (१४/२४) ५८, पतितान्नरके (१३/३६), ५२, पतिव्रताभिः (२१/९) ८७, पतीन् सुतान् (२०/६२) ८४, पदे पदे (२३/२३) ९३, पत्नीभिस्तिसृभिः (१४/७०) ६१, पत्न्या सह (१७/३८) ७१, पत्न्या सहैव (१७/५१) ७२, पत्न्या सार्धं (९/५७) ३५, पप्रच्छ (५/५) १६, परदारपर० (३/२९) ९, परदारपर० (२०/६८) ८४, परस्परं (६/५) १९, परामृश्य (१५/२७) ६३, पराशरेश्वरः (२०/२६) ८१, परितः शम्भल० (२६/१९) १०१, पर्वस्वदत्तदानो (७/१६) २४) पश्चादनु० (२३/१५) ९३, पश्चाद् भविष्य (१३/४) ५०, पश्यतां (१९/५४) ७९, पश्यन् (२४/१६) ९५, पाखण्डालाप (२४/१९) ९५, पाटलाधिपतेः (१९/३०) ७८, पाणीन् जग्राह (१४/६९) ६१, पादस्पृष्टेन (२२/३५) ९१, पादाग्रांगुष्ठ० (१६/२६) ६६, पादाभ्यां चटकं (१४/३५) ५९, पादोदकात् (६/२८) २०, पादोदके नरः (६/२५) २०, पाद्यं (२२/३३) ९१, पापकञ्चुक० (२/३७) ७, पापक्षयकरं (९/८) ३२. पापक्षयात् (९/१५) ३३, पापपुञ्ज (१०/२४) ४०, पापचमोनके (१०/३०) ४०, पापमोचनपार्श्वे (१०/२१) ४०, पापमोचनमा० (१०/२५) ४०, पार्वतीहृदयानन्द (१/५) १, पार्षदैर्यम० (३/६५) ११, पालने स्वाधि० (२६/६) १००, पितर्युपरते पुत्रा (२५/९) ९७, पितर्युपरते राज्यं (११/३६) ४५, पितुः श्राद्धमिहैवाहं (२०/१८) ८१, पितॄणां ध्यान० (१२/३२) ४८, पितॄन् पिण्डैः (१९/१६) ७७, पिण्डनिर्वपणं (२०/२०) ८१, पिशाचत्वमपि (१२/५१) ४९, पिशाचमेक० (७/६) २३, पिशाचमोचनं (७/४२) २५, पीतवासा० (१४/५३) ६०, पुण्यमार्गाः (१३/५९) ५४, पुण्या भद्राश्रमो (१६/४१) ६७, पुण्ये पापक्षये (९/११) ३२, पुण्येनोपार्जितं (९/८४) ३७, पुत्रीं प्रभावतीं (१९/२७) ७७, पुत्रे राज्यं (१९/४८) ७९, पुनन्ति सर्वं० (२/२) ५, पुरस्य दक्षिणे (९/३५) ३४, पुरा दशार्ण० (१६/२) ६५, पुरा पाञ्चालके (२२/१५) ९०, पुगीषु (१३/५१) ४३. पुरुजेतेति (९/५१) ३५, पुष्करा‌द्यानि (९/३८) ३४. पुष्पदन्तं (२२/७) ८९) पुष्पभद्रातटे (१३/५८) ५४, पुष्पावत्यामभूत् (३/३) ८, पूजनीयापूजनीय० (१४/१९) ५८, पूजनीयावचः (१४/२८) ५८, पूर्वकर्म (२२/२०) ९०, पूर्वजन्मकृतैः (१३/९०) ५६, पूर्वजन्मस्मृतिः (१९/३२) ७८, पूर्वद्वारे (६/५६) २२, पूर्वभागोऽस्य (१०/३८) ४१, पूर्वोक्तेन (२४/१३) ९४, पृथिव्यां यानि (१४/१२) ५७, पृष्टः स एवं (१८/११) ७३, प्रजानां रक्षको (२६/१२) १००, प्रणतो दण्डवद् (५/३) १८. प्रणम्य दण्डवद् (९/६२) ३६, प्रणम्य प्राप्नुया० (६/३४) २१, प्रणम्यैनमयं (१८/९) ७४, प्रतिदर्शं (२२/२४) ९०, प्रतिमास० (२२/२) ८९, प्रतिमासं (१४/१७) ५८, प्रतीच्यां दिशि (१७/१५) ७०, प्रतीच्यां दिशि (१/३८) ४, प्रत्यक्षतोऽपि (३/६१) ११, प्रत्यग्रैस्तुलसी० (१४/४८) ६०, प्रत्याश्रमं (१८/५) ७३, प्रत्यूष० (३/७२) १२, प्रत्येकादशि (१२/१५) ४७, प्रदक्षिणं (२२/३०) ९१, प्रदक्षिणविधिं (१/२) ८७ प्रधानविष्णु० (२०/८०) ८५, प्रयागाणां च (११/५) ४३, प्रयागाद् दक्षिणे (१२/१) ४६, प्रयागेति प्रसिद्धं (११/२) ४३, प्रयागे प्रात० (११/१७) ४४, प्रयागे मकरार्के (११/१५) ४४, प्रयास्यन्ति (२०/५२) ८३, प्रलम्बकर्ण० (७/७) २३, प्रवर्तयिष्यति (२६/१४) १०१, प्रवासिनमिमं (२५/२५) ९८, प्रविवेश महारण्ये (११/४१)

४५, प्रसिद्धं तव (१४/६४) ६१, प्रसिद्धं तव (१७/३) ६६, प्राक्कृतेनैव (१६/३१) ७६, प्राणेभ्योऽपि (१६/३६) ७८, प्रातरुत्थाय (२१/१८) ८८, प्रातरुत्थाय (३/६७) १३, प्रातर्भोज्याः (८/६) २८, प्रातश्चतुर्थ्यां (१४/५१) ६०, प्रातः समर्च्य (१२/१७) ४७, प्रातः सायं च (१४/२०) ५८) प्रातः सोम० (१०/४२) ४१, प्रातः सोम० (१०/४२) ४१, प्रातः स्नात्यप० (१२/५) ४६, प्रातः स्नात्वा (१७/२०) ७०, प्राधान्येन (२/११) ५, प्राप्तव्यः (२४/२४) ९५, प्राप्ते तु मरणे (९/४८) ३५, प्राप्तो विभूति० (७/५७) २३, प्राप्नुवन्त्यमलं (१४/९) ५७, प्राप्य जित्वा (१२/१६) ४७, प्राप्यान्तरं (१३/६९) ५४, प्रिय प्राणेश्वर (१४/२७) ५८, प्रिये प्रभावति ! (१९/४३) ७८, प्रीतात्मानं (७/३४) २५, प्रेर्यमाणो (१५/३०) ६४, प्रेषितोऽपि (३/१०) ८।

फलदात्रे च (९/६७) ३६, फलै रत्नैश्च (२३/८) ९२, फाल्गुनस्यासिते (९/८६) ३७।

बका हंसत्व० (६/२) १९, बद्ध्वा (१३/६६) ५४, बहुपुष्पफलो० (८/२५) २९; बह्व्यो (१८/१७) ७४, बालचेष्टित० (३/२४) ९, बाल्येषु पाठिताः (२५/५) ९७, ब्रवीमि त्वां (९/७२) ३६, ब्रह्मघ्नो (१३/४२) ५३, ब्रह्मणा कल्पितः (२०/२९) ८१, ब्रह्मणा समनु० (२१/११) ८७, ब्रह्मविद्योप० (६/३२) २०, ब्रह्मस्वहारी (२५/११) ९७, ब्रह्महत्यादिभिः (१७/१६) ७०, ब्रह्माण्डमध्ये (११/१२) ४३, ब्रह्माप्यभिन्न (२६/८) १००, ब्रह्मावर्तसमीपे (१२/२१) ४७, ब्रह्मावर्तात् (१२/२४) ४७, ब्रह्मावर्ते नरः (१२/२२) ४७, ब्राह्मणः क्षत्रियो (२२/४) ८९, ब्राह्मणाः क्षत्रिया (१/४३) ४, ब्राह्मणाः क्षत्रिया (४/१३) १४, ब्राह्मणान् (२३/१४) ९२, ब्राह्मणानां (३/१८) ९, ब्राह्मणैः सततं (१/४२) ४।

भक्ति प्रभावं (४/९) १४, भक्त्या चात्र (१२/३५) ४८, भगवत्पाद० (२०/८५) ८५, भगवन् ! (९/६) ३२, भगवानेव (१५/१८) ७३, भद्रविप्रस्तुतिं (१६/६२) ६८, भद्राश्रमात् (१७/१) ६९, भरद्वाजस्य (१८/३) ७३, भवद्वाक्यात्तु (२३/१६) ९३ भवन्ति (२०/७०) ८४, भविष्यगङ्गां (१३/३४) ५२, भविष्यगङ्गाग (१३/३२) ५२, भविष्यगङ्गागो० (१३/५५) ५४, भविष्यगङ्गासं० (१३/२८) ५२, भाजनानि (३/३६) १०, भाद्रकृष्ण० (८/८) २८, भानुमन्तमिवा० (१६/२९) ६७, भारं तथैव (१३/७०) ५५, भारत्युत्तरदिग् (१४/१०) ५७, भारभूताः (७/५४) २६, भारवाहकमादाय (१३/६८) ५४, भार्यात्र० (२२/२७) ९०, भिक्षां बलिम० (२०/६७) ८४, भीरुतामत्र (१०/२६) ४०, भुञ्जानः परमा० (११/१६) ४४, भुवनेश्वरनाम्ना (५/१२) १६, भूयांस्यत्र (७/२४) २४, भृशं भ्राम्यति (९/४) ३२, भोगान् भुक्त्वा (१५/३१) ६४, भोगान् भुक्त्वैतया, (१७/२७) ७०, भोजयित्वा च (१९/५९) २३, भ्रष्टराज्यस्य (२७/१२) १०२।

मत्स्यकेतुः (१९/४२) ७८, मत्स्यकेतुः (१९/४७) ७९, मत्स्यकेतोरिदं (१९/३८) ७८, मध्येक्षेत्रमिदं (१२/५२) ४९, मध्येपुरमयं (१७/४५) ७२, मध्येवनं (२०/१३) ८०, मध्येमार्गं (१९/२८) ७७, मनसा चिन्तया० (८/३०) १४, मनसापि हरि० (२०/४९) ८३, मनुष्यधर्मं० (३/२७) ११, मनुष्याः कर्मभिः (१४/६) ५७, मनोविद्याधर० (१७/१७) ७०, मन्दारदाम० (१४/३८) ५९, ममालयस्य (४/१२) १४, मया ते (१२/५४) ४९, मया च (२४/१०) ९४, मलहानेश्च (१७/१९) ७०, मलहानेः प्रतीच्यां (१७/२८) ७१, मलिनानि (२०/८७) ८५, महत्त्वफलमवा० (६/२१) २० महातृप्तिकरीम् (१२/४४) ४८, महान्तं (५/६) १६, महादानेन (२०/४३) ८२, महाप्रसादेन (२/३६) ७, महापातकयुक्तो० (१३/४४) ५३, महारुधिरधारा० (१०/४) ३९, महिषासुरस्य (२०/९) ८०, महोदकीर्ति (९/४९) ३५, मांसाशिना० (१६/५) ६५, माघकृष्ण० (५/१९) १७, मातस्त्वयाद्य (१०/९) ३९, मातापि (१३/८६) ५६, मातुश्चरित्रं (३/२५) ९, मानवानां (५/१३) १६, मानसैः (२१/८) ८७, मामुद्धर (७/२९) २४, मामेव शरणं (७/३१) २४, मायया दम्भ० (५/१७) १७, माया शक्ति० (२६/९) १००,

मार्गशीर्षसिता० (१०/२७) ४०, मार्गशीर्षस्य (१५/३) ६२, मासं (३/७१) १२, मासद्वया० (७/५६) २६, मासि (२३/३) ९२, माहात्म्यं (१७/७) १०२, माहात्म्यमस्य (१९/११) ७६, माहात्म्येनास्य (१७/३१) ७१, माहिष्मत्यव० (९/३७) ३४, माहिष्मत्या (१०/१२) ३९, मीमांसमानयो० (२६/३) १००, मुक्तकच्छम० (७/१८) २४, मृगत्वचोऽपि (२/१७) ६, मृत्युतीर्थं (१२/४) ४६, मोक्षतीर्थप्रभावो (१७/४९) ७२, मोक्षतीर्थमिदं (१७/४६) ७२, मोहनिद्रा० (१८/२९) ७५, म्रियमाणः (९/३०) ३४, म्लेच्छा अपि (२/९) ५।

यं वं कामम० (१३/३३) ५२, यं स्तोतुं (१३/१५) ५१, यः पठेदिम० (२२/३९) ९१, यः पुनः (२२/४०) ९१, यः स्नास्यत्यत्र (१०/१४) ४०, य एतच्छृणुयाद् (२७/३) १०२, य एतच्छृणुयान्नित्यं (२६/२२) १०१, यतः कुतश्चित् (२४/९) ९४, यत्किञ्चिदशुभं (१०/२८) ४०, यत्र कुत्र मृतो (९/२९) ३४, यत्र यत्राप्यसौ (२५/२९) ९८, यथा गयायां (१०/४५) ४१, यथा प्रीणन्ति (१३/४८) ५३, यथा रत्नं गृहे (११/११) ४३, यथाशक्ति (१८/१६) ७४, यथेष्टमृत्यवे (२/१०) ५, यदन्यपि ते (९/५) ३२, यदा चन्द्रश्च (१३/२५) ५२, यदा यदैव (३/११) ८, यदि तुष्टो (१६/३३) ६७, यदि प्रसन्नो (२०/१७) ८१, यदि प्रीतोऽसि (१३/२२) ५१, यमः श्रुत्वैतद् (१६/१) १००, यमराजान्तिकं (२५/३१) ९९, ययाते किं (१३/४९) ५३, ययाते ! यदि (५/२२) १७, यश्चापि (२३/२०) ९३, यस्तु मासं (१९/१७) ७७, यस्मिन् क्षणे (१६/६) ६५. यस्यदर्शन० (७/५०) २६, यस्य निःश्वसितं (१३/१८) ५१, यस्य श्रवण० (२३/२) ९२, याचकेष्वा० (२२/२८) ९१, यातनास्वति० (१६/१९) ६६, यानि कानि (२४/१२) ९४, याम्यां दिश्यस्य (१४/११) ५७, यावज्जीवं (२२/३१) ९१, यावत्तु तं (७/२६) २४, यावन्ति तत्र (१३/४७) ५३, यावन्ति तस्या (१३/९६) ५६, युगे युगे (३/८६) १३, युवभिर्वहुभि० (१५/१७) ६३, ये केचन (१०/२१) ४०, ये च पैशाच्य० (७/४४) २५, ये तु निर्वापयिष्यन्ति (१२/४३) ४८, येऽप्यग्निपंचके (९/२२) ३३, येऽप्यध्यायमिमं (२१/२१) ८८, येऽस्मिन् प्रयागे (११/१४) ४४, योगक्षेमं (६/३६) २१, योजनानां (२०/११) ८०, यो यस्य (२४/३०) ९६, यो वेदपुरुषो (२०/२) ८०, यौवनं (२०/४) ८०।

रक्तगन्धाक्षतैः (२३/७) ९२, रक्षांस्येव (२०/६६) ८४, रजःप्रासाद० (१४/२१) ५८, रत्नप्रयाग० (११/६) ४३, रत्नभूतान् (११/४) ४३, रत्नयुग्ममिदं (१९/६) ७६, रत्नयुग्मे (१९/८) ७६, रथप्रायास्तटे (२२/१६) ९० रागबीज० (१८/२७) ७४, राजन् कलौ (५/१६) १७. राजसूयं (४/२) १४, राजसूयं स (४/७) १४, राजापि (३/२३) ९, राजाय मुदितो (११/४०) ४५, रेवां सम्बोध्य (१४/६७) ६१, रेवातटे (१४/३७) ५९. रेवातीर्थे नरः (१४/१४) ५८, रेवातीर्थे महा० (१४/१३) ५७, रेवा नामा (१४/६६) ६१, रेवाया दक्षिणे (१५/१) ६२, रैभ्यस्याभ्यर्थनं (१८/२०) ७४, रैभ्याख्यानमिदं (१८/३१) ७५, रौरवादिषु (१०/३९) ४१।

लब्धं यद्वा (२४/२२) ९५. लब्धो ब्राह्मण० (१८/१९) ७४, लब्ध्वा (१३/१२) ५१. लभते वाञ्छितां (६/१५) १९, लाक्षालवण० (१६/१४) ६६, लोलार्कदक्षिणे (६/१९) २०, लोलार्कदर्शनं (६/४२) २१।

वंशवृद्धिकरं (१५/२) ६२, वंशवृद्धिकरः (९/७५) ३७, वटः सुन्दर० (१६/२८) ६७, वदन्ति वेदाः (१४/५७) ६०, वनस्थितोऽपि (२५/१४) ९७, वयं धूम्राक्ष० (२/२१) ६, वरेण छन्दाय (१३/८) ५०, वर्षमेकं (२४/७) ९४, ववन्दिरेऽथ (१४/५४) ६०, वसुदेवो वणिक् (१/३९) ४, वस्तव्यं (१६/४३) ६८, वाञ्छितार्थ० (३/८८) १३, वाधिता (२०/७३) ८४, वाहीकनामा (१६/३) ६५, विक्रेतासौ सदा (१६/१५) ६६, विख्यातमभव० (६/९) १९, विचार्यैवं (२/२९) ७, विजयं प्राप्तवान् (८/३) २८, विजयो जायते (८/४) २८, विद्याधरसुता० (१७/२२) ७०,

विधवा च (२२/६) ८९, विधवाभिर्न (८/१५) २८, विधाय पारणां (८/१०) २८, विधिः सर्वविधि० (१४/५६) ६०, विधिदृष्टं (२/२५) ६, विप्राय (२२/८) ८९, विप्रोक्तमिति (१६/३४) ६७, विभक्तेष्वपि (२०/६१) ८४, विभूतिभूषितं (३/७३) १२, विमलेशादुत्तरतः (२०/३०) ८२, विललापातुर० (८/२३) २९, विलोक्य भगवान् (२६/१०) १००, विलोक्य भद्रो (१६/३०) ६७, विवाहयोग्यां (१५/१०) ६२, विश्वं (२/२४) ६, विश्वपालो (१३/७४) ५५, विश्वपालोऽपि (१३/६४) ५४, विश्वमघाती (१३/४३) ५३, विषं दत्त्वा (२२/२१) ९०, विषं भक्षितवान् (१६/१३) ६६, विषं भुक्त्वा (२५/२८) ९८, विष्णुः स्वीकृत्य (२६/११) १००, विष्णुकूपोत्तरे (२०/३५) ८२, विष्णुतीर्थकृत० (१७/८) ६९, विष्णुतीर्थसमीपे (१७/१०) ६९, विष्णुतीर्थात् (१७/११) ६९, विष्णुमर्कं (५/२६) १७, विष्णुभक्तो (१७/२३) ७०, विष्णोर्भगवतः (९/७९) ३७, विष्ण्वादित्य इति (५/३८) १८, विष्ण्वादित्यकथा० (५/४१) १८, वृजिनं हन्ति (११/७) ४३, वृद्धब्राह्मण० (६/५५) २२, वृषली रक्षिता (१६/११) ६५, वृषे स्थितो (१५/८) ६२, वृषोत्सर्गः (१२/४८) ४९, वेदवेदाङ्ग० (३/४) ८, वेदाभ्यासः (१/५) १, वेदेभ्यो (२७/८) १०२, वैवस्वतस्य (९/३२) ३४, वैवस्वतेन (१६/८) ६५, वैशाखस्य (१२/२३) ४७, वैशाखस्य (१७/३३) ७१, वैश्यस्तु (१३/८०) ५५, व्याघ्रेण घातितः (१६/४) ६५, व्याधितश्च (२०/६३) ८४, व्याधिभिर्नाभि० (१५/३७) ६४, व्यावृत्तनयनः (३/५५) ११, व्युत्थितं (१७/४२) ७१।

शङ्खिनी (१०/८) ३९, शणसर्जरसा० (२५/१९) ९८, शतं समाः (१२/१०) ४६, शतत्रयं च (१९/१९) ७७, शतसाम्वत्सरीं (१२/२८) ४७, शम्भलग्राम० (२१/१७) ८८, शम्भलग्राम० (२०/८६) ८५, शम्भलग्राम० (२४/२९) ९६, शम्भलग्राम (२१/१२) ८७, शम्भलग्राम (१४/७१) ६१, शम्भले विष्णु० (२६/१३) १०१, शम्भलेश्वरतः (३/६४) ११, शम्भलेश्वरतः (६/५४) २२, शम्भलेश्वरतः (१/३१) ३, शम्भलेश्वरसा० (२/३१) ७, शम्भोर्गणान् (३/५९) ११, शम्भ्वालयाख्यो (९/७७) ३७, शान्ता (५/१५) १६, शालिग्रामस्य (२७/१०) १०२, शास्ति (३/१६) ९, शिवलोक० (२६/१८) १०१, शिवस्य हृदयं (२६/७) १००, शिशिरर्तौ (२७/४) १०२, शिशिरे (१६/२५) ६६, शीघ्रतापि (२४/१८) ९५, शुचिस्मिता० (१५/२९) ६४, शुचेः शुचि० (३/८३) १३, शुभे तिथौ (८/३२) २९, शुभे तिथौ (२३/४) ९२, शुभो हि (७/६६) २७, शुष्कस्नायु० (१३/७) ५०, शूद्रा धर्मं (२०/५९) ८३, शूद्रा धर्मं (२०/५७) ८३, शूलहस्तः (१८/२४) ७४, शृणु पुण्यनिधे (५/१०) १६, शृणु राजन् ! कथां (६/४३) २१, शृणु राजन् ! कथां (१३/३) ५०, शृणु राजन् ! (१४/१) ५७, शृणु राजन् ! प्रव० (१०/१) ३९, शृणु राजन् ! महा० (१३/५३) ५३, शृणु विप्र (३/१) ८, शृण्वन्तु पितरः (१२/४२) ४८, शृण्वन्यदपि (२०/८) ८०, श्येनो हत्वा (१४/६५) ६१, श्रद्धया विधिना (९/४०) ३४: श्रद्धया विहित० (१२/२) ४६, श्रद्धा धर्मपदं (१३/९४) ५६, श्रमातुरेभ्यः (२/१६) ६, श्रद्धावान् (१२/६) ४६, श्राद्धं विधाय (६/३९) २१, श्राद्धकर्तात्र (१२/१४) ४७, श्राद्धकृल्लभते (१०/२०) ४०, श्रावणस्य चतुर्दश्यां (१४/८) ५७, श्रावणस्य तृतीयायां (१४/१६) ५८, श्रीहरेरथवा (२१/१९) ८८, श्रीहरेर्मध्य० (१८/२६) ७४, श्रुत्वा गुणनिधि० (३/५१) ११, श्रुत्वा चैनां (१/४१) ४, श्रुत्वा तं तस्य (२५/१२) ९७, श्रुत्वा तच्चित्र० (२६/२) १००, श्रुत्वा तन्निज० (५/८) १६, श्रुत्वा नारद ! (१३/१) ५०, श्रुत्वा रेवतिका (१४/४५) ६०, श्रत्वैतत्तीर्थ० (१५/४१) ६४, श्रेयोहेतुं (८/३०) २९, श्रेष्ठायां पुष्कर० (१२/९) ४६, श्रोतुरिच्छैव (९/७) ३२, श्वशुरश्चैव (३/२२) ९, श्वेतद्वीपे (६/२९) २०, श्वेतमाधवतीर्थे (६/३३) २१।

संसारे दुःख० (१८/४) ७३, संस्थितो दक्षिणे (१४/३६) ५९, स ऋषिश्च (७/४८) २५, सङ्गीतसौष्ठवात् (११/२२) ४४, स चागत्य (३/३९) १०, सचेतना हि (६/२३) २०, सच्छोत्रिया (३/१९) ९, स तत्याज (२२/२२) ९०, स तु पान्थस्ततो (७/२८) २४, सत्कर्मणां विपाको (१/१०) २, सत्यं ब्रूहि (१३/७०) ५५,

सत्यलोके तु (६/२७) २०, सत्ये सत्यव्रतो (३/८५) १३, सत्वरं क्षीयते (१/९) २, सदा त्वद्भक्ति० (५/३५) १८, सदा विजयदं (८/२) २८, सदैव मृगया० (११/३८) ४५, स द्विजो (७/१९) २४, सन्तोष्य (१९/५३) ७९, सन्त्यक्तब्राह्मणा० (३/८) ८, सन्ध्यास्नान० (५/१८) १७, सन्निहत्यां (२०/४६) ८३, सप्तकोटिमहा० (२०/३७) ८२, सप्तजन्मकृतैः (६/४१) २१, सप्तजन्मार्जितात् (५/२३) १७, सप्तवर्षाष्ट० (२०/६९) ८४, स प्राप्य (२६/२१) १०१, समन्ततश्चतु० (२०/२३) ८१, समस्तपुण्य० (१४/४३) ५९, समस्तमर्चितं (१२/१२) ४६, समाविसङ्कोचित० (१३/१०) ५०, समृद्धिं प्राप्य (२०/४०) ८२, सम्पर्कादस्य (१०/१८) ४०, सम्प्राप्ते (२४/७) ९४, सम्बोध्य (२०/८८) ८६, सम्यक् (१०/१९) ४०, स याति (७/६४) २५, सरसां सरितां (१३/३७) ५२, स राजा (१७/२६) ७०, सर्वं परित्यज्य (५/२९) १७, सर्वकामप्रदो (८/२४) २९, सर्वज्ञस्यास्य (१५/२६) ६३, सर्वतीर्थेषु (९/४२) ३४, सर्वथा श्रद्धया (२०/६४) ८४, सर्वपापविनिर्मुक्तः (१२/२६) ४७, सर्वपापविशुद्धात्मा (९/१४) ३३, सर्वरूपा (१०/७) ३९, सर्वाण्यर्क० (२३/१०) ९२, सर्वान् कामान् (२१/२०) ८८, सर्वान्तरात्मा (३/८१) १२, सर्वापराध० (७/६३) २६, सर्वासामेव (१४/६०) ६१, सर्वेषां शृण्वतां (१८/२१) ७४, सर्वो विश्वपतिः (९/५८) ३५, स शोकं नैव (९/२५) ३३, ससुवर्ण० (२३/९) ९२, ससुवर्णवपु० (२०/१६) ८१, सहजात् (१९/४) ७६, सहायकान् (२५/१६) ९८, सांयात्रिक० (८/४०) ३०, साक्षान्मोक्षो (९/३) ३२, सागरैश्च (२१/६) ८७, सा तु बाल्ये (१४/४०) ५९, सादित्यां पश्चिमां (१/१७) २, साधु वत्स (२१/१४) ८८, साधु साधु महा० (१/३) १, साधु साधु मुनि० (२१/३) ८७, सापि देव्या (१७/२५) ७०, सा भर्तारमनु० (२०/५) ८९, सा मया कथिता (८/१८) २९, साम्प्रतं (३/४७) १०, सा शुद्धिः (९/१३) ३३, सिनीवाली (८/५) १४, सुबाहुः कृतवान् (२६/१७) १०१, सुबाहुर्व्यसनी (२५/१०) ९७, सुरूपा विनया० (१५/९) ६२, सुलक्षणे प्रसन्नो० (१५/२३) ६३, सुवर्णदक्षिणा० (२४/२१) ९५, सुहृदि (३/२) ८, सूर्यकुण्डं (२२/९) ८९, सूर्येन्दुवारे (१२/४६) ४८, सूर्योदये (१३/१२) ५६, सेवनादस्य (१५/३९) ६४, सेविका अस्य (१५/४०) ६४, सेवितं येन (११/२४) ४४ सोऽपि राजा (९/८९) ३७, सोमवंशोद्भवो (२५/२) ९७, सोऽहं मरुस्थले (७/१५) २३, सौकुमार्यं (२०/७२) ८४, सौवर्णं (२४/२६) ९५, स्कन्धे कुमारा० (२०/७४) ८५, स्तुति कर्तुं (९/६८) ३६, स्तुत्वेति (३/७९) १२, स्नाता त्वमेव (१३/१९) ५१, स्त्रीरत्नपुत्र० (६/१६) २०, स्थित्वा सप्त० (२०/८२) ८५, स्थूलाक्षैस्ते (३/६३) ११. स्नातं बहु० (१८/१५) ७४, स्नातो दशहरायां (६/५२) २२, स्नात्वा गोपाल० (१५/५) ६२, स्नात्वा नित्य० (३/५०) ११, स्नात्वा भविष्य० (१३/५०) ५३, स्नानं कृत्वा (२३/६) ९२, स्नानं कृत्वा (१८/२) ७३, स्नानं दानं जपो (२४/६) ९४, स्नानं दानं प्रकुर्वीत (२३/१२) ९२, स्नानमत्रानप० (१९/१४) ७७, स्नानमत्रानुति० (७/५२) २६, स्नानस्य (७/३५) २५, स्मृत्याचार० (३/९) ८, स्वपन्त्यास्त्वेकदा० (३/३१) १, स्वयं जगाम (२५/८) ९७, स्वयं तीर्त्वा (१२/३) ४६, स्ववृत्तान्तं (७/१३) २३, स्वातिनक्षत्र० (१०/६१) ४१।

हंसतीर्थं (६/१) १९, हं हो सुपुत्र० (३/४४) १०, हनिष्यति (२०/८१) ८५, हरन्ति सर्वं० (११/३) ४३, हरिणा स्वयं० (१७/४४) ७२, हरिनामश्रवणतो (७/२७) २४, हरिं प्रत्यक्ष० (१५/२५) ६३, हरिमन्दिरतो (२०/२५) ८१, हरिमन्दिरपानीयं (७/६८) २७, हरिमन्दिरमध्ये (४/१४) १५, हरिमन्दिरमालोक्य (७/३३) २४, हरिमन्दिरमासाद्य (८/३३) २९, हरिमन्दिरमाहात्म्यं (२१/१) ८७, हरिमन्दिरमेतद्धि (२०/४२) ८२, हरिमन्दिरमेतर्हि (२६/१५) १०१, हरिमन्दिरमेवेदं (१८/२३) ७४, हरेर्विमानं (१७/२१) ६६, हरेः सन्दर्शनात् (६/१८) २०, हरेः सापि० गिरं (१५/२४) ६३, हारीता मद्गवो (६/४) १९, हा ! हेत्यताड० (१३/७२) ५५, हिमालयोपत्यकायां (२/१२) ५, हिमालयोपत्यकासु (२०/७५) ८५, हिमालयोपत्यकासु (१४/३९) ५९, हुता वै मन्त्रपूतास्तु (८/२८) २९, हृदयाकम्पनं (७/९) २३, हृदि बाल० (१५/१९) ६३, हे तापस ! (१३/२१) ५१।

देववाणी - प्रकाशनम्

आर ६, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००५९